भारतीय राज्यतन्त्र में पन्थनिरपेक्षता की संकल्पना

(The Notion of Secularism in Indian Polity)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० [illegible] हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डा० डी० पी० घोष

प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), राजनीति-विज्ञान विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रस्तुतकर्त्री

श्रीमनी आरती श्रीवास्तव

राजनीति-विज्ञान विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2003

शोध-निर्देशक का प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि आरती श्रीवास्तव आत्मजा प्रो० सन्तनारायण श्रीवास्तव जनवरी 1996 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गजनीतिविज्ञान विभाग मे शोधछात्रा के रूप में पंजीकृत हैं तथा मेरे निर्देशन मे शोधकार्य कर रही है। इनके शोध का विषय ''भारतीय राज्यतन्त्र में पन्थनिरपेक्षता की संकल्पना'' है। इनका शोधकार्य पूर्ण हो चुका है तथा इनके शोध-प्रवन्ध का अवलोकन मेरे द्वारा किया जा चुका है। अतः इन्हें शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

D.P. Ghosh

प्रो० डी०पी० घोष
राजनीतिविज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहावाद

भूमिका

भूमिका

'पन्थनिरपेक्षता' या 'Secularism' की अवधारणा मध्ययुगीन यूरोप में चर्च तथा राज्य के मध्य हुए सत्ता-सङ्घर्ष की उपज है। इस सङ्घर्ष के परिणामस्वरूप धर्म (Religion) तथा राजनीति के मध्य पृथक्करण के सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ। भारत मे भी स्वतन्त्रता के पश्चात् पन्थनिरपेक्षता के आदर्श को अङ्गीकार किया गया। भारत मे धर्म तथा राजनीति को परस्पर पृथक् करना प्रारम्भ से ही विवाद का विषय रहा है। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँन्धी का कथन है– "धर्म से अलग राजनीति की कल्पना मैं नहीं कर सकता हूँ। वास्तव में हमारी हर क्रिया में धर्म निहित होना चाहिए। यहाँ धर्म का अर्थ सम्प्रदायवाद नहीं है। इसका अर्थ विश्व में एक व्यवस्थित नैतिक शासन में आस्था है।अदृश्य होने के कारण वह अवास्तविक नही हो जाती। यह धर्म हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाई मत आदि से परे है। यह उन्हें अपदस्थ नही करता है, बल्कि उनमें सामञ्जस्य स्थापित करके आस्तिक बनाता है।" ('हरिजन', 10 फरवरी, 1940)

वस्तुत 'धर्म' को अंग्रेजी शब्द 'Religion' का समानार्थक नही माना जाना चाहिए। 'धर्म' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'धृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है – धारण करना। 'धर्म' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। इसका प्रयोग किसी सम्प्रदाय के लिए प्रचलित प्रथाओं के साथ-साथ कर्त्तव्य, सत्य, नैतिकता, न्याय, निष्पक्षता तथा औचित्य के लिए भी होता है। अतः 'Religion' शब्द का अर्थ धर्म के स्थान पर 'सम्प्रदाय' या 'पन्थ' किया जाना चाहिए तथा 'सम्प्रदाय' या 'पन्थ' को ही राजनीति से पृथक् किया जाना चाहिए। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कई स्थानों पर 'Religion' के लिए 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि भारत सरकार द्वारा प्रकाशित संविधान के हिन्दी अनुवाद में 'Religion' का अर्थ 'धर्म' ही किया गया है।

भारतवर्ष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादक रहा है तथा इसने सदैव विश्व के प्राणियों मे परस्पर मैत्री तथा प्रेम का सन्देश दिया है। यदि हम भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो प्राचीन भारत में विभिन्न सम्प्रदायों के अस्तित्व में होने पर भी सम्प्रदाय के आधार पर भेदभाव तथा विद्वेष के उदाहरण नहीं प्राप्त होते है। सम्प्रदाय के आधार पर भेदभाव का प्रारम्भ भारत में इस्लामी शासन के आगमन के साथ ही दृष्टिगोचर होता है। बाद में अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक विभेद का उपयोग अपनी सत्ता की शक्ति मे वृद्धि के लिए किया। देश का विभाजन सम्प्रदायवाद का ही परिणाम है। यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि देश के विभाजन का मूल्य चुकाकर प्राप्त हुई स्वतन्त्रता के वाद आधी से अधिक शताब्दी व्यतीत हो जाने पर भी हम सम्प्रदायवाद के दुश्चक्र से मुक्ति नही पा सके है। यद्यपि हमने संविधान में पन्थनिरपेक्षता के आदर्श को अपनाया है, तथापि आज भी 'सम्प्रदायवाद' देश की राजनीति को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

हमारे संविधान में यह व्यवस्था की गई थी कि धर्म (Religion), जाति, लिङ्ग,रंग, नस्ल के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। इस प्रकार 'समानता' इस अवधारणा का मूल है। परन्तु इसी संविधान में धार्मिक अल्पसंख्यकों (Religious Minorities) को हमने अलग मान लिया। जैसे ही हमने धार्मिक अल्पसंख्यकों को अलग माना 'समानता' की तो बात ही समाप्त हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान निर्माता स्वयं को निष्पक्ष सिद्ध करने के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता तथा समानता प्रदान करने के पश्चात् भी धार्मिक अल्पसंख्यको के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार करना तथा उन्हे कुछ विशेषाधिकार प्रदान करना आवश्यक समझा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रारम्भ हुई चुनावी राजनीति ने भी भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद के नकारात्मक महत्त्व को उभारा है। संवैधानिक रूप से भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है, परन्तु व्यवहार मे आज भी देश में पन्थनिरपेक्षता की भावना अनुपस्थित है। पिछले एक दशक से भी कुछ अधिक समय से सम्प्रदायवाद ने भारतीय राजनीति को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अयोध्या विवाद

मै आदरणीय पापाजी श्री के० डी० भटनागर, मम्मीजी श्रीमती विजय भटनागर तथा परिवार के अन्य सदस्यो के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगी जिन्होंने शोध-कार्य पूर्ण करने मे यथासम्भव सहयोग दिया तथा इसके लिए समयाभाव या अर्थाभाव का अनुभव न होने दिया।

दीदी डा०(श्रीमती) मधु श्रीवास्तव ने शोध हेतु अनेक दुर्लभ पुस्तकें उपलव्ध कराई तथा अग्रज श्री सुदर्शन ने समय उपलव्ध कराने के साथ-साथ अनेक अमूल्य सुझाव भी दिए। साथ ही उन्होंने शोध-प्रबन्ध के त्रुटिहीन कम्प्यूटर टंकण में भी सहायता की। इन दोनो के सहयोग को मै नही भुला सकती।

आदरणीय माताजी श्रीमती विजया श्रीवास्तव तथा नेत्रहीन दीदी कु० दीपशिखा ने भी शोध-कार्य पूर्ण करने के लिए सदैव मेरा उत्साहवर्द्धन किया।

मेरे पति श्री नवीन भटनागर का इस शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने में जो योगदान रहा है, उसे शब्दो में व्यक्त करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। उसकी मै सिर्फ अनुभूति ही कर सकती हूँ।

अन्त में. इस शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने का श्रेय मै अपने एकवर्षीय पुत्र चि० अक्षत को भी देना चाहूँगी। उसके जन्म के पश्चात् स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण कई वार मुझे शोध-कार्य पूर्ण करना अत्यन्त दुष्कर प्रतीत होने लगता था, परन्तु उसकी मनोहारी चेष्टाएँ और सुमधुर किलकारियाँ मेरे अन्दर नित नूतन उत्साह का सञ्चार करते हुए कार्य पूर्ण करने के लिए प्रेरित करती थी।

आरती श्रीवास्तव

आरती श्रीवास्तव

विषयानुक्रमणिका

भारतीय राज्यतन्त्र में पन्थनिरपेक्षता की संकल्पना

प्रथम अध्याय

पन्थनिरपेक्षता – विभिन्न अवधारणाएं

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक Secular राज्य घोषित किया गया है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित संविधान के हिन्दी संस्करण में 'Secular' शब्द का अनुवाद 'पन्थनिरपेक्ष' किया गया है। इस प्रकार 'पन्थनिरपेक्षता' शब्द अंग्रेजी के 'Secularism' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। आप्टे के शब्दकोष के अनुसार Secular शब्द का अर्थ है – लौकिक, इहलौकिक सांसारिक या ऐहिक।[1] वेब्सटर शब्दकोष के अनुसार 'Secular' का अर्थ है – विश्व का या विश्व से सम्बन्धित अथवा सांसारिक।[2] ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार Secular का अर्थ है – आध्यात्मिक व धार्मिक मामलों से सम्बन्धित न होना या इस विश्व का।[3]

Secularism शब्द का अर्थ वेब्सटर के शब्दकोष मे इस प्रकार किया गया है – "धर्म तथा धार्मिक विचारो के प्रति उदासीनता अथवा उनकी अस्वीकृति या व्यावर्तन"[4]। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार "यह विश्वास कि कानून तथा शिक्षा आदि को तथ्यों तथा विज्ञान पर आधारित होना चाहिए, धर्म पर नही" Secularism कहलाता है।[5]

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में Secularism अथवा पन्थनिरपेक्षता को ऐसे सामाजिक आन्दोलन के रूप में परिभाषित किया गया है, जो पृथ्वी के जीवन को पारलौकिकता से अलग करता है। यूरोपीय मध्य युग मे धार्मिक व्यक्तियो की मानवीय विषयों को व्यर्थ समझने और ईश्वर तथा मृत्यु के बाद के अस्तित्व पर चिन्तन करने की प्रवल प्रवृत्ति थी। इस मध्ययुगीन प्रवृत्ति के प्रतिक्रियास्वरूप, पुनर्जागरण के समय Secularism ने स्वयं को मानववाद के विकास के रूप में प्रदर्शित किया, जव लोगों ने मानवीय सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा उनकी इसी ससार मे सन्तुष्टि की सम्भावनाओं में अधिक रुचि दिखाना शुरू कर दिया। आधुनिक इतिहास के पूरे समय के दौरान Secularism के प्रति आन्दोलन प्रगति की ओर रहा है और इसे प्रायः ईसाई-विरोधी अथवा धर्म-विरोधी होने के रूप में देखा गया है। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कुछ अध्यात्मवादियों ने Secular ईसाइयत की वकालत शुरू कर दी। उन्होंने कहा कि

ईसाइयत सिर्फ ईश्वर या पारलौकिकता से सम्बन्धित नही होनी चाहिए वल्कि लोगों को इस संसार में ईसाई मूल्यों को उन्नत करने का अवसर मिलना चाहिए।[6]

पन्थनिरपेक्षता की अवधारणा का उद्‌भव – इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार पन्थनिरपेक्षता (Secularism) की अवधारणा मुख्य रूप से ईसाई अवधारणा है, जिसके अनुसार समाज में धार्मिक तथा राजनैतिक शक्तियॉ स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् है, अतः दोनों का ही व्यक्तियों की निष्ठा पर अधिकार है। ईसाइयत के आविर्भाव के पूर्व, अधिकतर सभ्यताओं में, अलग-अलग धार्मिक तथा राजनैतिक आदेश स्पष्ट रूप से परिभाषित नही थे। लोग जिस राज्य में रहते थे, उसी के ईश्वर की उपासना करते थे। ऐसे मामलों में धर्म, राज्य का ही एक विभाग वना हुआ था। यहूदी लोगों के मामले में, उनके धर्मशास्त्र में बताए गए कानून के आधार पर ही इजराइल के कानून का निर्माण हुआ। इहलौकिक (Secular) तथा आध्यात्मिक की ईसाई अवधारणा जीसस के इन शब्दो पर आधारित है – "जो वस्तुएं सीजर की है, वह सीजर को दो तथा जो वस्तुए ईश्वर की है, वह ईश्वर को दो।" मानव-जीवन तथा कार्यकलापों के दो भिन्न किन्तु पूर्णतया पृथक् नही, क्षेत्रों को अलग-अलग करना पडा, इस कारण शुरुआती समय से ही ईसाई विचारधारा तथा शिक्षा को आधार प्रदान करने के लिए दो शक्तियो के सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ।

प्रथम शताव्दी ई० के दौरान ईसाइयत मे विश्वास न करने वाले साम्राज्य (Pagan empire) मे रहने वाले एपॉस्टल्स (Apostles) ने यह शिक्षा दी कि शासकीय शक्तियों का सम्मान तथा आज्ञापालन वही तक करना चाहिए जहॉ तक कि यह आज्ञापालन उच्चतर आथवा दैवी कानून, जो कि राजनैतिक क्षेत्राधिकार से ऊपर है, का उल्लघन न करे। जव ईसाइयत ने साम्राज्य के धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया था, तव के धर्माधिकारियों के मध्य आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता पर जोर दिए जाने की प्रवृत्ति प्रवल थी। उन्होंने चर्च की स्वतन्त्रता तथा चर्च द्वारा लौकिक शासक के कार्यों का मूल्याङ्कन करने के अधिकार पर जोर दिया।

पश्चिम में रोमन साम्राज्य के पतन के साथ, शासन-शक्ति चर्च के हाथ में चली गई, जो कि उस समय का एकमात्र शिक्षित वर्ग था। चर्च, जो कि उस समय की एकमात्र संगठित संस्था था, सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही शक्तियो का अधिपति वन गया।

आठवी शताव्दी में चार्लमैन (Charlmagne) के शासन में पश्चिम में साम्राज्य की पुनर्स्थापना हुई। दसवीं शताव्दी तक वहुत से Secular शासक पूरे यूरोप में शासन में रहे। उस समय चर्च के पदों को लेकर हुए राजनैतिक दॉव-पेचों तथा धार्मिक उत्साह व श्रद्धा मे आई कमी के फलस्वरूप कई पोप द्वारा कठोर कार्यवाहियॉ की गई। इन पोप में सवसे प्रसिद्ध ग्रेगरी सप्तम था।

इसके वाद की शताव्दियॉ सम्राटों व राजाओं के पोप के साथ नाटकीय संघर्ष की रहीं। वारहवीं व तेरहवीं शताव्दी के दौरान पोपशाही की शक्ति वहुत वढ गई । तेरहवीं शताव्दी में उस युग के महानतम विद्वान् सेण्ट थॉमस एक्वीनास ने राज्य को एक पूर्ण समाज घोषित करके (दूसरा पूर्ण समाज चर्च था) तथा इसे एक आवश्यकता वताकर राजकीय शक्तियो के सम्मान में वृद्धि करने में सहायता की। लौकिक (Secular) तथा धार्मिक शक्तियों के वीच मध्ययुगीन संघर्ष 14वीं शताव्दी मे राष्ट्रवाद के उदय तथा राज्य व चर्च दोनों के ही समर्थकों में हुई वृद्धि के कारण अपनी चरम सीमा पर आ गया। असंख्य सिद्धान्तशास्त्रियों ने विवाद के इस वातावरण मे अपना योगदान दिया तथा अन्ततः पोपशाही अपने अन्त को प्राप्त हुई। पोपशाही के इस पतन में जो दो प्रमुख कारण थे, उनमें पहला था – पोप को आविन्यो भेजा जाना तथा दूसरा था – पोप को रोम वापस लाने के प्रयास में पोपशाही का विभाजन। इसके परिणामस्वरूप चर्च के अनुशासन में कमी आई तथा यूरोप के सभी भागो में चर्च की प्रतिष्ठा गिर गई।

पुनर्जागरण के तात्कालिक प्रभाव से चर्च की शक्ति में और कमी आई। ईसाइयत अपनी क्षत-विक्षत अवस्था में शक्तिशाली शासकों को कोई प्रभावी प्रतिपक्ष नही प्रदान कर पाई। ये शासक अव चर्च तथा राज्य दोनों का प्रमुख होने के दैवी अधिकार का दावा करने लगे थे। जॉन कैल्विन द्वारा जेनेवा में चर्च के प्रभुत्व की घोषणा उस समय का एक अपवाद था। वहुत से लूथरवादी चर्च राज्य की भुजाएं वन

गए थे। इंग्लैण्ड मे हेनरी अष्टम ने रोम के साथ सम्बन्धो का अन्त कर लिया तथा इंग्लैण्ड के चर्च की अध्यक्षता ग्रहण कर ली।[7]

राजनीतिशास्त्र मे सबसे पहले और स्पष्ट रूप से राजनीति से धर्म को पृथक् करने वाले सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का श्रेय राजनैतिक चिन्तक मैकियावली को प्राप्त है। सेबाइन के अनुसार "ईसाई-नैतिकता क्योंकि पारलौकिक थी, अतः मैकियावली ने उसे पूर्णतया तिरस्कृत किया"।[8]

पन्थनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के प्रथम संशोधन में दृष्टिगोचर होती है, जिसके अनुसार "कॉंग्रेस ऐसा कोई कानून नही बनाएगी जिससे किसी धर्म की स्थापना होती हो या धर्म के स्वतन्त्र रूप से पालन मे कोई बाधा आती हो।"

पन्थनिरपेक्षता – विभिन्न दृष्टिकोण

डोनाल्ड ई० स्मिथ ने पन्थनिरपेक्ष राज्य की परिभाषा इस प्रकार की है – "पन्थनिरपेक्ष राज्य से तात्पर्य एक ऐसे राज्य से है जो व्यक्ति से नागरिक होने के नाते सम्बन्धित है, किसी धार्मिक भावना के आधार पर नहीं, जो संवैधानिक रूप से किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं है, न किसी धर्म मे हस्तक्षेप करता है न उसका प्रचार, बल्कि संस्थाओं और व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है।"[9]

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार एक पन्थनिरपेक्ष राज्य की विशेषताएं इस प्रकार होती है –

1 पन्थनिरपेक्ष राज्य का अपना कोई राज्य-धर्म नहीं होता । वह सभी धर्मो के प्रति अहस्तक्षेप की नीति अपनाता है तथा किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात नहीं करता।

2. पन्थनिरपेक्ष राज्य धार्मिक आधार पर भेदभाव नही करता और सभी व्यक्तियों को केवल नागरिक के रूप में देखता है, किसी धार्मिक समुदाय के सदस्य के रूप में नहीं। इस प्रकार एक पन्थनिरपेक्ष राज्य समानता पर आधारित होता है।

3. पन्थनिरपेक्ष राज्य प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से किसी भी धर्म को

मानने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है, अर्थात् राज्य किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म-विशेष को मानने के लिए वाध्य नही करता, वल्कि सभी को अन्त:करण की स्वतन्त्रता तथा अपने धर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

आधुनिक राज्यो मे अमेरिका पहला देश है, जिसमें संवैधानिक रूप से एक ऐसे राज्य की स्थापना की गई जो चर्च तथा राज्य के पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। अमेरिकी सविधान के प्रथम संशोधन मे पन्थनिरपेक्षता के विचार को वैधानिक रूप प्रदान किया गया। इसमें कहा गया है कि कॉग्रेस ऐसा कोई कानून नहीं वनाएगी जिसका उद्देश्य किसी धर्म की स्थापना हो या उसके स्वतन्त्र रूप से पालन करने को वाधित करना हो। मेडिसन ने संविधान के प्रथम संशोधन की व्याख्या करते हुए यह कहा था कि इसका अर्थ यह है कि धर्म एक व्यक्तिगत विषय है। जैफरसन ने इस सम्वन्ध में विचार व्यक्त करते हुए यह कहा कि इस संशोधन का अर्थ यह है कि राज्य धर्म के सम्वन्ध मे कोई कानून नही वनाएगा। दूसरे शव्दो में इस सशोधन ने चर्च और राज्य के वीच पृथक्करण की दीवार खडी कर दी।[10]

धर्म और राजनीति के मध्य पृथक्करण के व्यावहारिक अर्थो को लेकर अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के सामने समय-समय पर अनेक मामले आए, जिनमें सर्वोच्च न्यायालय ने धर्म और राजनीति के पारस्परिक सम्वन्धो और उनके वीच की सीमाओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। एवर्सन वनाम वोर्ड ऑफ एजुकेशन[11] के मामले मे निर्णय देते हुए अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा था कि "कोई भी सरकार ऐसे कानूनों को पास नहीं कर सकती, जिनका उद्देश्य किसी धर्म अथवा सभी धर्मो को सहायता देना हो अथवा एक धर्म को दूसरे धर्म पर प्राथमिकता देना हो"। इस दृष्टिकोण के अनुसार धार्मिक मामलों में राज्य का सकारात्मक या नकारात्मक किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप अथवा सम्वन्ध नही होना चाहिए।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से सम्वन्धित एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के सामने यह उठाया गया कि क्या धर्म और राजनीति के वीच पृथक्करण का अर्थ यह है कि राज्य सभी धर्मो

के साथ समान व्यवहार करे। इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए यह कहा कि चर्च से राज्य को पृथक् करने का उद्देश्य राज्य द्वारा विभिन्न धर्मो के साथ समान व्यवहार करना नहीं था वल्कि इन दोनों के वीच सभी प्रकार के सम्वन्धो का अन्त कर देना था। इसका अर्थ एक ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें चर्च और राज्य के मध्य पृथक्करण हो। धर्म 'सार्वजनिक विपय' नहीं है, अतः व्यक्तियो के धार्मिक सम्वन्धों का राज्य से कोई सम्वन्ध नही होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य को किसी भी धर्म को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता नही देनी चाहिए तथा धर्म को किसी भी साधन से प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

कुछ विचारकों का मत है कि धर्म और राजनीति के वीच पूर्ण पृथक्करण सम्भव ही नहीं है। यद्यपि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने विभिन्न निर्णयो में पन्थनिरपेक्षता का अर्थ धर्म और राजनीति के वीच पूर्ण पृथक्करण वताया है, लेकिन अमेरिका की राजनैतिक व्यवस्था में भी कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनमें धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरण के लिए न्यायालय में अथवा सरकारी कर्मचारियों द्वारा पद-ग्रहण करते समय जो शपथ ली जाती है, उसमें इस वाक्य का प्रयोग किया जाता है कि "अतः ईश्वर मेरी सहायता करे"। इसी प्रकार अमेरिका में जो सिक्के प्रचलित हैं, उन पर 'हम ईश्वर में विश्वास करते है' लिखा रहता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका में धर्म राजनीति से पूरी तरह पृथक् नहीं है। यही नहीं, अमेरिकी सरकार का झुकाव अन्य धर्मो की अपेक्षा ईसाई धर्म के प्रति ज्यादा है और न्यायालयों के कुछ निर्णय ईसाई धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित हुए हैं। उदाहरणस्वरूप मानव जाति के विकास के सम्वन्ध मे डार्विन के सिद्धान्त को पढाए जाने पर प्रतिवन्ध लगाया गया था क्योंकि वह सिद्धान्त वाइविल में पाए जाने वाले सिद्धान्त के विपरीत था।[12] अमेरिका में चर्च राजनीति में सक्रिय भाग लेता रहा है और इसके लिए अनेक साधनों का उपयोग करता रहा है। उदाहरण के लिए विधेयकों के प्रारूप तैयार करना, विधायकों के लिए सूचना एकत्रित करना, कॉग्रेस की समितियों के साथ कार्य करना, व्हाइट हाउस में सम्पर्क स्थापित करना, कॉग्रेस के सदस्यों के साथ मित्रता वढ़ाना आदि।[13]

अमेरिका में राजनैतिक दृष्टिकोण से रोमन कैथोलिक चर्च सबसे अधिक शक्तिशाली है। मार्च 1947 में न्यूयार्क विधानमण्डल के द्वारा एक विधेयक कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों मे धार्मिक तथा जातीय भेदभाव को वर्जित करने के लिए बनाया जा रहा था जो लगभग अपने अन्तिम चरण में था कि रोमन कैथोलिक चर्च ने इस विधेयक की खुलकर निन्दा शुरू कर दी। इसके फलस्वरूप समिति ने इस विषय में वार्तालाप किया और अन्त में उस विधेयक में कुछ साधारण परिवर्तन करके चर्च का समर्थन प्राप्त किया। इसके बाद वह विधेयक विधानमण्डल में पारित हो गया।[14] इस घटना से धर्म का राजनीति पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

अमेरिका के विपरीत इग्लैण्ड का अपना एक राज्य-धर्म है। वहॉ एगलीकन चर्च राज्य-संस्था है तथा यह प्रतिबन्ध है कि प्रोटेस्टेण्ट के अतिरिक्त किसी व्यक्ति को राजा-रानी नहीं बनाया जा सकता। धर्म और राजनीति के बीच सैद्धान्तिक रूप से पृथक्करण न होने के बाद भी इग्लैण्ड को पन्थनिरपेक्ष राज्य की श्रेणी में रखा जाता है।

मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित रूस के संविधान में राज्य और धर्म को एक-दूसरे से यहॉ तक पृथक् किया गया है कि वहॉ का संविधान नागरिकों को धर्म के विरुद्ध प्रचार करने का अधिकार देता है। प्रायः विचारक इस प्रकार के धर्मविरोधी राज्य को पन्थनिरपेक्ष राज्य नही मानते।

वेंकटरमन के अनुसार "धर्मनिरपेक्ष राज्य न धार्मिक है, न अधार्मिक और न धर्मविरोधी, परन्तु धार्मिक कार्यो और सिद्धान्तों से सर्वथा पृथक् है और इस प्रकार धार्मिक मामलों में पूर्णतया तटस्थ है।"[15]

कुछ विचारको के अनुसार चर्च और राज्य के बीच पूर्ण रूप से पृथक्करण इस कारण सम्भव नही है, क्योंकि इस सिद्धान्त के प्रवर्तक तथा समर्थक यह बताने में असमर्थ रहे है कि चर्च के क्षेत्र में कौन से विषय आते हैं और राज्य के क्षेत्र में किन विषयों का समावेश होता है। चर्च और राज्य दोनों की ही इकाई मनुष्य है। अतः एक धर्म के अनुयायी और नागरिक के रूप में मनुष्य के आचरण के मध्य पूर्ण

पृथक्करण करना सम्भव नही है। मनुष्यों के कार्यो और विचारों पर धर्म के प्रभावों का अन्त कर देना एक अव्यावहारिक बात मालूम देती है।

धर्म और राजनीति के पारस्परिक सम्बन्धो की दृष्टि से पन्थनिरपेक्ष राज्यों की दो श्रेणियॉ हो सकती हैं। प्रथम वे, जो धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप नही करते तथा दूसरे वे, जो धर्म के आधार पर भेदभाव नही करते।

प्रथम श्रेणी के राज्यों में संयुक्त राज्य अमेरिका का नाम लिया जा सकता है, जहाँ धर्म और राजनीति के बीच एक विभाजक रेखा खींच दी गई है। हस्तक्षेप न करने वाले राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो किसी प्रकार के धार्मिक कार्य से सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से कोई सम्बन्ध ही न रखता हो अर्थात् राज्य और धर्म के बीच प्रत्यक्ष रूप से कोई सम्बन्ध न हो।

दूसरी श्रेणी के राज्य वे है, जो धार्मिक आधार पर भेदभाव नही करते। ऐसी व्यवस्था में राज्य के लिए धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करना वर्जित नहीं होता, लेकिन ऐसा करते समय राज्य विभिन्न धर्मो के बीच कोई भेदभाव नही करता। जहॉ तक भारत का सम्बन्ध है, वह विभेदरहित राज्य की ही श्रेणी में आता है। भारत में राज्य का अपना कोई धर्म नही है और यहां राजनैतिक सत्ता का अन्तिम स्रोत किसी दैवी अथवा पारलौकिक शक्ति को न मानकर जनता को माना गया है। भारत का संविधान सभी नागरिको को विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। यह सभी व्यक्तियो को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता, किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने, उसके अनुसार आचरण करने और उसका प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। परन्तु भारत में राज्य धर्म से सम्बन्धित लौकिक क्रियाकलापों मे हस्तक्षेप कर सकता है तथा यदि वे लोक-व्यवस्था व सदाचार या नैतिकता मे बाधक हों तो उन्हें विनियमित कर सकता है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भारत में पन्थनिरपेक्षता को परिभाषित करते हुए कहा है –

''भारत मे पन्थनिरपेक्षता का अर्थ यह नही है कि राज्य धर्म के प्रति शत्रुभाव रखेगा, बल्कि यह विभिन्न धर्मो के प्रति तटस्थ रहेगा।''[16]

इसका अर्थ यह है कि भारत में पन्थनिरपेक्षता का धर्म से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। न्यायाधीश एच०आर०खन्ना (सेवानिवृत्त) ने एक बार एक राष्ट्रीय सेमिनार में पन्थनिरपेक्षता के विषय मे विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''कभी-कभी लोगों की यह धारणा होती है कि 'पन्थनिरपेक्षता' तथा 'धर्म' में किसी प्रकार का विरोध है। यह पूर्णतया भ्रान्त धारणा है। धर्म आध्यात्मिक धरातल पर कार्य करता है। यह व्यक्ति के श्रद्धा तथा विश्वास से सम्बन्धित है। पन्थनिरपेक्षता सांसारिक धरातल पर कार्य करती है। यह प्रमाणित करती है कि किसी के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नही किया जा सकता कि वह किसी विशेष धर्म, नैतिक समूह या भाषाई समूह से सम्बन्धित है।''[17]

इस परिभाषा के अनुसार पन्थनिरपेक्षता मुख्य रूप से धार्मिक आधार पर अविभेदीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। 1976 मे एक गोष्ठी में बोलते हुए तत्कालीन कॉग्रेस अध्यक्ष डी० के० बरुआ ने भारत के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप के सम्बन्ध में धार्मिक आधार पर विभेदराहित्य पर ही बल देते हुए कहा – ''हम सभी धर्मो को सम्मान देते है। धर्म के प्रति सम्मान उसके अनुयायियों की संख्या पर निर्भर नही है। देश के सभी धर्म, चाहे उनकी संख्या कितनी ही कम क्यों न हो, समान स्थान व समान मान रखते है, तथा राज्य से समान संरक्षण के अधिकारी है।''[18]

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार पन्थनिरपेक्षता का अर्थ यह नही होता कि लोगों की धार्मिक भावनाओं का आदर नहीं किया जायेगा। इसका तो केवल यही अर्थ है कि राज्य लोगों पर किसी धर्म को नहीं थोपेगा।

पं० जवाहरलाल नेहरु का मत था कि भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है, इसका अर्थ धर्महीनता नही, इसका अर्थ सभी धर्मो के प्रति समान आदरभाव तथा सभी व्यक्तियों के लिए समान अवसर है।

प्रख्यात संविधानविद् डॉ० दुर्गादास वसु के मतानुसार एक पन्थनिरपेक्ष राज्य ऐसा राज्य है, जो सभी धर्मो के प्रति तटस्थता और निष्पक्षता का भाव रखता है। पन्थनिरपेक्ष राज्य इस विचार पर आधारित होता है कि राज्य का विपय केवल व्यक्ति और व्यक्ति के वीच सम्बन्ध से है, व्यक्ति और ईश्वर के वीच सम्वन्ध से नही।[19]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओ से स्पष्ट होता है कि भारत में पन्थनिरपेक्षता का तात्पर्य केवल यह है कि राज्य धर्म के मामले में पूर्णतया तटस्थ है। राज्य प्रत्येक धर्म को समान रूप से संरक्षण प्रदान करता है, किन्तु किसी धर्म मे हस्तक्षेप नही करता है। धर्मनिरपेक्षता न ईश्वर-विरोधी है, न ईश्वरसमर्थक। यह भक्त, संशयवादी तथा नास्तिक सभी को समान मानती है। इसने ईश्वर के सम्वन्ध में राज्य को कोई स्थान नहीं दिया है और यह वात सुनिश्चित की गई है कि धर्म के आधार पर किसी के साथ कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

पन्थनिरपेक्ष राज्य का धर्म मे कोई विरोध नहीं होता है। इस सम्वन्ध में एथीस्ट सोसाइटी ऑफ इण्डिया वनाम गवर्नमेण्ट ऑफ ए० पी०[20] का मामला उल्लेखनीय है। इस मामले में याचिकाकर्ता जो कि भारत की नास्तिक सोसायटी का सदस्य था, ने न्यायालाय मे परमादेश रिट जारी करके सरकार को सरकारी भवनों के शिलान्यास और उद्घाटन के अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठानों को करने और धार्मिक प्रतीको के प्रदर्शित करने पर रोक लगाने का आदेश जारी करने को कहा। उसका तर्क था कि इससे सरकार के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप पर आघात पहुँचता है। किन्तु न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि उपर्युक्त कृत्यों से पन्थनिरपेक्षता पर प्रभाव नहीं पडता है। संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 25 से 30 मे निहित पन्थनिरपेक्षता का अर्थ अधार्मिक राज्य नहीं है। पन्थनिरपेक्षता एक आदर्श और एक प्रक्रिया है। इसमें अलगाव की अपेक्षा मिलाने की, पृथक्करण की अपेक्षा संयोजन की, प्रभुत्व की अपेक्षा वहुत्ववाद की भावना निहित है। पन्थनिरपेक्षता न केवल धर्म और अन्तःकरण तथा सांस्कृतिक शैक्षिक अधिकार की गारण्टी है, वल्कि सभी नागरिकों में भ्रातृत्व और एकता की मूल भावना है। पन्थनिरपेक्षता एक लक्ष्य

है और एक प्रक्रिया भी है। यह राष्ट्रीयता और भाषा की राष्ट्रीय अखण्डता और साम्प्रदायिक सामंजस्य का एक मिश्रण है। भारत की सांस्कृतिक विरासत मानवतावाद और निःस्वार्थ सेवा का सन्देश है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक नास्तिक के कहने से राजकीय सामारोहों में धार्मिक कार्यों को रोका नही जा सकता है। ऐसे अवसरों पर नारियल का तोडा जाना, पूजा करना और मन्त्रोच्चारण करना भारतीय परम्परा का एक भाग है। ये अनुष्ठान धार्मिक आचरण का एक भाग है। इसका उद्देश्य योजना की सफलता के लिए सर्वशक्तिमान् ईश्वर का आशीर्वाद लेना है। ऐसे उदात्त कार्य से किसी को कोई कष्ट नही पहुँचता है। ऐसा हो सकता है कि याची को ये कार्य अच्छे न लगते हों क्योंकि वह एक नास्तिक है। संविधान नास्तिक के विश्वास की गारण्टी नहीं देता है। यदि याची की प्रार्थना स्वीकार कर ली जाती है तो करोडों भारतवासियो के अधिकारों का अतिक्रमण होगा जो उन्हें अनुच्छेद 25 के अधीन प्राप्त है और प्रस्तावना के पन्थनिरपेक्ष आदर्श के सीधे विरोध में होगा जो संविधान का एक आधारभूत ढॉचा है।

संक्षेप में, पन्थनिरपेक्षता की अवधारणा मूलतः भारतीय नहीं है, वरन् यह मध्ययुगीन पाश्चात्त्य राजनैतिक विचारधारा से आयातित है। तत्कालीन चर्च व राज्य के मध्य हुए सत्ता-संघर्ष के फलस्वरूप इस विचारधारा का आविर्भाव हुआ जिसके अनुसार चर्च व राज्य के पृथक्करण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया तथा चर्च को राजनैतिक कार्यकलापो से अलग किया गया।

सामान्य रूप से पन्थनिरपेक्ष राज्य का यही अर्थ होता है कि राज्य विभिन्न धर्मों में से किसी एक के साथ पक्षपात न करे और न किसी धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया जाए। पन्थनिरपेक्ष राज्य का यह कार्य नही है कि वह धर्म का विरोध करे या व्यक्तियो को नास्तिक होने के लिए प्रोत्साहित करे। पन्थनिरपेक्ष राज्य वह है, जहॉ राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान होते हैं तथा राज्य विभिन्न धर्मावलम्बियों में कोई भेदभाव नही करता। पन्थनिरपेक्ष राज्य धर्मविहीन या धर्मविरुद्ध नही होता अपितु वह धर्म के मामले में तटस्थ होता है तथा धार्मिक आधार पर नागरिकों में विभेद नहीं करता । साथ ही, एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में सभी को अपने धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार एक

पन्थनिरपेक्ष राज्य मे तीन तत्त्व आवश्यक है – (1) किसी भी राजकीय-धर्म का अभाव, (2) धार्मिक आधार पर नागरिको मे समानता तथा (3) धार्मिक स्वतन्त्रता। इस आधार पर एक पन्थनिरपेक्ष राज्य की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है –

एक पन्थनिरपेक्ष राज्य वह है जो किसी भी धर्म को मूल नहीं मानता, नागरिकों में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नही करता तथा सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है तथा स्वयं धर्म के मामले में पूर्णतया तटस्थ होता है।

सन्दर्भ-सङ्केत

1 Apte's English - Sanskrit Dictionery, Page -414

2 Webster's Seventh New collegiate Dictionary, Page - 780

3 Oxford Advanced Learner's Dictionary, Page - 1062

4 Webster's seventh New collegiate Dictionary, Page 780

5 Oxford Advanced Learner's Dictionary, Page - 1062

6 Encyclopedia Britanica 2002, Deluxe Edition, Disc-2

7 Encyclopedia Britanica 2002, Deluxe Edition, Disc-2

8 G H Sabine - A History of Political Theory, Page - 341

9. D E smith - India as a Secular State

10 D E. Smith-India as a Secular State

11. (1947) 330, यू० एस०1

12. V P Luthra - Concept of the Secular State & India Page 46.

13 Leo Fefar - Church, State and Freedom Page - 201-204

14 Leo Fefar - Church, State and Freedom, Page - 205

15 Venkatraman - A Treatise on Secular State

16 S R Bommai Vs Union of India, A 1994 S C 1918 (A Nine-Judge Bench Decision)

17 Proceedings of the Seminar on "Constitution of India in Precept & Practice", Page - 60

18 Socalist India (New Delhi) Oct, 23, 1976, Page - 11-12

19 डॉ० दुर्गादास वसु - भारत का संविधान - एक परिचय, पृष्ठ - 109

20 ए० आई० आर० 1992, ए० पी० 310

द्वितीय अध्याय

भारतीय इतिहास व पन्थनिरपेक्षता

(क) प्राचीन भारत

सिन्धु घाटी की सभ्यता की धार्मिक स्थिति

सिन्धुघाटी के निवासियो के धार्मिक विश्वास का पूरा स्वरूप हमारे समक्ष नहीं है, क्योंकि इस सम्वन्ध में किसी प्रकार का लिखित साहित्य अथवा स्मारक हमें उपलव्ध नहीं है। यहाँ से प्राप्त अवशेषों के आधार पर ही तत्कालीन धार्मिक विश्वासो पर हम कुछ कह सकते है। मन्दिर जैसा कोई भवन नही मिला है, परन्तु फिर भी कुछ विद्वानों ने कुछ भवनो को मन्दिर मान लिया है। मोहनजोदडो तथा हड़प्पा में एक प्रकार की मृण्मूर्तियॉ मिली हैं, जिन्हे पुरातत्त्ववेत्ता मातृदेवी की मूर्तियॉ मानते हं। इस आधार पर यह माना जाता है कि सिन्धु सभ्यता मे मातृदेवी की उपासना होती थी। शिव की पूजा भी सिन्धुघाटी में होती थी और इसका प्रमाण है, वहां से प्राप्त शिव की त्रिमुखाकृति मूर्त्तियॉ। इस तरह के चित्र मुद्राओं और ताम्रपट पर भी अङ्कित है। सर जॉन मार्शल इसे हिन्दूकालीन शिव का ही प्राचीन रूप मानते है। मोहनजोदड़ों में लिङ्ग के आकार की कई वस्तुएँ मिली हैं। इससे प्रतीत होता है कि उस काल में लिङ्ग व योनि की पूजा भी होती थी। सिन्धु घाटी के लोग प्रकृति-पूजक थे। ये लोग अग्नि व सूर्य की उपासना करते थे। ये लोग वृक्षो और उन पर रहने वाली आत्माओं की भी पूजा करते थे। एक ऐसी मुद्रा उपलव्ध हुई है, जिस पर पीपल का वृक्ष अङ्कित है। उस पर सात सहचरियों से सेवा कराती हुई वृक्ष की देवी है। सिन्धु सभ्यता की मुद्राओं मे कई प्रकार के पशुओ का चित्रण मिलता है। पशु-पूजा भी वहॉ प्रचलित थी, अत: वहुत से विद्वानों का ऐसा मत है कि किसी धार्मिक भावना अथवा उद्देश्य से ही ये पशु चित्रित किए गए होगे। सींग, स्तम्भ और स्वस्तिक के भी कई चित्र वहॉ मिले हैं। हो सकता है इनका भी धार्मिक महत्त्व रहा हो। धार्मिकोत्सवो पर नृत्य व गाने-वजाने का भी प्रचलन था। हड़प्पा से एक मुद्रा प्राप्त हुई है जिस पर एक समारोह का दृश्य है। उसमें व्यक्तियों के झुण्ड के बीच एक व्यक्ति ढोल बजा रहा है।

कही-कही वीणा के भी अङ्कन मिले है। मृतक संस्कार के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है। उस समय शायद मनुष्य के शरीर की कुछ अस्थियो को जमा कर गाड़ने की प्रथा थी। कुछ ऐसे शव-भस्म के पात्र भी मिले हैं, जिसमें जली हुई राख के साथ हड्डियाँ भी मिली है। इससे यह अनुमान होता है कि वहॉ शव गाडने और जलाने दोनों की प्रथा प्रचलित थी।

सिन्धु घाटी की सभ्यता से ऐसा कोई भी प्रमाण नही होता है, जिससे यह कहा जा सके कि वहॉ धार्मिक मान्यता या आराध्य देव के आधार पर विभिन्न सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा होगा। इस प्रकार के किसी वर्ग विभाजन का कोई भी ज्ञान हमे वहाँ से प्राप्त वस्तुओं से नहीं होता है।

वैदिक सभ्यता

पूर्व-वैदिक काल

प्राचीन वैदिक धर्म उपासनाप्रधान और सरल था। वर्षा, विद्युत्, धूप, सूर्य आदि नाना शक्तियों से भयभीत होकर लोग उनकी स्तुति के लिए मन्त्र पढते थे। देव का अर्थ होता है दीप्तिमय। एक ही ईश्वर का रूप हम विभिन्न शक्तियो में देखते हैं। इस युग में नैतिक आदर्श व मानव चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। आर्यो ने स्पष्ट शब्दों में एकेश्वरवाद की घोषणा की। 'हिरण्यगर्भसूक्त' मे एकेश्वरवाद का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

ऋग्वेद के समय सम्पूर्ण आर्यो का एक वर्ग था। हरेक व्यक्ति को व्यवसाय की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। एक ही परिवार में वैद्य, कवि और चक्की पीसने वाले तक होते थे। प्रारम्भ में कोई वर्गभेद देखने को नही मिलता। ऋग्वेद के दशम मण्डल (पुरुप सूक्त) में विराट्-पुरुप की कल्पना की गई है, जिससे चार वर्णो की उत्पत्ति हुई। चार वर्णो की उत्पत्ति को कर्ममूलक कह सकते हैं। पूर्ववैदिक कालीन कर्म परिवर्तनशील थे और इसीलिए वर्ण भी। सामान्य जनता 'विश' कहलाती थी। योद्धा और रथी 'क्षत्रिय' कहलाते थे तथा पुरोहित 'ब्राह्मण'। प्रारम्भ में सभी श्रेणियों के बीच परस्पर खानपान होता था और वैवाहिक सम्बन्ध भी चलता था। समाज के विभाजन को ही लोग वर्ण-व्यवस्था भी कहते थे।

उत्तर-वैदिक-काल

उत्तर-वैदिक युग मे धर्म मे काफी अन्तर आ गया। एकेश्वरवादी प्रवृत्ति पुष्ट हो रही थी। प्रजापति की महिमा बढ़ने लगी थी। प्रजापति द्वारा वराहरूप में पृथ्वीधारण तथा कूर्म बनने की कथा इस युग मे चल पड़ी तथा यही बाद मे अवतारों का मूल बनी। इस युग में याज्ञिक कर्मकाण्ड की जटिलता बढ़ गई तथा मन्त्रों के महत्त्व में वृद्धि हुई।

इस युग में आर्यो ने समाज-संस्थान की नींव डाली। इस काल में वर्णाश्रम-व्यवस्था परिपक्व हुई। इसका आधार दृढ हो गया, अतः वर्णो का आधार कर्म न होकर जन्म हो गया। इस काल में ऊँच-नीच की भावना जागृत होने लगी थी।

पूर्व तथा उत्तर दोनों ही वैदिक कालों में हमे जो वर्ग - विभाजन देखने को मिलता है, वह वर्णो का विभाजन है, जहाँ भिन्न-भिन्न वर्णो के भिन्न-भिन्न कार्य थे। पूर्व-वैदिक काल में यह कर्म पर आधारित था, जबकि उत्तर-वैदिक काल में इसका आधार जन्म था, परन्तु विभाजन तब भी कार्यो का ही था। उनके धार्मिक मान्यताओं या धार्मिक विश्वासो में कोई अन्तर नही था तथा इस आधार पर किसी सम्प्रदाय-भेद का कोई उल्लेख वैदिक-युगीन साहित्य में नहीं मिलता।

महाकाव्यकाल

महाकाव्यो में रामायण तथा महाभारत प्रमुख हैं। इस समय के सामाजिक जीवन का आधार वर्ण-व्यवस्था ही थी। वर्ण चार थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। कुछ वर्णसंकर जातियो का उल्लेख भी मिलता है यथा:आयोगव, उग्र, करण, निषाद, भार्गव, वैदेहक आदि। वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म था तथा सभी वर्णो के मध्य कार्य-विभाजन था। यह विभाजन होते हुए भी कई बार एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के लिए निर्धारित कार्य को करता था। महाभारत में द्रोणाचार्य ने ब्राह्मण होते हुए कौरवों तथा पाण्डवों को धनुर्विद्या की शिक्षा दी। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा सभी ने जन्मना ब्राह्मण होते हुए

भी महाभारत युद्ध में भाग लेकर क्षत्रिय कर्म किया। रामायण में यह कार्य-विभाजन कठोर प्रतीत होता है क्योंकि अनधिकारपूर्वक तप करते हुए शूद्र शम्बूक का श्रीराम ने वध कर दिया था।

महाकाव्यकाल मे भी धार्मिक आधार पर भिन्न समुदायो के अस्तित्व का कोई भी उल्लेख नही मिलता है। उस समय के सनातन धर्म के अनुसार ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता, विष्णु को पालनकर्त्ता तथा शिव को संहारक माना जाता था। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। श्रीराम द्वारा सेतुबन्धन के पूर्व शिवजी की पूजा करने तथा शिवलिङ्ग की स्थापना का उल्लेख रामायण में है। इससे पता चलता है कि उस समय आराध्य देव के आधार पर कोई सम्प्रदाय-भेद नहीं था।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक का काल

धार्मिक दृष्टिकोण से ई० पू० छठी शताब्दी का काल भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण युग माना गया है। इस युग में एक नई विचारधारा चल पडी। तत्कालीन दार्शनिक और चिन्तक विश्व की वास्तविक परिस्थिति व उसमे मनुष्य का उपयुक्त स्थान जानने की चेष्टा में संलग्न हुए। इस समय के आते-आते धर्म में केवल बाह्य आडम्बर ही बच गया था। जनता जटिल कर्मकाण्ड से ऊब चुकी थी और सरल मार्ग की खोज में थी। इस समय धार्मिक सुधार की एक लहर उठी। तत्कालीन धर्म, जिसे इतिहासकारों ने वैदिक धर्म या ब्राह्मण धर्म कहा है, के विरुद्ध बहुत से सम्प्रदाय बने। ये सभी सम्प्रदाय ऐसे थे जो वैदिक धर्म के विरुद्ध घूम-घूम कर प्रचार करते थे। ई० पू० छठी शताब्दी में भारत में दो नए धर्मो का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप भौतिक और वैदिक जगत् की विचारधाराओं में विशेष परिवर्तन हुए। इनमें एक था जैनधर्म और दूसरा था बौद्धधर्म। जैनधर्म मे भी दो सम्प्रदाय हुए- श्वेताम्बर तथा दिगम्बर। इसी प्रकार बौद्धधर्म में भी दो सम्प्रदाय हुए – हीनयान तथा महायान। जैन तथा बौद्ध धर्म के अतिरिक्त भी देश मे कई अन्य सम्प्रदाय थे। पालिग्रन्थों से पता चलता है कि जिस समय बुद्ध ने धर्मप्रचार शुरू किया था उस समय देश में 62 विभिन्न सम्प्रदाय थे। जैन ग्रन्थों के अनुसार उनकी संख्या 363 थी। इनमें से प्रमुख सम्प्रदाय इस प्रकार थे – आजीवक, जटिलक, मुण्ड-साधक, मुण्डवानक,

परिव्राजक, मागन्धिक, गोतमक, तेदण्डिक इत्यादि। कुछ भौतिकतावादी सम्प्रदाय भी अस्तित्व मे थे, जैसे- लोकायत सम्प्रदाय। मगध की शासन-पद्धति भी लोकायत-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित मालूम पडती है। स्वयं कौटिल्य लोकायत-सम्प्रदाय[1] का समर्थक जान पडता है और उसके लेखो से भौतिकतावादी दर्शन को बड़ा बल मिलता है। ब्राह्मण धर्म में भी इस समय वैष्णव, जो विष्णु के उपासक थे तथा शैव, जो शिव के उपासक थे, ये दो सम्प्रदाय हो गए थे। कट्टर ब्राह्मणो ने शैव-सम्प्रदाय का वड़ा विरोध किया। कालान्तर में इन दोनों सम्प्रदायों का विभेद समाप्त हो गया। उस काल मे इतने सारे सम्प्रदायों के होते हुए भी राजनीतिक स्तर पर साम्प्रदायिक आधार पर किसी भेदभाव का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। बिम्बिसार स्वय वुद्ध का समर्थक था, परन्तु दूसरे सम्प्रदायों को भी दान देता था।

मौर्य साम्राज्य

तत्कालीन समाज मूलतः तीन धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त था- वैदिक या ब्राह्मण धर्म, जैनधर्म तथा वौद्ध धर्म। राज्य की ओर से किसी धर्म पर किसी प्रकार का प्रतिवन्ध नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसार आचारण की स्वतन्त्रता थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य प्रारम्भ मे जैनेतर धर्म मे विश्वास रखने वाला था। उसकी राजसभा में एक मन्त्री जटिलक समुदाय का था। जटिलक सम्प्रदाय का उल्लेख वौद्ध ग्रन्थों मे मिलता है। वौद्ध धर्म के प्रति चन्द्रगुप्त की आस्था थी या नही, यह कहना कठिन है। जीवन के अन्तिम चरण में वह जैन धर्मावलम्वी हो गया। धार्मिक सहिष्णुता का वह समर्थक था।

अशोक ने कलिङ्ग-विजय के पश्चात् वौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था। डी० डी० कौशाम्बी के अनुसार अशोक के धर्म-परिवर्तन से न तो किसी राज्य-सम्वद्ध धर्मव्यवस्था की सृष्टि हुई और न किसी धर्म को खत्म ही किया गया। अशोक के अभिलेखों में 'धम्म' शब्द का प्रयोग वार-बार हुआ है। 'धम्म' शब्द के वास्तविक अर्थ पर विद्वानो में काफी मतभेद है। वास्तव में अशोक का 'धम्म' सभी धर्मो का सार था। उस पर सभी धर्मों का प्रभाव था। सब धर्मो की अच्छी वातों का उसने प्रचार किया। जिस 'धम्म' का

रूप उसने संसार के सामने रखा वह सारे धर्मो का सार है। अशोक के समय बौद्धधर्म पूर्ण रूप से विकसित हुआ, फिर भी देश मे धार्मिक सहिष्णुता थी और अशोक स्वयं सभी धर्मो का आदर करता था। उसके समय में वैदिक यज्ञ एवं कर्मकाण्ड का महत्त्व घट गया था। सातवें शिलालेख में मात्र संघ, ब्राह्मण, आजीवक तथा निर्ग्रन्थ सम्प्रदायो का उल्लेख है। उसी शिलालेख में अशोक कहता है, "सभी सम्प्रदाय एक ही स्थान पर रहे, क्योकि वे सब आत्मा की शुद्धि एवं संयम चाहते हैं।"

बारहवें शिलालेख से अशोक की धार्मिक सहिष्णुता का पता चलता है। उसने बहुश्रुति (विभिन्न मतों को सुनना), समवाय (समितियों में एकत्र होना) और वचोगुप्ति (धार्मिक आलोचना की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करना) जैसे सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। विभिन्न सम्प्रदायों के मूल सिद्धान्तो को ही वह धर्म समझता था और शुद्ध आचरण पर विशेष जोर देता था। अशोक के अभिलेख मे स्वर्ग का उल्लेख है, निर्वाण का नही। दूसरे धर्मो के प्रति उसकी नीति उदार थी। बौद्धधर्म के प्रचार के लिए सचेष्ट होते हुए भी उसने उसे प्रजा पर जबर्दस्ती नही लादा। जहाँ एक ओर उसने ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति दानशीलता का उदाहरण दिया वही दूसरी ओर उसने आजीवकों को भी गुफादान किया। धर्ममहामात्र सभी धर्मो की भलाई के लिए नियुक्त किए गए थे। सभी धर्मावलम्बियों को उसने वास-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी। अपनी धर्मयात्राओं मे ब्राह्मणों, श्रमणो और अन्य सम्प्रदायो को वह दान देता था। धार्मिक सहिष्णुता अशोक की धार्मिक नीति की आधारशिला थी। मौर्य वंश के ही एक अन्य शासक दशरथ ने आजीवको के लिए गुफादान किया था, जिसका प्रमाण अभिलेखों में मिलता है। इस प्रकार मौर्यकाल की धार्मिक नीति सहिष्णुता व समन्वय की नीति थी।

ईसा पूर्व 185 से 320 ई० के बीच का काल

(क) शुङ्ग-कण्व-काल

शुङ्ग-कण्व-काल ब्राह्मणधर्म, वर्ण और संस्कृति के पुनरुद्धार का काल माना गया है। पुष्यमित्र शुङ्ग का क्षत्रिय की भाँति शस्त्र-ग्रहण धर्म-विहित माना गया है। अशोक की उदार नीति से ब्राह्मण क्षुब्ध

थे। राजाश्रय पाकर श्रमण विचारधारा ने वेद-प्रामाण्य, ब्राह्मणों के सम्मानप्रद स्थान, प्रवृत्तिमूलक लोक संग्रह, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, यजन-याजन आदि सभी पर आघात किया था। यही कारण है कि ब्राह्मण मौर्यो की उदार नीति के विरुद्ध थे। पुष्यमित्र शुङ्ग स्वयं इस बात को मानता था कि ब्राह्मण और श्रमण मे शाश्वत विरोध है। इसी विश्वास के आधार पर पुष्यमित्र ने ब्राह्मणों का सगठन किया था और उसका राज्यारोहण ब्राह्मण-पुनरुत्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उसके शासनारूढ़ होने के परिणामस्वरूप ब्राह्मणधर्म की पुनः प्रतिष्ठा हुई। ब्राह्मण-पुनरुद्धार का जो कार्य शुङ्गों ने प्रारम्भ किया था, उसे कण्वों ने भी आगे जारी रखा। 'दिव्यावदान' के अनुसार पुष्यमित्र बौद्धधर्म के प्रति असहिष्णु था। उसने साकल मे प्रत्येक बौद्धभिक्षु के मस्तक के लिए सोने की सौ-सौ दीनारें देने की घोषणा की थी। तारानाथ भी उसके बौद्ध-विरोधी होने की पुष्टि करता है और उसने उसे बौद्धविहारों को नष्ट करने वाला कहा है। दिव्यावदान और तारनाथ का कथन पक्षपात से मुक्त नही है। पुष्यमित्र एक कट्टर ब्राह्मण था फिर भी साकल मे उसकी नीति को हम यूनान-विरोधी कह सकते है, बौद्ध-विरोधी नही। विदिशा के निकट भरहुत में उसने दान द्वारा अनेक बौद्ध-स्तूपों का निर्माण होने दिया। यह उसकी धार्मिक सहिष्णुता का ही परिचायक है। भरहुत के एक 'सुगनम् राज' शिलालेख में लिखा है कि ये स्तूप शुङ्गो के राज्य में थे। भरहुत का यह लेख निस्सन्देह 'दिव्यावदान' की कहानी के विरुद्ध जान पडता है और पुष्यमित्र की तथाकथित धार्मिक असहिष्णुता को निर्मूल सिद्ध कर देता है। यह सही है कि वह ब्राह्मण धर्म का समर्थक व संरक्षक था, किन्तु बौद्धो के साथ उसके सद्व्यवहार के प्रमाण भी मिलते हैं।

(ख) सातवाहन-काल

इस युग में वैदिक धर्म का विशेष उत्कर्ष हुआ। बौद्धो के विरुद्ध प्रतिक्रिया और सातवाहनों का राजाश्रय प्राप्त होने से वैदिक धर्म का पुनरुत्थान सम्भव हुआ। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के साथ पौराणिक धर्म और वैष्णव धर्म का उदय होता हुआ भी दिखाई देता है। वैष्णवधर्म धीरे-धीरे लोकप्रिय होता गया और इसे यवनों तथा शकों ने भी अपनाया। शक-शासक उषवदात् वैदिक धर्मावलम्बी था। सातवाहन

शासको ने कर्मकाण्ड को भी आश्रय दिया। उनके अभिलेखो से विष्णुपालित, विष्णुदत्त, गोपाल आदि नामों से विष्णु की प्रतिष्ठा का प्रमाण मिलता है, शिवदत्त, शिवभूर्ति आदि नामों से शिवपूजा का प्रमाण मिलता है। नासिक-अभिलेख म धर्मदेव और उसके पुत्र इन्द्राग्निदत्त के नाम मिलते हैं। वे यवन थे और उन्होंने वौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था। इस काल में धार्मिक-उत्पीडन का उदाहरण नही मिलता तथा अनुमान लगाया जा सकता है कि शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई थी। वे लोग सभी धर्मो के लोगों को दान देते ते। उन लोगों ने बौद्धो के लिए गुफा-निर्माण किया और उनके भोजन-वस्त्रो के लिए स्थायी निधि का दान किया। भाजा, कार्ले और नासिक में इस प्रकार के कई गुफा-बिहार और चैत्य बनाए गए थे। कलिङ्ग में जैनधर्म का प्रभाव था। नानाघाट-अभिलेख मे चारों दिशाओ के देवता यम, वरुण, कुवेर और वासव का उल्लेख मिलता है। सातवाहन लोग अन्य धर्मावलम्बियों को भी दान दिया करते थे और वहुत हद तक धार्मिक स्वतन्त्रता इन लोगों के समय तक बनी रही। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि प्रथम शताब्दी और चतुर्थ शताब्दी के वीच दक्षिण भारत में बौद्ध-स्तूपों और विहारो का काफी विकास हुआ और इसका पता तत्कालीन अभिलेखों से लगता है। स्तूप और चैत्यों का भी काफी विकास हुआ।[2]

कुषाण वंश

कुषाण वंश का सवसे प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली तथा प्रभावशाली शासक था और भारतीय सम्राटो की श्रृङ्खला में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कनिष्क की प्रसिद्धि विजेता की अपेक्षा वौद्ध-प्रचारक के रूप में अधिक है। उसने इस धर्म का प्रचार अपने विस्तृत साम्राज्य और आस-पास के प्रदेशों में कराया। उसने वहुत से चैत्य, स्तूप तथा विहार बनवाए और वौद्ध धर्म को आश्रय दिया। चतुर्थ वौद्ध-संगीति भी उसी के समय में हुई। बुद्ध प्रतिमाएं और वोधिसत्त्व की मूर्तियाँ भी इसी समय वननी प्रारम्भ हुई। वौद्धधर्म के प्रसार के लिए विदेश में प्रचारक भी भेजे गए और भारत के बाहर भी बौद्धधर्म एक व्यापक धर्म हो गया। इस समय बौद्धधर्म चीन और एशिया तक फैल गया। कनिष्क

का धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण नही था, बल्कि उसकी धार्मिक उदारता सराहनीय थी। उसकी मुद्राओं पर अङ्कित देवता उसके विस्तृत साम्राज्य में प्रचलित विभिन्न धर्मो के अस्तित्व का बोध कराते हैं। उसकी मुद्राओं पर यूनानी, जरथुष्ट्री, वैदिक और बौद्ध सभी प्रकार के देवताओं के चित्र अङ्कित हैं, जैसे- ओइशो (शिव), सकेमो बौद्धो (शाक्यमुनि बुद्ध), ओआडो (ईरानी वाडो, वैदिक वात), अथशो (ईरानी अतश, अग्नि), माओ (मास, चन्द्रमा), मिरो (ईरानी मिथ्र, वैदिक मिहिर), नाना (सुमेरियन मातृदेवी), आरलैग्नो (ईरानी बहराम), फैरो (ईरानी फार, सूर्य), हेलिओस (यूनानी सूर्य), सेलेनी (यूनानी चन्द्रमा) इत्यादि। इससे कनिष्क के धार्मिक मामलो में उदार होने का पता चलता है। विभिन्न स्थानीय देवी-देवताओं का वह आदर करता था। सुमेरियन, इलामाइट, मिथ्रेइक, फारसी तथा हिन्दू धर्म के देवताओं की उपासना उसके दूर-दूर के प्रदेशों में होती थी। वह स्वयं उनका आदर करता था। इलामाइट देवी नाना के नाम पर ही उसने 'नाणक' मुद्राएं प्रचलित की थी। धार्मिक सहिष्णुता उसकी नीति का मूलाधार कही जा सकती है।

सभी कुषाण शासको ने धर्म के क्षेत्र में उदारता का परिचय दिया। उन सभी की मुद्राओं पर विभिन्न धर्मो के देवी-देवताओं का अङ्कन है। प्रत्येक सम्राट् का अपना वैयक्तिक धर्म अलग था। विम शैव था, कनिष्क बौद्ध था, हुविष्क भी बौद्ध था, वासुदेव शायद शैव या वैष्णव था। इन सभी ने विभिन्न धर्मावलम्बियो के मध्य धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया।

गुप्तकाल

गुप्तयुग मे धार्मिक जीवन मे पुनरुत्थान, संस्कार और समन्वय की प्रवृत्तियॉ दिखाई पड़ती है। राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा से राष्ट्र के मूल तथा प्रमुख वैदिक धर्म का पुनरूद्धार हुआ। वैष्णव धर्म गुप्त-सम्राटो का राजकीय धर्म था। उनकी मुद्राओं पर गरुड और लक्ष्मी की मूर्त्तियॉ अङ्कित थीं। वे अपने-आपको परमभागवत कहते थे। गुप्तकाल में लोकप्रिय शैवसम्प्रदाय माहेश्वर कहलाता था। मथुरा से प्राप्त 380 ई० के एक अभिलेख में शैवमाहेश्वर सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायों

मे विभक्त था. जिनकी संख्या फाह्यान के अनुसार 96 थी। इस युग में बौद्ध तथा जैन धर्म अवनति की ओर थे। गुप्तयुग में किसी भी धर्म को क्षति नही पहुँचाई गई क्योकि गुप्त-सम्राट धार्मिक सहिष्णुता की नीति में विश्वास करते थे। उस समय के धर्म की मुख्य विशेषताएं थीं – भक्ति का उत्तरोत्तर प्राधान्य और समाजप्रेम। परोपकारपूर्ण कार्यो तथा सहिष्णुता के उदाहरणों से गुप्त-युग भरा पडा है। 'हर्षचरित' मे गुप्तकालीन धार्मिक सम्प्रदायों के नाम इस प्रकार है – भागवत, पाञ्चरात्र, सौगत (बौद्ध), मस्करिय, दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि। इस युग मे बुद्ध को भी वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा विष्णु का ही एक अवतार मान लिए जाने से बौद्धगृहस्थो तथा ब्राह्मणगृहस्थों में बहुत कम अन्तर रह गया। बौद्ध, शैव या वैष्णव राजपरिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध होने से बौद्ध हिन्दू-सम्प्रदायो मे विलीन हो गए। इस प्रकार गुप्तयुग में एक नवीन हिन्दूधर्म का उत्थान हुआ जो विभिन्न तत्त्वों के सम्मिश्रण से बना था। धार्मिक विश्वास तथा पूजा-पद्धति की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उत्कीर्ण लेखों से प्रजा की पारस्परिक सहिष्णुता, उदारता और सहयोग की भावना प्रकट होती है। सरकारी नौकरियो में धर्म बाधक नहीं था, यह चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रधान अधिकारी आम्रकार्दव की नियुक्ति से प्रकट होता है, जो कि बौद्ध था। समुद्रगुप्त गरुडवाहन विष्णु का भक्त था, परन्तु दूसरे सम्प्रदायो का भी आदर करता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय धर्म सहिष्णु था। उसका मन्त्री वीरसेन शैव था। फाह्यान भी उसकी धर्मसहिष्णुता व दानशीलता की प्रशंसा करता है। कुमारगुप्त ने भी धार्मिक सहिष्णुता का पूर्ण परिचय दिया। उसका एक सेनापति पृथ्वीषेण था, जो शैवोपासक था। ह्वेनसांग गुप्तसम्राट् शक्रादित्य को नालन्दा में बौद्ध विहार की स्थापना का श्रेय देता है। शक्रादित्य को कुछ लोग कुमारगुप्त मानते हैं। समुद्रगुप्त भी स्वयं वैष्णव था और साथ ही धर्मसहिष्णु भी। काहौम अभिलेख से ज्ञात होता है कि मद्र नामक एक व्यक्ति ने जैन तीर्थकरों की पत्थर की पांच मूर्तियॉ स्थापित करायी। समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर 'नन्दी' का भी चित्र मिलता है। इन सब बातों से उसकी धर्मसहिष्णुता का पता चलता है।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राटों ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी अनेक शैव मन्दिरों

का निर्माण किया और अन्य धर्मावलम्बियो को भी ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। बौद्धो और जैनों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। इनकी इस धार्मिक उदारता की नीति से देश को बहुत बल मिला और सांस्कृतिक विकास को भी प्रोत्साहन मिला।

हर्षवर्धन का काल

हर्षवर्धन का व्यक्तिगत धर्म क्या था, यह एक विचारणीय प्रश्न है। अपने अभिलेखों में उसने अपने को 'परममाहेश्वर' कहा है। प्रारम्भ में उसके शैव होने का प्रमाण भी मिलता है, परन्तु बाद में वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हो गया तथा ह्वेनसांग के प्रभाव मे बौद्ध हो गया। उसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। प्रयाग मे हर्ष ने अपने छटे पञ्चवर्षीय दान वितरण समारोह का आयोजन किया था। इस सभा में विभिन्न सम्प्रदायों के लगभग पॉच लाख लोगों ने भाग लिया। इसमें बुद्ध, सूर्य, शिव आदि की पूजा हुई और सभी सम्प्रदायों के लोगों को पर्याप्त मात्रा मे दान दिया गया। इससे पता चलता है कि वह धार्मिक आधार पर भेद भाव नही करता था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में उस समय के कुछ सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है – आर्हत (जैन), मस्करी (परिव्राजक), श्वेतपट (श्वेताम्बर), पाण्डुभिक्ष (श्वेतवस्त्रधारी भिक्षु), भागवत, वर्णी (ब्रह्मचारी), लोकायत (चार्वाक), जैन. बौद्ध, कणाद, औपनिषदिक, ऐश्वरकारणिक (न्याय-दर्शन को मानने वाले), पौराणिक, शैव, पाञ्चरात्रिक आदि। उस समय बौद्धधर्म ह्रासोन्मुख था। जैन धर्म दक्षिण की ओर खिसक रहा था। वाणभट्ट ने जैनाचार्य दिवाकरमित्र का उल्लेख किया है। विन्ध्याटवी मे उसका आश्रम था, जहॉ विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी शिक्षा के लिए एकत्र होते थे। इससे पता चलता है कि हर्ष के समय शिक्षा का समन्वय हो गया था तथा उससे साम्प्रदायिक विभेद लुप्त हो गया था।

बङ्गाल का इतिहास

गौड़ वंश – गौड़ों का सर्वप्रथम ऐतिहासिक शासक शशाङ्क था। वह बङ्गाल और भारतीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्धधर्म का उच्छेदक था तथा उसी ने

बोधिवृक्ष को नष्ट किया। ह्वेनसांग के कथनानुसार बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र को उसकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण भारी क्षति उठानी पड़ी।

पालवंश – अधिकांश पाल राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। साहित्य तथा धर्म के प्रसार में पाल-शासको ने सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने ब्राह्मणो को खुलकर दान दिया और हिन्दू देवताओं के अनेक मन्दिर बनवाए। वे हिन्दूधर्म के विरुद्ध कभी नहीं थे। बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा का विकास भी इसी युग मे हुआ। बौद्ध पाल-शासक धार्मिक सहिष्णुता की नीति में विश्वास रखते थे। ये लोग ब्राह्मण मन्त्रियो को नियुक्त करते थे।

राजपूत-वंशों का इतिहास

इस काल में हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म प्रचलित थे। मुसलमानों का आगमन भी हो चुका था। आधुनिक हिन्दू धर्म ने इस काल में अपना स्वरूप ग्रहण कर लिया था। राजपूत वंश के लोग विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते थे, और उनमें धार्मिक सहिष्णुता थी। एक शिलालेख मे जयचन्द्र को बौद्धभिक्षु का शिष्य कहा गया है। इन लोगो ने बौद्ध-विहारों को दान भी दिया था। इस समय विभिन्न सम्प्रदायों के बीच मेलजोल था तथा धार्मिक सहिष्णुता थी।

दक्षिण-भारत का इतिहास

राष्ट्रकूट-वंश – राष्ट्रकूट हिन्दू-धर्म (मूलतः शिव और विष्णु) के मानने वाले थे, परन्तु अन्य धर्मो के प्रति भी वे काफी सहिष्णु थे। हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बड़ा उदार था। गुजरात शाखा का कर्क-सुवर्ण स्वयं शैव था, परन्तु उसने जैनों को भी खुलकर दान दिया। अमोघवर्ष ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया था, परन्तु उसके बाद भी हिन्दूधर्म के प्रति उसकी आस्था बनी रही। विदेशियों, खासकर अरबों के साथ भी उनका अच्छा सम्बन्ध था।

चालुक्य वंश – वातापी के चालुक्य कट्टर ब्राह्मण थे, परन्तु साथ ही साथ अन्य धर्मों के प्रति

सहिष्णु भी। उनके उत्कर्ष के समय दक्षिण में जैनधर्म का बोलबाला था। ऐहोल-अभिलेख से ज्ञात होता है कि रविकीर्ति ने जिनेन्द्र का मन्दिर बनवाया। विजयादित्य और विक्रमादित्य द्वितीय ने भी जैन-पण्डितों को ग्रामदान किए। इस क्षेत्र मे बौद्धधर्म का ह्रास हो रहा था तथा ब्राह्मणधर्म उत्कर्ष पर था।

पल्लव-वंश – इस युग में वैष्णवधर्म और शैवधर्म की प्रधानता थी, परन्तु बौद्धधर्म और जैनधर्म को भी प्रोत्साहन मिलता था। दस हजार बौद्ध-भिक्षुओं का उल्लेख ह्वेनसांग करता है। धर्मपाल काञ्ची का रहने वाला था। विभिन्न शैव-सम्प्रदायो का जन्म भी दक्षिण में इसी समय हुआ। आलवार वैष्णव सन्तों के प्रचार से वैष्णव धर्म भी फला-फूला। महेन्द्रवर्मन प्रथम पहले जैनधर्म को मानने वाला था, किन्तु बाद में शैवधर्म के प्रभाव में आ गया। धर्मपरिवर्तन के बाद भी वह धर्म के विषय मे उदार रहा। उसने शैव-मन्दिरों के साथ-साथ ब्राह्मण और वैष्णव मन्दिर भी बनवाए।

चोल-वंश – चोल राजा शैव थे, और उस क्षेत्र मे इस धर्म की प्रधानता थी। वे दूसरे धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति उदार थे। वैष्णव, बौद्ध और जैन सम्प्रदायो का भी प्रचलन था। सभी धर्मो के लिए राज्य की उदारता और दान का द्वार खुला हुआ था। शैव होते हुए भी राजराज ने विष्णु मन्दिर बनवाया था और बौद्ध-विहारों को दान दिया था। वैष्णव आलवार तथा शैव नायनमार अपने सिद्धान्तो की व्याख्या तथा प्रचार में स्वतन्त्र थे।

(ख) मध्यकालीन भारत

तुर्क-वंश

ऐबक एवं इलबरी घराने – कुतुबुद्दीन ऐबक के विषय में यह कहा जाता है कि शान्ति के समय में वह हिन्दुओं से अच्छा व्यवहार रखता था, परन्तु युद्ध में उसने हजारों निर्दोष हिन्दुओं की हत्या की । परन्तु युद्ध में विरोधी पक्षधारियों की हत्या को धार्मिक-नीति से नहीं जोड़ा जा सकता। उसने सिर्फ चार वर्ष शासन किया इसलिए उसकी धार्मिक -नीति के विषय में कुछ भी ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। उसने दिल्ली में 'कुतुब-उल-इस्लाम' तथा अजमेर में 'ढाई दिन का झोपड़ा' इन दो मस्जिदो का निर्माण कराया।

इल्तुतमिश ने धर्म के मामले में उस उलमावर्ग का समर्थन किया जो सुन्नी सिद्धान्तों का समर्थक था। इल्तुतमिश ने इस नीति को न केवल निजी विश्वास वरन् राजनीतिक सुविधा के कारण भी अपनाया क्योकि अधिकांश भारतीय मुसलमान तथा तुर्क सुन्नी मत के मानने वाले थे। इल्तुतमिश ने अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए उलमावर्ग की सम्मति को इतना महत्त्व दे दिया कि वे अन्य लोगों पर अत्याचार करने लगे। इस कारण शिया सम्प्रदाय के लोग विद्रोही हो गए। उनमे एक वर्ग इस्माइलिया मुसलमानो का था, जिन्होंने इल्तुतमिश का वध करके राजशक्ति अपने हाथ में लेने की कोशिश की, किन्तु सफल न हो सके।

बलबन कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह धार्मिक कार्यो में व उलमाओ के सत्संग में अधिक अभिरुचि लेता था। अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण वह हिन्दुओं के साथ सहिष्णुता का व्यवहार न कर सका। धर्मपरिवर्तन के बाद भी वह हिन्दुओं को शासन मे पद देने का समर्थक न था।

खिलजी-वंश – अलाउद्दीन खिलजी को धर्म-प्रचार के विषय में काजी अलाउल्मुल्क ने समझाया कि यह कार्य पैगम्बरों का है। तलवार के बल से अथवा केवल योजना के सहारे धर्म-स्थापन सम्भव नहीं है, उसके लिए ईश्वरीय प्रेरणा की आवश्यकता होती है। राजा का कार्य राज्य करना है न कि धर्म के

मामले में हस्तक्षेप करना। अलाउद्दीन ने इस सलाह पर धीरतापूर्वक विचार किया और उसने स्थिर किया कि वह न केवल धर्म-प्रचार के विचार का परित्याग कर देगा वरन् धर्म और राजनीति को एक-दूसरे से अलग रखकर धर्म-निरपेक्ष राज्य स्थापित करेगा। परन्तु अलाउद्दीन ने ऐसा कोई कार्य नही किया कि उसे कट्टरपन्थी उलमा का विरोध सहना पडे। उसने उनको न्याय-विभाग मे अधिकांश पद देने की परिपाटी में कोई परिवर्तन नही किया। वह सामाजिक क्षेत्र मे तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में इस्लाम की शिक्षाओं का यथासाध्य पालन करता था और वीच-बीच मे उनसे वचार-विनिमय करता था। परन्तु उसने शासन-नीति को उनके आधिपत्य से मुक्त कर लिया और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि वही राजनियम बनाना उचित है, जो परिस्थिति के अनुकूल तथा देशहित में हो तथा इस सम्बन्ध मे यह चिन्ता करना अनावश्यक है कि वह इस्लाम के धार्मिक सिद्धान्तों के अनुकूल है या नही।

तुगलक-वंश – गयासुद्दीन तुगलक की धार्मिक नीति वहुत कठोर नही थी। उसने सुन्नी-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अनुकरण किया। जितना विवरण मिलता है, उससे पता चलता है कि उसने हिन्दुओं के देवालयों को भ्रष्ट करने अथवा उनको आग्रहपूर्वक मुसलमान बनाने का कोई उद्योग नहीं किया। उसकी कठोर करनीति का कारण धार्मिक न होकर राजनीतिक था। उसने हिन्दुओं का अकारण रक्तपात नही किया और तेलगाना तथा तिरहुत मे विजय प्राप्त करने के उपरान्त राजनीतिक सत्ता अवश्य ली परन्तु जनसाधारण के साथ अपेक्षाकृत उदारता का व्यवहार किया। इस प्रकार गयासुद्दीन तुगलक के समय से ही हिन्दुओं के प्रति धार्मिक असहिष्णुता की नीति मे परिवर्तन होने लगा था। उसके समय में देवालयों के विध्वंस तथा वलात् धर्मपरिवर्तन की घटनाएं नहीं सुनाई पडती । उसने उन हिन्दुओं को जिनकी नियुक्ति खुसरो या मुवारकशाह के समय में हुई थी, सरकारी पदों से तभी हटाया जव उनके विरुद्ध कोई गम्भीर राजनैतिक अपराध सिद्ध हो गया।

मुहम्मद विन तुगलक के समय में भी यही नीति रही और कुछ दिशाओं में अधिक उदार हो गई। उसने नगरकोट-विजय के वाद ज्वालामुखी मन्दिर को तोड़ने अथवा वहाँ किसी प्रकार का धार्मिक

अनाचार करने की चेष्टा नही की। उसने कई हिन्दुओं को ऊँचे पद भी दिये थे। रतन सिन्ध में एक प्रभावशाली कर्मचारी था और उसको अजीमुस्सिन्ध की पदवी दी गई थी। भैरों गुलवर्गा का शासक नियुक्त किया गया था और कुतगुल खॉ को हटाये जाने के बाद धराधर देवगिरि मे अर्थ-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। उसने अकाल पीडितो की सहायता तथा कृषि की उन्नति के लिए जो उद्योग किया उससे पता चलता है कि वह हिन्दू-प्रजा के हितो का भी ध्यान रखता था। उसके काल में जहाँ हिन्दुओं को कष्ट हुआ भी, उसका कारण राजनीतिक था, धार्मिक नहीं।

फीरोजशाह तुगलक की माता हिन्दू थी और सम्भवतः इसी कारण उसने इस्लाम के सिद्धान्तों के प्रति आस्था रखने तथा हिन्दुओं पर अत्याचार करने का विशेष प्रदर्शन किया। बलबन के समय से ही उलमा का शासन पर प्रभाव उत्तरोत्तर घट रहा था। परन्तु फीरोज ने अपने को विशुद्ध मुसलमान साबित करने के लिए इस नीति को उलट दिया और अपनी नकेल उलमा के हाथ में दे दी। इस नीति का कुपरिणाम यह हुआ कि शासन का सञ्चालन सङ्कीर्णता, पक्षपात व साम्प्रदायिकता के आधार पर होने लगा।

मुल्ला-मौलवी उसे बराबर घेरे रहते थे और उसे गैर-सुन्नी मुसलमानों तथा हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार करने के लिए उकसाया करते थे। उन्ही की सलाह मे उसने ब्राह्मणों पर भी जजिया लगा दिया। जब दिल्ली के ब्राह्मणो ने इसका विरोध किया तथा अनशन प्रारम्भ कर दिया तब भी उसने अपनी नीति नहीं बदली। उसका कहना था कि क्योंकि ब्राह्मण ही हिन्दुओं के धार्मिक नेता है, इसलिए उनसे अवश्य ही कर लेना चाहिए। ब्राह्मण इस कर से सदा मुक्त रहे थे और इस्लामी परिपाटी के अनुसार जो सुविधाएं परम्परागत हों तथा पूर्ववर्ती सुल्तानों द्वारा दी गई हों, उनमें हस्तक्षेप करना अनुचित समझा जाता था। तथापि उसने ब्राह्मणों पर यह कर लगाया।

इससे भी अनुचित कार्य था दिल्ली के एक ब्राह्मण को जीवित जलवा देना। उसका अपराध यह था कि उसके जीवन और विचारों से प्रभावित होकर कुछ मुसलमान स्त्रियाँ हिन्दू हो गई थी। सुल्तान ने

उससे इस्लाम-धर्म स्वीकार करने को कहा तथा ऐसा न करने पर उसे तथा उसकी पूजा की प्रतिमाओं को जलवा दिया गया। इस प्रकार का अत्याचार एकदम अभूतपूर्व था। इसके कारण हिन्दू जनता की धार्मिक भावनाओं पर बहुत ठेस लगी। इसके अतिरिक्त उसने ज्वालामुखी तथा जगन्नाथ के मन्दिरो को भ्रष्ट किया, हिन्दुओं के धार्मिक मेलों पर रोक लगाई, नये मन्दिर गिरवा दिए तथा पुराने मन्दिरो के जीर्णोद्धार की अनुमति नही दी। इस भॉति उसने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किए, हॉ, इतना अवश्य है कि उसने उन प्राचीन मन्दिरों को ध्वस्त नही किया जिनमें किसी प्रकार की मरम्मत की आवश्यकता नही थी।

उसकी कठोरता सिर्फ हिन्दुओं के लिए ही नही थी। उसने गैर-सुन्नी मुसलमानों के ऊपर भी अत्याचार किए। उसने महदवियों, मुलहिदों एवं सूफ़ियों के धार्मिक कृत्यो एव विश्वासो में हस्तक्षेप किया और महदवी नेता रुकनुद्दीन को मरवा दिया।

इस प्रकार हम देखते है कि तुर्क शासन की एक विशिष्टता थी- धार्मिक पक्षपात की नीति, यद्यपि इसका परिमाण व स्वरूप सदा एक सा नही रहा। फीरोज तुगलक के समय यह पक्षपात अपनी पराकाष्ठा पर था। अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद बिन तुगलक अपेक्षाकृत अधिक उदार थे और उन्होंने धर्म तथा राजनीति को अलग रखने की चेष्टा की। परन्तु आमतौर पर तुर्को की धार्मिक नीति विभेदकारी थी। धार्मिक पक्षपात के आधार पर सरकारी नौकरियों, राजकर तथा साधारण नागरिक सुविधाओं में उन्होंने मुसलमान और गैर-मुसलमान का अन्तर रखा। इस कारण उनको मुसलमानो का समर्थन अवश्य प्राप्त हुआ पर वे हिन्दुओं के हृदय पर अधिकार जमाने मे असफल रहे।

प्रान्तीय राज्य

(1) बहमनी – बहमनी के शासक दक्षिण मे इस्लामी सभ्यता का प्रसार करना अपना ईश्वरदत्त कर्त्तव्य समझते थे। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी। इस कारण बहमनी के शासकों ने जेहाद का नारा लगाकर अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाया तथा कई बार अकारण लाखों

हिन्दुओं की हत्या की। प्राप्त विवरण के अनुमार उनकी दृष्टि में हिन्दुओं पर अत्याचार करना, उनके मन्दिरों को ढहा देना, उनके वाल-वृद्ध-नारियो की हत्या करना अथवा उनको वलपूर्वक कलमा पढ़ा देना ही धार्मिक जीवन का सार था।

(2) विजयनगर – विजयनगर मे हिन्दू शासन था तथा इस शासन का उद्देश्य था – म्लेच्छों के विरुद्ध हिन्दू संस्कृति, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू जनता की रक्षा। इम प्रकार इस राज्य में ब्राह्मण मन्त्रियों का काफी प्रभाव था और वहॉ का शासन धर्मनिरपेक्ष नही कहा जा सकता। परन्तु बहमनी राज्य की तरह यहॉ विधर्मियों पर अत्याचार नही किया जाता था। जैनियों, वैष्णवों तथा शैवों के साथ राजा का समान व्यवहार था और वह उन मवको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करता था। मुसलमानों के साथ भी कोई पक्षपात पूर्ण व्यवहार नही किया जाता था और देवराय ने जव मुसलमान सैनिक भर्ती किए, तव उसने उनके लिए मस्जिदें बनवाने की भी व्यवस्था की। मुसलमान प्रजा को भी सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं।

लोदी-वंश

यह महज ही स्वीकार किया जा सकता है कि लोदी मुल्तान मुमलमान मात्र के प्रति ही कृपा एवं उदारता का व्यवहार करते थे और माधु-सन्त तथा उलमा के प्रति उनका व्यवहार विशेष रूप से सम्मानजनक था। बहलोल, मिकन्दर और उनके मामन्त मुस्लिम सन्तों, विद्वानो, फकीरों और दीन-दुखियों को दान देते थे। उच्चतर पदो पर वे केवल अफगानो को नियुक्त करते थे। किन्तु अन्य सब पदों की नियुक्ति में उन्होने पूर्वकालीन परिपाटी में कोई परिवर्तन नही किया। वहलोल के अनुगतों में राय कर्ण, राजा प्रताप, राय तिलोकचन्द्र और राय धॉधू के नाम मिलते है। ग्वालियर के राजा कीर्तिसिंह और मानसिंह से भी उसका मैत्रीपूर्ण मम्बन्ध था। उसने एक हिन्दू स्त्री से विवाह किया और विशुद्ध अफगान रक्तधारी पुत्र-पौत्रों के होते हुए भी उसी के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी वनाया। वीरसिंह की नियुक्ति

में उसने लोदियो की उपेक्षा की और साधारणतः राजनीतिक सुविधा के लिए युद्ध व सन्धि की, धार्मिक कारणो से नही।

उसके पुत्र सिकन्दर के समय मे इस नीति मे थोडा परिवर्तन आ गया। अपने हिन्दू अनुगतों और मित्र राज्यों के प्रति उसका व्यवहार उतना उदार नही था, जितना उसके पिता का रहा था। जब वह अरैल, धौलपुर, नरवर, मण्डरैल अथवा अवन्तगढ़ में विजयी हुआ, तब यह सदा लिखा मिलता है कि उसने स्थानीय मन्दिरों को तुड़वाकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसके युद्धो के पीछे उसकी धार्मिक भावना प्रधान थी और वह राज्य -विस्तार का इतना इच्छुक नही था जितना काफिरों के विरूद्ध जेहाद करने का। सिकन्दर द्वारा अपनी हिन्दू प्रजा पर किए अत्याचारों का भी जिक्र मिलता है, जैसे कुरुक्षेत्र के मेले के समय हिन्दुओ पर हमला करके वहॉ के मन्दिर तथा तालाब को नष्ट करने की इच्छा, जिसे वह उलमा के विरोध के कारण न कर सका तथा एक ब्राह्मण को इस्लाम न स्वीकार करने पर मृत्युदण्ड देना। हॉलाकि इन बातो के पुष्ट प्रमाण मौजूद नहीं हैं। अब्दुल्ला और नियामतुल्ला ने उसके द्वारा मथुरा के हिन्दू-मन्दिरों को भ्रष्ट करने एवं यमुना नदी के तट पर हिन्दू संस्कारों में बाधा डालने का भी उल्लेख किया है। अब्दुल्ला कहता है कि सारे राज्य के हिन्दू-मन्दिर गिरवा दिए गए किन्तु वह मथुरा के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं करता। इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वह हिन्दू माता का पुत्र होने के कारण मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए इस्लाम के प्रति अपनी निष्ठा तथा हिन्दुओं के प्रति अपनी घृणा का प्रदर्शन करता था, ताकि यह प्रभाव पडे कि वह कुफ्र के गुनाह से पूरी तरह मुक्त है। अतः सिकन्दर के राज्यकाल में हिन्दुओं की दशा उतनी अच्छी न रही जितनी उसके पिता के समय में थी।

इब्राहीम लोदी की नीति बहलोल की नीति के निकट दिखाई देती है। उसने ग्वालियर के हिन्दू राजा विक्रमादित्य के साथ अच्छे सम्बन्ध बना कर रखे। यही कारण है कि विक्रमादित्य ने इब्राहीम के पक्ष से युद्ध करते हुए अपने प्राण गंवाए। इस प्रकार लोदी सुल्तानों की धार्मिक नीति सामान्यतः उदार

ही रही, सिवाय उन परिस्थितियों के जिनमें साधारण परिपाटी के विरुद्ध जाना आवश्यक प्रतीत हुआ।

सुल्तानों के शासन में चाहे वे तुर्क वंश के हों या अफगान, कुछ बातें ऐसी है जो प्रायः चलती ही रही। दारुल हर्ब (विधर्मियों के राज्य) को दारुल इस्लाम (मुसलमानो के राज्य) मे परिवर्तित करने का आदर्श सभी के मन मे आदर पाता था। इस्लाम के प्रचार मे सभी सुल्तान परोक्ष एवं प्रत्यक्ष सहायता देते थे। सद्र का विभाग उन सभी वर्गो को राज्य की ओर से सहायता देता था जो धर्म-प्रचार में लगे हुए थे चाहे वे सङ्कीर्ण बुद्धि वाले मुल्ला मौलवी हो और चाहे अपेक्षाकृत अधिक सहानभूतिपूर्ण सूफी सन्त। मुसलमानों को शासन मे सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त रहते थे, तथा उनके लिए कर हल्के थे और अधिकांश नौकरियाँ उनके लिए सुरक्षित थी। इस काल मे किसी भी हिन्दू को केन्द्रीय विभाग या प्रान्तीय शासन का अध्यक्ष नही बनाया गया। हिन्दू-राज्यों पर आक्रमण के समय प्रायः सभी ने देवालयों को नष्ट किया। अनेक स्थलों पर मन्दिरों की ही सामग्री से मस्जिदें बनवाई गई और अनेक सुल्तानो ने हिन्दू देवताओं की मूर्तियो को न केवल तोडा, वरन् उनको पददलित भी कराया। हिन्दूओं को जजिया नामक विशेष कर देना पड़ता था, मुसलमानों की अपेक्षा उनको आयात तथा निर्यात कर दुगना देना पड़ता था, वे स्वेच्छा से नए मन्दिर नहीं बनवा सकते थे और कभी-कभी पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराने की भी मनाही कर दी जाती थी। तीर्थयात्रा करने पर उन्हें विशेष कर देना पडता था और मुस्लिम प्रभाव-क्षेत्र में उनको सार्वजनिक ढंग से अपने धार्मिक कृत्यों के करने की सुविधा नही थी। मुसलमानों में आन्तरिक साम्प्रदायिक विद्वेष भी था और प्रायः गैर-सुन्नी लोगों पर न्यूनाधिक अत्याचार किया गया परन्तु हिन्दुओ के ऊपर किए गए अत्याचारों की तुलना में यह नगण्य है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दुओं को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस भेदभाव का कारण था-हुकूमत का धर्म-सापेक्ष होना। इसीलिए सुलतानों की हुकूमत को एक निष्पक्ष राष्ट्रीय सरकार नहीं माना जा सकता।

मुगल-युग

आधुनिक इतिहासकारो का विचार है कि मुगल -युग मे धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी, परन्तु समकालीन लेखो के अनुशील्न मे स्पष्ट भासित होता है कि यह धारणा निर्मूल सी है। डॉ० आशीर्वादीलाल ने कहा है कि मुगल-काल में पूर्ण धार्मिक सहिप्णुता न थी। यह युग धार्मिक सहिष्णुता तथा मुस्लिम धर्मान्धता का युग था, जिसके अन्त में धर्मान्धता की विजय हुई। वस्तुतः यदि देखा जाए तो सन् 1526 ई० से लेकर 1748 ई० तक के मुगल-युग मे अकबर के शासन काल (1605-1627) में ही हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रात थी। जहॉगीर के शासन काल मे धार्मिक सहिप्णुत्ता कम हो गई थी, शाहजहॉ के युग में यह और कम हुई तथा औरंगजेब के समय में इसका स्थान असहिष्णुता तथा कट्टरता ने ले लिया। प्रत्येक मुगल शासक ने अपने स्वभाव के अनुसार हिन्दुओं के साथ उदारता अथवा कठोरता का व्यवहार किया।

वाबर तथा हुमायूँ की धार्मिक नीति – वावर ने भारत पर धार्मिक दृष्टि मे आक्रमण नहीं किया था। उसके आक्रमण का कारण राजनीतिक था। वावर मुगलवंश का प्रथम शासक था, और वह थोड़े समय तक ही भारत में राज्य कर सका था। उसकी नीति हिन्दू विरोधी थी। उसने मुसलमानों को Stamp duty देने से मुक्त कर दिया था और यह कर केवल हिन्दुओ पर लगा दिया था।[3] उसने चन्देरी मे अनेक हिन्दू-मन्दिरों को सन् 1528-29 में नष्ट करा दिया था और उनके स्थान पर मस्जिदे वनवाई थी। उसके शासनकाल मे अन्य हिन्दू तथा जैन मन्दिरों को नष्ट किया गया। प्रो० श्रीराम शर्मा के अनुसार "कोई कारण नही कि यह विश्वास किया जा सके कि वावर ने धार्मिक नीति की कठोरता में किसी भॉति की सरलता ला दी थी।"

उसके पुत्र हुमायूँ का समय सदैव सङ्कट मे ही व्यतीत हुआ। हिन्दुओं से सम्वन्ध स्थापित करने का उसे विशेप अवसर नहीं मिला। उसके द्वारा कभी भी धर्म के नाम पर रक्तपात करने या बलात् किसी हिन्दू सम्राट् को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य करने का विवरण नहीं मिलता है।

अकबर की धार्मिक नीति – अकवर एक कुशल शासक था। वह इस वात को अच्छी तरह समझता था कि भारत मे वहुसंख्यक हिन्दू जनता के सहयोग के विना सुदृढ शासन की स्थापना नही हो सकती। अतः उसने हिन्दुओं के प्रति उदारता व सहिष्णुता की नीति अपनायी। उसने हिन्दुओं को उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान की तथा उन्हे मन्दिर-निर्माण की छूट दी। उसने वलपूर्वक कराए जाने वाले धर्म-परिवर्तन पर भी रोक लगा दी तथा गोवध वन्द करने की आज्ञा दे दी। उसने हिन्दुओं पर लगाए जाने वाले यात्रा-कर को बन्द कर दिया। साथ ही उसने 1564 ई० में हिन्दुओं पर विधर्मी होने के कारण लगाए जाने वाले जजिया कर को हटा दिया। प्रो० श्रीराम शर्मा के अनुसार "इस कर की समाप्ति से अकबर ने हिन्दू मुस्लिम दोनों को समान नागरिकता प्रदान की।" अकबर ने धार्मिक भेदभाव न करते हुए हिन्दुओं को भी उच्च पद प्रदान किए। तानसेन, राजा मानसिंह, राजा टोडरमल तथा बीरवल उसके नवरत्नों में थे। अकवर ने एक नए धर्म 'दीन-ए-इलाही' की स्थापना की तथा इसमे सभी धर्मो के मूल सिद्धान्तों का समन्वय करने का प्रयास किया। परन्तु इस धर्म को अधिक सफलता नही मिली। अकवर ने इस धर्म को स्वीकार करने के लिए किसी को वाध्य नही किया। उसने वलात् मुसलमान वनाए गए हिन्दुओं को पुनः शुद्ध हो जाने की अनुमति प्रदान की। इस प्रकार अकवर ने धर्म के मामले में उदारता व सहिष्णुता का परिचय दिया।

जहांगीर की धार्मिक-नीति – जहाँगीर के सिहासनारूढ होने पर मुस्लिम उलेमाओं ने अपने खोए हुए प्रभुत्व को पुनः प्राप्त करने तथा धार्मिक सहिष्णुता को समाप्त करने के लिए जहाँगीर पर प्रभाव डालना आरम्भ किया. परन्तु इसमें उन्हे आंशिक सफलता मिली, क्योंकि जहाँगीर अपने पिता की नीति का ही अनुसरण करना चाहता था।

जहाँगीर ने साधारणतः धार्मिक सहिष्णुता की ही नीति अपनाई और राजकीय अथवा सार्वजनिक स्थानो पर नियुक्ति के लिए उसने हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई भेदभाव न रखा। प्रो० श्रीराम शर्मा

के कथनानुसार 'यद्यपि जहाँगीर कट्टर मुसलमान था किन्तु उसकी धार्मिक नीति उदार थी।' उसने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को धार्मिक स्वतन्त्रता दी थी। उसने भी अकबर की ही भाँति बलात् मुसलमान बनाए जाने की आज्ञा नही दी और उसके शासनकाल मे कुछ नए मन्दिरो तथा गिरिजाघरों का भी निर्माण हुआ। डॉ० आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि "वह अपने राज्य में इस्लाम के भविष्य के विषय में अधिक रुचि लेता था। वस्तुतः जहाँगीर के धार्मिक विचारो को निश्चित करना कठिन -सा है।"[4] यद्यपि जहाँगीर के समय मे भी मन्दिरों का विध्वंस किया गया था। मेवाड़ आक्रमण के समय हिन्दू मन्दिरो को नष्ट किया गया था। अजमेर और कांगड़ा मे भी मन्दिर तोड़े गए थे। इन सब बातो के साथ-साथ जहाँगीर कभी-कभी इस्लाम के रक्षक का रूप धारण कर लेता था और कभी-कभी अपने को बहुसंख्यक गैर-मुसलमानों का राजा भी नही समझता था। इस भाँति अकबर के उदार दृष्टिकोण का हल्का सा पतन प्रारम्भ हो गया था।

शाहजहाँ की धार्मिक नीति – शाहजहाँ कट्टर मुसलमान था। उसने अपने दरबार में इस्लामी वातावरण को पैदा करने का प्रयत्न किया। वह मुसलमानों का पक्षपात करता था। उसने कुछ गैर-इस्लामी उत्सव तथा रीति-रिवाज बन्द करा दिए और राजकीय पदों पर केवल मुसलमानों को ही नियुक्त किए जाने की आज्ञा दी, परन्तु इसे क्रियान्वित किए जाने का आभास नही मिलता है। "यद्यपि शाहजहाँ ने हिन्दुओं पर जजिया कर नहीं लगाया, परन्तु उसने हिन्दुओं के ऊपर यात्रा-कर लगा दिया था, जिसे बाद में बनारस के कवीन्द्र आचार्य के कहने पर हटा दिया।"[5] शाहजहाँ ने सिजदा करने की रीति को बन्द कर दिया। उसने नए मन्दिरों के निर्माण तथा पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार को भी बन्द करा दिया। बादशाहनामा के विवरण से पता चलता है कि बनारस में 76 मन्दिरों का विध्वंस कराया गया था तथा हिन्दू-मन्दिरों की सामग्री से मस्जिदों का निर्माण कराया। इस्लाम, पैगम्बर तथा कुरान का अपमान करने वालों के लिए मृत्युदण्ड निश्चत किया गया था। इस प्रकार अकबर सब धर्मो की समानता के आधार पर जो राज्य स्थापित करना चाहता था, शाहजहाँ ने उस पर ध्यान न देकर असहिष्णुता की नीति अपना ली।

औरंगजेब की धार्मिक नीति – औरंगजेब ने अपने शासनकाल में इस्लाम को राज्यधर्म बनाकर

भारत को इस्लामी देश बनाने का सदैव प्रयत्न किया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था । सर्वप्रथम औरंगजेब ने इलाही वर्ष, जो सूर्य की प्रगति पर आधारित था, पर रोक लगा दी। 'झरोखा-दर्शन' भी बन्द करा दिया, क्योंकि यह हिन्दू राजाओं की रीति थी। तुलादान, सङ्गीत तथा नृत्य पर तथा दरबार में हिन्दू त्यौहारों को मनाने पर भी रोक लगा दी । हिन्दू ज्योतिषियों के स्थान पर मुसलमान नजूमियो की नियुक्ति की। धार्मिक आधार पर विभेदकारी जजिया कर, जिसे अकबर ने बन्द कराया था, औरंगजेब ने पुनः हिन्दुओं पर लगा दिया। हिन्दुओं पर यात्रा-कर भी लगाए गए तथा मन्दिरों के विध्वंस की आज्ञा दे दी गई। गुजरात में अपनी सूबेदारी के समय ही उसने चूड़ामण के हिन्दू-मन्दिर को नष्ट करवाकर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण कराया। 1669 ई० में उसने यह आदेश जारी किया कि "हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को नष्ट कर दिया जाए।" एक साधारण आज्ञा निकाली गई थी कि हिन्दुओं के मन्दिरों तथा विद्यालयों को नष्ट कर दिया जाय।[6] प्रो० यदुनाथ सरकार के कथनानुसार 'हिन्दुओं के धार्मिक-स्थलों का विध्वंस करना मुताहासिब का प्रमुख कार्य था, जो राज्य के प्रत्येक नगर में नियुक्त किए गए थे।' औरंगजेब के आदेश के अनुसार सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवराज का मन्दिर आदि नष्ट कर दिए गए तथा उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया गया। उसने मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। उसने अजमेर, जोधपुर, अयोध्या, हरिद्वार आदि में अनेक मन्दिरों को नष्ट करवा दिया। इसके अतिरिक्त उसने स्थान-स्थान पर हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों को तुड़वा डाला और उन्हें दिल्ली और आगरे की मस्जिदो की सीढियों पर डाल दिया गया जिससे वे मुसलमानों के पैरों से कुचली जायें और अपमानित हो।

औरंगजेब ने जजिया-कर की वसूली के लिए विशेष कर्मचारियों की नियुक्ति की। तत्कालीन इतिहासकार मनूचि के अनुसार 'ऐसे हिन्दू जो यह कर नही दे सकते थे, इस कर के वसूल करने वालों द्वारा किए जाने वाले अपमानों से छुटकारा पाने के लिए मुसलमान हो गए।'

औरंगजेब के आदेशानुसार माल-विभाग के हिन्दू लेखक, दीवान तथा आमिलों को अलग कर

दिया गया और उनके स्थान पर मुसलमान नियुक्त किए गए। किन्तु जब हिन्दू अधिकारियों के अभाव में माल-विभाग अव्यवस्थित हो गया तो विवश होकर माल-विभाग में पुनः हिन्दुओं को नियुक्त करना पड़ा।

उसने हिन्दुओ पर सामाजिक प्रतिबन्ध भी लगाए, यथा राजपूतों के अतिरिक्त समस्त हिन्दुओ को हाथी, घोड़े और पालकी पर चढ़ने के अधिकार से वञ्चित कर दिया।

उसने हिन्दू तथा मुसलमान व्यापारियों मे भी भेदभाव किया तथा हिन्दू व्यापारियों पर 5 प्रतिशत चुङ्गी लगाई तथा मुसलमानों पर 2 5 प्रतिशत। कालान्तर में उसने मुसलमानों पर से चुङ्गी कर बिल्कुल उठा लिया। हिन्दुओं को शस्त्र रखने की भी अनुमति नही थी।

उसने हिन्दू शिक्षा मन्दिरो का भी विध्वंस करवा कर हिन्दू संस्कृति को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया। उसके आदेश से बनारस, मुल्तान तथा ठट्टा की हिन्दू पाठशालाओं को विनष्ट कर दिया गया। हिन्दुओं को अपनी पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

औरंगजेब ने धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही सिक्खों के गुरु तेगबहादुर का वध कराया और गुरु गोविन्द सिह के दो पुत्रों को इस्लाम धर्म न स्वीकार करने पर जीवित ही दीवार में चुनवाकर अपनी धार्मिक क्रूरता स्पष्ट की।

इस प्रकार औरंगजेब की नीति पूर्णतया धर्म-सापेक्ष थी तथा क्रूरता व असहिष्णुता अपनी पराकाष्ठा पर थी।

सभी मुगल शासकों की धार्मिक नीति पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि अकबर को छोड़कर अन्य सभी के शासनकाल में धार्मिक असहिष्णुता विद्यमान थी, अन्तर सिर्फ मात्रा का था। कुछ आधुनिक इतिहासकार यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि मुगल-शासकों ने धार्मिक उदारता का परिचय दिया था तथा यदि कही अत्याचार या मन्दिर विध्वंस की घटनाएं सत्य भी हैं, तो उनका कारण राजनीतिक था,

धार्मिक नही। यदि इस तर्क को मान भी लिया जाए तो भी कारण चाहे राजनीतिक हो, किन्तु भेदभाव व क्रूरता का आधार तो धर्म को ही बनाया गया था, इसलिए उनके शासन को धार्मिक उदारता व समानता का शासन नही माना जा सकता।

(ग) आधुनिक भारत

प्राचीन काल से ही जितनी भी विदेशी जातियाँ भारत में आई, वे सब उत्तर-पश्चिम के पर्वतीय मार्गो से आई थी, किन्तु पन्द्रहवी शताब्दी मे यूरोप की कई जातियों ने समुद्री मार्ग से भारत में आना प्रारम्भ किया। यूरोप की इन जातियों का मुख्य उद्देश्य भारत मे व्यापार करना तथा धन कमाना था। इन जातियो में पुर्तगाली, डच, अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियो ने क्रमशः भारत में प्रवेश किया। इनमे से अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत मे महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सफलता मिली। इस कम्पनी ने इतनी अधिक उन्नति की कि भारत मे ब्रिटिश-साम्राज्य की स्थापना हो गई। इन यूरोपीय जातियों के भारत में आगमन के साथ-साथ ईसाई धर्म का भी आगमन हुआ। इन जातियो में से पुर्तगालियों के विषय में ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भारत के हिन्दुओं व मुसलमानों को जबर्दस्ती ईसाई बनाने का प्रयास किया।

जहाँ तक अंग्रेजों की धार्मिक नीति का प्रश्न है, साधारणतया वे धार्मिक मामलो में हस्तक्षेप नहीं करते थे, परन्तु ईसाई धर्म के प्रचार मे उन्होने रुचि ली। 1813 के चार्टर ऐक्ट के अन्तर्गत धर्म-प्रचारकों को भारत आने की अनुमति दी गई। आरम्भ में सरकार ने सतर्कता का रुख अपनाया तथा उन्हे खुले रूप में धर्मप्रचार करने की अनुमति नहीं दी। परन्तु धीरे-धीरे आत्मविश्वास में वृद्धि के साथ-साथ अंग्रेजी सरकार यह सोचने लगी कि भारतीयो को 'सभ्य बनाना' भी उनका उत्तरदायित्व है। अधिकतर अंग्रेजो के लिए सभ्यता फैलाने का अर्थ था – ईसाई धर्म का प्रसार करना। इस सन्दर्भ मे सरकार ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रति उदार नीति अपनाने लगी। ये धर्मप्रचारक खुले रूप मे उस दिन की कल्पना करने लगे जब सारे भारत के लोग ईसाई हो जाएंगे। सभी जगह, जैसे स्कूलों, अस्पतालों, सेना, मेलों तथा बाजारों में इन्हें देखा जा सकता था। स्कूलों मे बच्चो को शिक्षा के साथ-साथ बाइबिल की प्रतियाँ घर ले जाने के लिए दी जाती थी। कुछ अंग्रेज अधिकारियों को यह शिकायत थी कि भारत के लोग अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भ करने के उद्देश्य को शक की निगाह से देखते थे। परन्तु मैकाले द्वारा अपनी माता को यह लिखना कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भ के तीस साल के अन्दर बंगाल में एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहेगा, इस बात

का प्रमाण है कि भारतीयों का अनुमान तथा उससे उपजने वाला भय गलत नहीं था। सेना के अफसर जवानों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कर्नल एस० एस० वीलर ने, जो चौंतीसवी नेटिव इन्फैन्ट्री का कमाण्डिंग ऑफिसर था, यह स्वीकार किया कि उसने सैनिकों व अन्य लोगो को ईसाई बनाने के प्रयत्न किए थे। जेलों मे भी धर्मसुधारको को भाषण आदि देने की सुविधाएं दी जाती थी। इस सन्दर्भ मे जब जेलो में मुसलमानो को दाढ़ी मुँडवाने के लिए तथा हिन्दुओं को अन्य धर्मो के लोगो के साथ भोजन करने के लिए कहा गया तो उनमें यह भय फैलना स्वाभाविक ही था कि उनका धर्म व संस्कृति खतरे में है।

डलहौजी तथा कैनिग के समय में पास किए गए कुछ कानूनों की वजह से यह भावना और दृढ़ हो गई। 1850 में एक कानून पास किया गया जिसमें यह कहा गया कि ईसाई धर्म अपनाने वालो को अपनी वंशानुगत सम्पत्ति पर उत्तराधिकार से वञ्चित नही किया जाएगा। जब कैनिंग भारत पहुँचा तब यह अफ़वाह गर्म थी कि उसे भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए भेजा गया है। उसके आते ही दो कानून पास हुए जिनमें से एक के अन्तर्गत विधवा-विवाह को मान्यता दी गई तथा दूसरे में यह कहा गया कि सेना में भर्ती होने वालों को कहीं भी भेजा जा सकेगा। यद्यपि इनके लिए कैनिंग उत्तरदायी नहीं था फिर भी इससे भारतीयों की आशंकाएं विश्वास में बदलने लगी तथा वे हर प्रकार की अफवाहों पर विश्वास करने के लिए तैयार हो गए। इस सन्दर्भ में जब कभी सड़क चौडी करने के लिए किसी मन्दिर या मस्जिद के किसी भाग को गिराना पड़ता था तब इसका अभिप्राय यही लिया जाता था कि सरकार भारतीयो के धर्मो को नष्ट करके उन्हें ईसाई बनाने पर तुली हुई है। भारतीयो की धर्म सम्बन्धी भावनाओं का अनुमान उस इश्तिहार से लगाया जा सकता है, जो अवध के राजा की उपपत्नी हजरत महल ने, रानी विक्टोरिया की 1 अक्टूबर 1858 की घोषणा के बाद जारी किया। इस घोषणा में कहा गया था – "ईसाई धर्म सत्य है परन्तु अन्य किसी धर्म का निरादर नहीं किया जाएगा तथा कानून के सम्मुख सब बराबर होंगे।" इश्तिहार में कहा गया ". .सुअर खाना और शराब पीना, चर्बी वाले कारतूसों को मुँह से काटना,

सुअर की चर्वी को आटे और मिठाइयो में मिलाना, हिन्दू तथा मुसलमान धार्मिक स्थानो को सड़क वनाने के नाम पर तोडना, चर्च वनाना, पादरियो को ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए जगह-जगह भेजना, अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना करना, अंग्रेजी विज्ञान सीखने के लिए बच्चों को चन्दा देना – जबकि हिन्दुओं तथा मुसलमानो के धर्मस्थानो की उपेक्षा की जा रही हो – इस सवके साथ लोग इस वात पर कैसे विश्वास कर सकते हैं कि धर्म के मामलो में दखल नहीं दिया जाएगा। विद्रोह का आरम्भ धर्म से हुआ और इसी के लिए लाखों ने जाने दी है।''

धार्मिक मान्यताओं के विपरीत कार्य करने का आदेश दिए जाने से ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिक भी रुष्ट हो गए। माथे पर जातिसूचक तिलक लगाने अथवा पगड़ी पहनने पर प्रतिवन्ध लगाने के विरोध में 1806 में वेलूर में बगावत कर दी गई। 1824 मे जव वैरकपुर के रेजीमेण्ट को समुद्री मार्ग से बर्मा जाने को कहा गया तो समुद्रयात्रा धार्मिक परम्परा के विरुद्ध होने के कारण उस रेजीमेण्ट ने बगावत कर दी।

इस प्रकार प्रशासनिक तथा आर्थिक नीतियों के साथ-साथ अंग्रेजों की धार्मिक नीति से भी असन्तुष्ट होने के कारण हिन्दू तथा मुसलमान दोनों उसके विरुद्ध हो गए तथा 1857 के विद्रोह की भूमिका वनी। इन्ही परिस्थितियों मे चर्वी वाले कारतूसों का प्रश्न सामने आया। इस समय नयी इनफील्ड रायफलों का प्रयोग शुरू किया गया, जिसके प्रयोग में आने वाले कारतूसों मे एक चर्वी लगा कागज होता था जिसे दॉत से काटना पडता था। यह अफवाह फैली कि यह चर्वी गाय तथा सुअर की है। सरकार द्वारा जॉच करने पर यह बात सच पाई गई। यह कहा गया कि ये कारतूस केवल भारत की जलवायु का इन पर प्रभाव देखने के लिए आयात किए गए थे। इनको प्रयोग के लिए जारी नहीं किया गया था। परन्तु उस समय के ब्रिटिश अफसर भी यह विश्वास करते थे कि इन्हें इस्तेमाल के लिए भेजा गया था। इस तथ्य के सामने आने के वाद सरकार ने इस चर्बी का प्रयोग वन्द करने का आदेश दिया, परन्तु इससे

लोगो की घवगहट कम न हुई। 1857 के प्रारम्भ से ही सैनिकों मे घवराहट तथा सनमनी देखने में आ रही थी। 26 फरवरी 1857 को वैरकपुर (मुर्शिदाबाद के निकट) स्थित 19 नेटिव इन्फेन्ट्री ने वगावत करने की कोशिश की। इसके वाद मार्च 1857 में 34 नेटिव इन्फेन्ट्री के एक सैनिक मङ्गल पाण्डे ने अकेले ही विद्रोह किया और अपने साहस का परिचय देते हुए अपने अफसर पर हमला किया। उसके साथियो ने इस बगावत में हिस्सा नही लिया, परन्तु उन्होने अंग्रेज अफसरों की सहायता भी नहीं की । इसके पश्चात् सेना की इन दोनों टुकड़ियो को वर्खास्त कर दिया गया। सिपाही इस समय तक वगावत की भावना से प्रेरित नहीं थे बल्कि अपने धर्म की रक्षा करना चाहते थे क्योकि गाय की चर्बी को स्पर्श करने से हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट होता था तथा सुअर की चर्वी छूने से मुसलमानों का । इस परिस्थिति में बर्खास्त किए गए सैनिकों ने सेना से इस प्रकार निकाले जाने को अपना अपमान नही समझा बल्कि यह सोचा कि उन्हें मुक्ति मिल गई। अपने-अपने प्रदेशो में उनका स्वागत किया गया क्योंकि सभी लोग धर्म को नौकरी से कही अधिक पवित्र मानते थे। इन्हें वर्खास्त करने का आदेश सभी टुकड़ियो को सुनाया गया, परन्तु सैनिक इससे घवराए नहीं । इसका प्रभाव उल्टे यह हुआ कि अंग्रेज अफसरो का व्यवहार क्रूर और अन्यायपूर्ण समझा जाने लगा। अम्वाला तथा लखनऊ में भी सैनिकों ने अपना विरोध प्रकट किया। जब मेरठ के सिपाहियों ने विद्रोह के पश्चात् दिल्ली पहुँचकर वहादुरशाह को अपना नेता घोषित किया तव विद्रोह मात्र सैनिक विद्रोह नहीं रह गया वल्कि उसने राजनीतिक रूप धारण कर लिया। उस समय राष्ट्रीयता की भावना का उदय नही हुआ था पर इस भावना ने कि उनकी धर्म व संस्कृति खतरे में है। लोगों को मर मिटने की प्रेरणा दी। चूंकि इस खतरे के होने के पीछे विदेशी सरकार के षड्यन्त्र का अन्देशा था इसलिए यह भावना सरकार विरोधी भावना में परिवर्तित हो गई तथा लोगों ने जान की वाजी लगाकर ऐसी सरकार से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया ताकि वे अपने धर्म व संस्कृति की रक्षा कर सकें। यही विद्रोहियो में एकता का मुख्य आधार था। वैसे भी, वलपूर्वक धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध संघर्ष भी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष माना जा सकता है। इस विद्रोह में हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने मिलकर कार्य

किया। अंग्रेज अफसरो ने यह भी स्वीकार किया कि इस विद्रोह के दौरान वे एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्म के लोगो के विरुद्ध नही भड़का पाए। दोनों धर्मो के अनुयायियों को ईसाई धर्म की ओर से समान रूप से खतरा पैदा हुआ था, अतः इसने सरकार-विरोधी रूप ले लिया। सितम्बर 1857 में आउटरम को, बरेली की हिन्दू प्रजा को खान बहादुर खॉ के विरुद्ध भडकाने के लिए 50,000 रु० दिए गए। परन्तु वह ऐसा करने में सफल नही हो पाया। अन्त मे यह रकम राजकोष मे वापस भेजनी पडी।

इस प्रकार अंग्रेजो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार तथा अंग्रेजी शिक्षा से हिन्दू व मुसलमानों को अपनी धर्म व संस्कृति के लिए खतरा महसूस हुआ तथा दोनों ही अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए। 1857 के विद्रोह में धर्म एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा तथा इसने विद्रोह के दौरान हिन्दू मुसलमानों में एकजुटता बनाए रखी।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के पूर्व भारत के दो प्रमुख सम्प्रदायों – हिन्दू और मुसलमान में साम्प्रदायिक संघर्ष के उदाहरण नहीं मिलते। 1857 के विद्रोह का नेतृत्व मुसलमानों के हाथ में था, अतः अंग्रेज इसके लिए मुसलमानो को ही उत्तरदायी मानते थे। यह लगभग सर्वमान्य सा तथ्य है कि ब्रिटिश अधिकारियों की दृष्टि में 1857 की परिस्थितियो में प्रत्येक मुसलमान एक विद्रोही था। आधुनिक भारत के एक विदेशी इतिहासकार प्रोफेसर टॉमस मेटकॉफ ने इतिहासकारों के बहुमत के दृष्टिकोण को यह कहते हुए प्रस्तुत किया है कि शासकों की दृष्टि में मुस्लिम नेतृत्व एवं षड्यन्त्र के कारण 1857 का विद्रोह, जो प्रारम्भ मे सैनिक विद्रोह था, राजनैतिक संघर्ष में परिवर्तित हो गया। अधिकतर समकालीन पर्यवेक्षको ने भी इसी मत को दोहराया है। परन्तु इस विद्रोह में हिन्दू-मुस्लिम एकजुटता देखकर अंग्रेज चिन्तित हो गए। इस एकजुट शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिए अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अनुसरण करते हुए हिन्दुओं व मुसलमानों में साम्प्रदायिक वैमनस्य पैदा करने की कुचेष्टा शुरू कर दी। अंग्रेज चाहते थे कि वे इन दोनों समुदायो को आपस में लड़ाकर अपनी शक्ति को बनाए रख सकते हैं, जैसा कि भारत मन्त्री सर चार्ल्स वुड ने 3 मार्च,

1862 को भारत के वाइसराय एल्गिन को लिखा कि "एक भाग को दूसरे से लड़ाकर हमने अपनी शक्ति को बनाए रखा है और हमें ऐसा करते रहना जारी रखना चाहिए।"[7] ब्रिटिश शासक मुसलमानों को 1857 के विद्रोह का जिम्मेदार मानते थे, इस कारण पहले उन्होंने हिन्दुओं के प्रति नरम रुख अपनाया तथा उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। परन्तु हिन्दुओं मे शीघ्र ही राजनैतिक चेतना का उदय हुआ तथा वे अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति सचेष्ट हो गए। इस कारण अंग्रेजों को हिन्दुओं को फुसलाने की नीति सफल होती नही दिखाई दी तथा वे मुसलमानों की ओर आकर्षित हुए। अंजुमने इस्लामी की ओर से वाइसराय डफरिन को एक स्मरण ज्ञापन भेजते हुए लॉर्ड रिए ने कहा कि "हिन्दुओं से प्रतियोगिता करने मे मुसलमानों को एक बाधा का सामना अवश्य करना पड़ता है और मैं यह व्यग्रता से देखना चाहता हूँ कि उनके लिए क्या किया जा सकता है, हालांकि सिर्फ यह सोचना अच्छा नही लगता कि सरकारी नौकरियो में उनके आवेदकों में वृद्धि होती रहे।"[7] बङ्गाल के तत्कालीन लैफ्टीनेण्ट गवर्नर सर रिवर्स थाम्पसन ने सरकार की उस नीति मे परिवर्तन का स्वागत किया जिसमे मुसलमानों को और नौकरियॉ प्रदान करने मे सहायता का हाथ बढ़ाया गया था।

1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना हुई। यद्यपि इसमें कुछ प्रबुद्ध अंग्रेजो ने सहायता भी की थी तथापि ब्रिटिश सरकार ने यह सोचा कि इस संस्था के माध्यम से वे तथाकथित बुद्धिजीवियो व राष्ट्रवादियो का सहयोग हासिल कर सकते है तथा इस संगठन को भी कमजोर बनाए रख सकते हैं। अंग्रेजों ने यह भी सोचा कि यदि कभी कॉग्रेस स्पष्ट रूप से उनके विरुद्ध हो जाए तो इन परिस्थितियों में कॉग्रेस के समानान्तर ही कोई अन्य संस्था जो कि मुसलमानो की हो, होनी चाहिए ताकि वह कॉग्रेस का विरोध करके अंग्रजो का साथ दे। तीन अंग्रेज प्रधानाचार्यो द्वारा स्थापित मुहम्मडन एंग्लो-ओरियन्टल कॉलेज ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए मुसलमानो को राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग रखने तथा उनमें पृथक्ता की भावना उत्पन्न करने में योगदान किया । 1905 में लॉर्ड कर्जन ने मुसलमानो को प्रसन्न कर उनकी स्वामिभक्ति प्राप्त करने के लिए बंगाल का विभाजन करा दिया।

मुसलमान कॉंग्रेस को एक वास्तविक राष्ट्रीय संगठन न समझे तथा उसकी ओर आकांक्षापूर्वक न देखें, इसके लिए ब्रिटिश सरकार के प्रयास जारी रहे तथा इन प्रयासो में उसे सर सैयद अहमद खान जैसे महत्त्वपूर्ण मुसलमान नेताओं के रूप मे एक अच्छा माध्यम प्राप्त हुआ। आर्किबोल्ड की मध्यस्थता के कारण हिज हाईनेस सर आगा खान के नेतृत्व में मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमण्डल 1 अक्टूबर 1906 को शिमला में वाइसराय मिन्टो से मिला, जिससे इसके तुरन्त बाद 30 दिसम्बर को मुस्लिमलीग की स्थापना हुई। ढाका के नवाब सलीमुल्लाह खान को इसका प्रतिष्ठाता होने का गौरव प्राप्त हुआ। मुस्लिम लीग के तीन उद्देश्य थे –

(1) भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी की भावना पैदा करना और किसी ऐसी गलतफहमी को दूर करना जो सरकार के किसी कदम से इस सम्प्रदाय में पैदा हो।

(2) भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों और उनके कल्याण की रक्षा करना और उनकी माँगों और आवश्यकताओं को शान्तिपूर्ण ढंग से सरकार के सामने पेश करना, तथा

(3) लीग के पूर्वोक्त किसी विशेष उद्देश्य के प्रति किसी पक्षपात के बिना भारतीय मुसलमानो में किसी अन्य समुदाय के विरुद्ध विचारों को उत्पन्न होने से रोकना।

बाद की घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि लीग अपने कार्यक्रम के अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने में पूरी तरह विफल रही। इस प्रकार अंग्रेजों के प्रयासों तथा स्पष्ट समर्थन के फलस्वरूप मुस्लिम लीग का निर्माण हुआ तथा इसके माध्यम से उन्होने हिन्दुओं व मुसलमानों को आपस में लड़ाने का प्रयास किया तथा वे इस नीति में पूर्ण रूप से सफल रहे। इस नीति का पहला लाभ मिन्टो-मार्ले सुधार या भारत सरकार अधिनियम 1909 के रूप में देखने को मिला जिसमें मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन-मण्डलों की व्यवस्था की गई। 1909 के लाहौर अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने इस विभेदकारी व्यवस्था के प्रति गहन आक्रोश व असन्तोष व्यक्त किया। मुस्लिम लीग ने 29 जनवरी,

1910 को दिल्ली मे हुए अपने तीसरे अधिवेशन में 1909 के सुधारों का स्वागत किया, परन्तु कुछ तत्कालीन परिस्थितियो के मद्देनज़र मुस्लिम नेता कांग्रेस के निकट आए और मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के इच्छुक हुए तथा 31 दिसम्बर, 1912 को अपनी कौसिल की वैठक में यह संकल्प पारित किया गया कि अपने पहले से उद्घोषित उद्देश्यों और लक्ष्यों के अलावा यह भारत के लोगो के बीच सार्वजनिक भावना उत्पन्न करके और राष्ट्रीय एकता की भावना का सम्वर्द्धन करके संवैधानिक तरीको से मौजूदा शासन प्रणाली मे सुधार लाकर भारत के लिए उपयुक्त स्वशासन प्रणाली की माँग करेगी, और इस उक्त प्रयोजन के लिए अन्य सम्प्रदायो के साथ सहयोग करेगी। इससे लखनऊ में 1916 में कॉग्रेस-लीग समझौते के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। इस सन्धि का सम्बन्ध विभिन्न विधान-परिषदो में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व से था। इसमें यह भी व्यवस्था की गई थी कि केन्द्रीय विधान सभा के एक-तिहाई निर्वाचित भारतीय सदस्य मुसलमान होने चाहिए। वस्तुत: सन्धि में की गई ये वुनियादी व्यवस्थाएं कॉग्रेस की ऐतिहासिक भूल थी। ब्रिटिश शासकों और लीग के कट्टरपन्थी तत्त्वों ने कॉग्रेस के इस तुष्टीकरण के कार्य का अपने-अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया। यह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था तथा जव भी कॉग्रेस ने इस सिद्धान्त के विरुद्ध आपत्ति की तो मुस्लिम लीग ने इन आपत्तियों का मुकावला करने के लिए इस निर्णय का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया। ब्रिटिश शासकों ने इसका दूसरी तरह से लाभ उठाया। जहाँ अंग्रेजों ने मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के रूप में अनपेक्षित व्यवस्था के आरम्भ किए जाने पर चिन्ता व्यक्त की, वास्तव मे इसे उन्होंने अपने लिए मजवूरी बताया। 1918 की मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट मे इस व्यवस्था की इस आधार पर निन्दा की गई कि इससे जातियों और वर्गों के विभाजन द्वारा ऐसे राजनीतिक खेलो का सृजन होता है, जिसमें एक को दूसरे के साथ लड़ाया-भिड़ाया जाता है और इससे लोग नागरिक के वजाय प्रतिपक्षी के रूप में चिन्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं और इस कारण यह स्वशासन के सिद्धान्त के विकास के मार्ग में बहुत बड़ी वाधा बन जाता है। इस सव के बावजूद इस आधार पर इस व्यवस्था की सिफारिश की गई कि समान नागरिकता के उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा

मे धीमी प्रगति की कीमत पर भी इस प्रणाली को बनाए रखा जाना चाहिए। मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट तैयार करने वालो का साम्प्रदायिक समस्या के प्रति दृष्टिकोण जरा भी ईमानदार नहीं था यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि 1909 के अधिनियम के अधीन की गई निन्दनीय व्यवस्थाओं को समाप्त करने के स्थान पर 1919 के भारत सरकार अधिनियम मे इसे पंजाब में सिक्खों और साथ ही यूरोपीय एंग्लो-इण्डियन समुदाय तथा ईसाइयो के लिए भी लागू कर दिया गया। 1930 के भारतीय सांविधिक आयोग की रिपोर्ट में भी वही रास्ता अपनाया गया, जो मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के निर्माताओं ने अपनाया था और जिसे अब अनुमोदन के साथ यह आयोग उद्घृत कर रहा था। इसने कहा कि यद्यपि पृथक् निवार्चन प्रणाली सैद्धान्तिक रूप से गलत तथा व्यावहारिक रूप मे हानिकारक है, तथापि मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण के कारण राजनीतिक दृष्टि से आवश्यक है। इस मामले पर लन्दन में 1930, 1931 और 1932 में हुए गोलमेज सम्मेलनों में विचार-विमर्श किया गया, परन्तु इसकी स्पष्ट अस्वीकृति के कारण इसका कोई समाधान नहीं निकल सका। काँग्रेस का इस बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण यह था कि वह संयुक्त निर्वाचन प्रणाली से कम किसी बात पर राजी नही होगी, परन्तु इसमे मुसलमानों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखने पर वह सहमत थी। इस बात से हिन्दुओं के एक वर्ग में असन्तोष था। 1922 के असहयोग आन्दोलन के पश्चात् मालाबार तट तथा मुल्तान में हुए साम्प्रदायिक दंगों में हिन्दुओं के जान-माल की अपार क्षति के बाद इस वर्ग को आत्मरक्षा के लिए हिन्दुओ के एक सगठन की आवश्यकता महसूस हुई तथा जिसने हिन्दू महासभा के गठन में योगदान किया। हिन्दू महासभा के प्रधान सावरकर जो कि 1938 में प्रधान चुने गए थे, ने काँग्रेस के मुस्लिम तुष्टीकरण से खिन्न होकर 'हिन्दू राष्ट्र' का नारा दिया। दूसरी ओर ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने 1932 में अपना साम्प्रदायिक अधिनिर्णय प्रस्तुत किया। इसमें पृथक् निर्वाचन मण्डल का प्रस्ताव किया गया तथा मुसलमानों, यूरोपियनों, सिक्खों, ईसाइयों, एंग्लो-इण्डियनो और दलित वर्गो के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे गए। इस प्रकार अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति जो अब तक हिन्दुओं और मुसलमानों में विभेद कराने तक सीमित थी अब उसका हिन्दू समुदाय में भी फूट डालने

के लिए दलितो को अलग करके विस्तार किया गया। साथ ही मुस्लिम लीग, जिसे ब्रिटिश सरकार से लगातार सहयोग व प्रोत्साहन मिल रहा था, ने अब मुस्लिम समुदाय के लिए अलग राष्ट्र की मॉग शुरु कर दी। इस मॉग के प्रवर्तक इकवाल थे तथा बाद में 1940 मे जिन्ना ने द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित कर स्पष्ट रूप मे पाकिस्तान की मॉग की। इस प्रकार विधानमण्डलों तथा सरकारी नौकरियो में आरक्षण की मॉग अंग्रेजो के प्रोत्साहन मे वढते-बढते अलग राष्ट्र की मॉग तक पहुॅच गई। ब्रिटिश सरकार की अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए देश के दो प्रमुख समुदायो को आपस में लडाने की इस कुनीति की अन्तिम परिणति धार्मिक आधार पर भारत के विभाजन और अलग मुस्लिम राज्य के रूप में पाकिस्तान के सृजन मे हुई। भारत के संविधान निर्माताओं ने संविधान के अन्तर्गत भारत को एक पन्थनिरपेक्ष राज्य बनाने के अनेक प्रावधान किए परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि जो नीति ब्रिटिश सरकार ने भारत को कमजोर करने के लिए अपनाई थी, हमारे राजनेता भी उसी नीति का सहारा अधिक वोट प्राप्त कर अपनी राजनीतिक शक्ति वढ़ाने के लिए करते है।

संदर्भ-सङ्केत

1 डी०पी० चट्टोपाध्याय – लोकायत, राहुल सांकृत्यायन – दर्शन-दिग्दर्शन।

2 Marlene Ngammasch (Berlin) का रूसी भाषा में लेख – Development of Buddhist stupas and Viharas in deccan – I-IV Centuries A D., जो Vestinik Dreveniye Istoni (1972-No4) में छपा है, पृष्ठ - 34-64 मे।

3. तुजुके-वावरी, जिल्द - 2, पृष्ठ - 281।

4. जर्नल ऑफ ग्रेटर इण्डिया सोसायटी, सन् 1945, पृष्ठ - 34।

5. जर्नल ऑफ ग्रेटर इण्डिया सोसायटी, सन् 1945, पृष्ठ - 34।

6 प्रो० श्रीराम शर्मा—रिलीजस पॉलिसी ऑफ द मुगल्स, पृष्ठ - 131।

7 ताराचन्द – हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया, खण्ड - 2, पृष्ठ - 515।

तृतीय अध्याय

पन्थनिरपेक्षता को महत्वपूर्ण चुनौती – साम्प्रदायिकता

(क) साम्प्रदायिकता का अर्थ

लोकतन्त्र तथा पन्थनिरपेक्षता की अवधारणाओं पर आधारित किसी भी राजनैतिक प्रणाली के लिए साम्प्रदायिकता एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। डी० ई० स्मिथ के अनुसार "साम्प्रदायिकता भारतीय धर्मनिरपेक्षता के लिए एक वास्तविक सङ्कट पैदा करती है।"[1]

सामान्य रूप से साम्प्रदायिकता का तात्पर्य व्यक्ति की अपने समुदाय के प्रति आस्था से होता है।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार साम्प्रदायिकता का अर्थ है– "धार्मिक या नैतिक सम्बद्धता के आधार पर किसी सामाजिक-राजनैतिक समूह के प्रति निष्ठा।"[2]

ऑक्सफोर्ड एडवान्स्ड लर्नर्स डिक्शनरी के अनुसार "किसी समुदाय, विशेषतः धार्मिक समुदाय से सम्बद्ध होनेकी प्रबल भावना, जो कि दूसरों के प्रति अतिवादी व्यवहार या हिंसा की ओर ले जा सकती है, को साम्प्रदायिकता कहते हैं।"[3]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता वह भावना है, जिसमें अपने समुदाय के प्रति गहरी निष्ठा होती है तथा अन्य समुदायों के प्रति पृथकता की भावना होती है, जिस कारण यह कभी-कभी उनके प्रति हिंसात्मक व्यवहार में परिवर्तित हो जाती है। यह मुख्यतया धार्मिक समुदाय से सम्बद्ध होती है।

डी० ई० स्मिथ ने इसकी और व्याख्या करते हुए कहा है कि "साम्प्रदायिकता को किसी धार्मिक समूह के सङ्कीर्ण, स्वार्थपूर्ण, फूट डालने वाले और आक्रामक दृष्टिकोण के साथ संबंधित किया जाता है।"[4]

डॉ० जे० सी० जौहरी के शब्दों में "यह स्पष्ट है कि राजनीति के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता केवल साम्प्रदायिक विन्यास के आधार पर, विषम सामाजिक समूहों और संगठनों के अस्तित्व को बताने की

धारणा को ही प्रेषित नहीं करती। यह सच है कि सामान्यतया साम्प्रदायिकता किसी समुदाय विशेष के विशिष्ट हितो के संवर्धन और उनकी रक्षा करने की उद्घोषक है। बहरहाल, राजनीति के क्षेत्र में इसके मूर्त रूप का एक नकारात्मक और घातक आयाम भी है, क्योंकि यह शायद सारे समाज के हितों की कीमत पर जनता के एक वर्ग-विशेष के हितों का संवर्धन करना चाहती है। यह किसी धर्म या परम्परा के नाम पर फलती-फूलती है जो रचनात्मक और प्रगतिशील धारा के अनुरूप सामाजिक परिवर्तन का विरोध करती है।''[5]

वस्तुतः किसी धर्म के प्रति प्रबुद्ध व सन्तुलित दृष्टिकोण रखने के स्थान पर उसके प्रति रूढ़िवादी मानसिकता रखने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली अन्धश्रद्धा की भावना, जो राष्ट्र तथा समाज के हित की भावना के ऊपर स्थान बना ले तथा साथ ही उस राष्ट्र तथा समाज में निवास करने वाले अन्य सम्प्रदायों व समुदायों के प्रति द्वेषपूर्ण पृथकृता की भावना रखे, उसे ही साम्प्रदायिकता कहा जाएगा।

(ख) साम्प्रदायिकता – भारत के विशेष सन्दर्भ में

भारतीय समाज मे वहुत से सम्प्रदाय विद्यमान है। यहाँ सामाजिक विविधता के अनोखे आयाम देखने को मिलते हैं। यह दोनो ही तत्त्व राष्ट्रवाद की भावना के विकास को अवरुद्ध करते हैं। कुछ विद्वान् भारत मे सम्प्रदायवाद की तुलना उपराष्ट्रवाद (Sub-Nationalism) से करते हैं। बहुधा अल्पसंख्यक समुदाय के रवैये को उनके युयुत्सु व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उपराष्ट्रवाद की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि उनकी अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी प्रवृत्तियाँ होती है।

शॉर्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में साम्प्रदायिकता की परिभाषा भारत के विशेष सन्दर्भ में इस प्रकार की गई है – "विशेषकर भारत में किसी जातीय या धार्मिक समूह से सम्बद्ध होना।"

आर० एल० पार्क और बी० बी० डि मेस्क्वि के शब्दों में "भारत में साम्प्रदायिकता का परिशुद्ध रूप से निर्देश किसी विशेष धार्मिक समुदाय के अनन्य हितों का पक्षपात करने वाले विचारों और कार्यो की ओर हैं।"[6]

के०पी० करुणाकरन के अनुसार "व्यापक अर्थ में, हम यह कह सकते हैं कि भारत में साम्प्रदायिकता का अभिप्राय उस दर्शन से है, जिसमें किसी विशेष धार्मिक समुदाय या किसी विशेष जाति के सदस्यों के हितों के संवर्धन करने का समर्थन किया जाता है।"[7]

भारत की सामाजिक विविधता साम्प्रदायिकता के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है। प्रत्येक समुदाय, विशेषकर अल्पसंख्यक समुदाय अपनी संस्कृति के अस्तित्व की सुरक्षा को लेकर चिन्तातुर रहता है। अपनी संस्कृति की विशिष्ट पहचान के नष्ट होने का भय उसे सदैव सताता रहता हैं तथा वह उसकी रक्षा के लिए कुछ भी करने को उद्यत रहता है। अपनी संस्कृति की रक्षा की यह तीव्र आकांक्षा प्रायः राष्ट्रीय हितों तथा समग्र सामाजिक हितों की उपेक्षा कर देती है तथा साम्प्रदायिकता के विकराल रूप को प्रकट करती है।

भारत मे साम्प्रदायिकता को मुख्यतया दो श्रेणियो में रखा जा सकता है – (1) बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता या हिन्दू साम्प्रदायिकता, (2) अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता या मुस्लिम साम्प्रदायिकता। ये दोनों साम्प्रदायिकता एक-दूसरे के प्रति प्रतिक्रियात्मक हैं तथा एक का अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर करता है।

ए०एच० मेरियम के मतानुसार "साम्प्रदायिकता किसी व्यक्ति की अपने समुदाय के प्रति निष्ठा का सङ्केत देती है, जिसका भारत में अर्थ हो जाता है – "हिन्दू या इस्लाम धर्म के प्रति वर्गीय आस्था।"[8]

पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस तथ्य की विशद विवेचना करते हुए 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा है – "यह याद रखना चाहिए कि भारत मे अल्पसंख्यक वर्ग यूरोप की भाँति जातीय या राष्ट्रीय नहीं है। वे धार्मिक हैं . राजनीतिक मामलों में धर्म को उस वस्तु ने अपदस्थ कर दिया है, जिसे साम्प्रदायिकता या सङ्कीर्ण वर्गीय मनोभावना कहते है, जिसका आधार धार्मिक सम्प्रदाय है, किन्तु वास्तव मे उसका संबंध राजनीतिक सत्ता तथा तत्सम्बन्धी वर्ग की सम्पत्ती से है।"[9]

अशोक मेहता तथा अच्युत पटवर्धन का मत है कि "हिन्दू साम्प्रदायिकता मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रति एक क्षोभक तथा एक प्रतिक्रिया रही है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि दोनों साम्प्रदायिकताओं ने एक-दूसरे का खूब भरण-पोषण किया है।"[10]

ब्रिटिश शासकों ने हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के इस प्रतिक्रियात्मक स्वरूप को समझा तथा 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाते हुए अपने हित के लिए इस सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहित किया। स्वतन्त्रतापूर्व के काल में साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति के उदय व विकास के लिए अंग्रेजों की यही घातक तथा विभेदकारी नीति उत्तरदायी रही, जिसका संचालन व क्रियान्वयन उन्होंने सफलतापूर्वक किया। स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी विभिन्न राजनैतिक दलो ने अपने दलीय स्वार्थो व सत्ता प्राप्ति के लिए विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति विभेदकारी नीति अपनाकर सम्प्रदायवाद की समस्या को गंभीर रूप प्रदान कर दिया है।

(ग) ब्रिटिश शासन में साम्प्रदायिकता का उत्थान व भारत का विभाजन

वस्तुतः भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या केवल हिन्दू-मुसलमानो का आपसी विरोध नहीं है। इस समस्या का आधार धार्मिक कम तथा राजनीतिक अधिक है। इन दो धर्मो के अतिरिक्त इस त्रिभुज में एक तीसरा पक्ष भी था। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायो के मध्य स्वयं को स्थापित करके एक साम्प्रदायिक त्रिभुज का निर्माण किया।

इस त्रिभुज की सबसे दृढ़ तथा आधार भुजा अंग्रेज थे। उनका एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विस्तार था तथा इस उद्देश्य के लिए उन्होंनें **Divde & Rule** के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए भारत में मौजूद धार्मिक विविधता का पूर्ण लाभ उठाया। लॉर्ड जान एल्फिन्स्टन (Lord John Elphinston) जो 1853 से 1860 तक बम्बई के गवर्नर थे, उन्होंने एक बार लिखा था कि "**बाँटों और राज्य करो** यह प्राचीन रोमन कहावत थी, और यह हमारी भी होनी चाहिए।" इसी प्रकार सर जॉन (Sir John) जो कि एक प्रशासनिक अधिकारी थे, ने भी लिखा था, "भारत में भिन्न धर्मो का एक साथ होना, हमारी राजनैतिक स्थिति के लिए बहुत अच्छी बात है।"

प्रारम्भ में अंग्रेजों के मन में मुसलमानों के प्रति कटुता थी क्योंकि 1857 का विद्रोह मुसलमानो के नेतृत्व में हुआ और बहुदारशाह जफर को पुनः सम्राट बनाने का प्रयास किया गया। वहाबी आन्दोलन से अंग्रेजो के इस विश्वास की पुष्टि हुई और अगले 20-25 वर्षो तक वह हिन्दुओं का समर्थन करते रहे परन्तु धीरे-धीरे हिन्दुओं में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ और वह अपने राजनैतिक अधिकारों के लिए आन्दोलन करने लगे। हिन्दुओं में आई इस राजनैतिक जागृति रूपी परिवर्तन के साथ-साथ अंग्रेजों की हिन्दुओं के प्रति नीति में भी परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे, 1880 के आसपास यह स्पष्ट होने लगा कि हिन्दू राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में मुसलमानों से आगे निकल गए हैं। यह देखकर अंग्रेजों को ऐसा प्रतीत होने लगा कि पिछड़े हुए मुसलमानों की तुलना में उन्नत हिन्दू ब्रिटिश साम्राज्य के

लिए अधिक भय उत्पन्न करते है। इन परिस्थितियों में अंग्रेजो की दोनों साम्प्रदायों के प्रति नीति मे स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। ऐंग्लो-इंडियन नौकरशाही ने इस परिवर्तन मे विशेष भूमिका निभाई। W W Hunter ने अपनी पुस्तक "भारतीय मुसलमान" जो 1871 मे प्रकाशित हुई, में यह स्पष्ट लिखा है, "मुसलमान इतने कमजोर हैं कि विद्रोह कर ही नहीं सकते" और उसने मुसलमानो के प्रति नीति में बदलाव का सुझाव दिया।

यद्यपि 1885 में प्रबुद्ध और दूरदर्शी अंग्रेजों की सहायता से भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का निर्माण हुआ तथापि इसने अंग्रेज शासकों को इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि वे तथाकथित समझदार और रचनात्मक राष्ट्रवादियों का सहयोग प्राप्त करके इस राष्ट्रीय संगठन को कमजोर बनाए रखें और इस उद्देश्य से एक और ऐसी संस्था का निर्माण करें, जिससे कॉंग्रेस के स्पष्ट रूप से विरोधी रवैया अपनाने की दशा मे इसका मुकाबला किया जा सके। Beck, Archbold और Morrison जैसे अंग्रेज प्रधानाचार्यो की सहायता से अलीगढ़ मे स्थापित Mohammedan Anglo-Oriental College ने मुसलमानों को राष्ट्रीय मुख्य धारा मे अलग रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था करके उनमें अनन्यता तथा पृथकता की भावना उत्पन्न की। मुस्लिम शिक्षा के बारे मे भारत सरकार के संकल्प की प्रशंसा करते हुए Sir W. H. Gregory ने 24 फरवरी, 1886 को Lord Dufferin को लिखा – "मुझे विश्वास है कि इसके अच्छे परिणाम निकलेंगे। वास्तव मे, ऐसा लगता है कि ऐसा करना आरम्भ कर दिया गया है, जिसमे ब्राह्मण और बाबू आन्दोलन से मुसलमान पूर्णतया अलग हो जाए। भारतीय जनता के सबसे अधिक बलशाली और कभी हमारे लिए बहुत ही खतरनाक इस भाग से हमारे संबंधों को मधुर बनाने मे इसका बहुत योगदान होगा।"[11]

हिन्दू-मुसलमानों के मध्य वैमनस्य पैदा करने का खंडन करते हुए अंग्रेजों ने तर्क दिया कि हिन्दू-मुस्लिम दंगे उनके आगमन के पूर्व भी होते थे। इसे ध्यान में रखते हुए ए० एच० मैरियम का कहना है –

"किन्तु यदि यह सिद्ध करना असम्भव है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत मे सम्प्रदायवाद को उत्पन्न किया, तो यह इनकार करना भी उतना कठिन होगा कि ब्रिटिश नीति ने उस साम्प्रदायिक विभाजन को बढ़ाया जो पहले से मौजूद था।"[12]

ब्रिटिश नीति-निर्माताओं को सर सैयद अहमद खॉ जैसे प्रमुख मुसलमानो से एक अच्छा माध्यम प्राप्त हुआ, जिससे वे उनके सहधर्मियों को कॉंग्रेस की ओर एक वास्तविक राष्ट्रीय संगठन के रूप में निहारने से हतोत्साहित कर सके। सर सैयद अहमद खान आरम्भिक काल मे एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र और हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे, परन्तु कालान्तर में वह भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के कट्टर विरोधी और अंग्रेजी साम्राज्य के समर्थक बन गए।

आरम्भिक काल में उन्होने हिन्दू और मुसलमानों को एक सुन्दर वधू (भारत) की दो ऑखे बतलाया। 1884 में दिए गए एक भाषण में उन्होंने कहा था, "क्या हम दोनों एक देश में नहीं रहते . स्मरण रहे कि हिन्दू और मुसलमान केवल दो धार्मिक भिन्नताऍं प्रकट करते है अन्यथा सभी लोग चाहे वे हिन्दू अथवा मुसलमान हों, चाहे ईसाई भी हों, जो इस देश में रहते है, सभी इस मामले में एक ही राष्ट्र (Nation) मे संबंध रखते है।" एक बार पंजाबी हिन्दू श्रोताओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था, "भारत का प्रत्येक नागरिक हिन्दू है।" और आगे कहा, "मुझे शोक है कि आप लोग मुझे हिन्दू नहीं मानते।" इसी प्रकार 1884 में गुरुदासपुर (पंजाब) में बोलते हुए उन्होंने कहा था, "हमें मन से और हृदय से एक होने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम एक होगे तो एक-दूसरे का आश्रय बन सकते है और यदि ऐसा नही करेंगे तो एक-दूसरे का विरोध करने से हम दोनो का पतन और नाश हो जाएगा।" इस समय उनके वक्तव्यों में कुछ विरोधाभास सा मिलता है।

इसके विपरीत उनके एक भाषण में जो उन्होंने 16 मार्च, 1888 को मेरठ में दिया, उनका यह कहना था कि हिन्दू और मुसलमान न केवल दो राष्ट्र हैं, अपितु विरोधी (Warring) राष्ट्र हैं। यदि अंग्रेज

भारत से चले जाएँ तो ये कभी भी एक साझा राजनैतिक जीवन व्यतीत नही कर सकते। उनकी नीति और विचारों मे यह सहसा उलट-फेर क्यों हुआ तथा एक राष्ट्रवादी व्यक्तित्व एकाएक साम्प्रदायिक व्यक्तित्व में कैसे परिवर्तित हो गया, यह एक अनुत्तरित प्रश्न है। ज्योंही स्थानीय निकायों के गठन में चुनावो की प्रथा आरम्भ हुई त्योंही पृथक् निर्वाचन मंडल की मांग प्रस्तुत हुई। केन्द्रीय विधान सभा में रिपन के स्थानीय स्वशासन विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने जनवरी 1885 मे दोनो जातियों और धर्मो के बीच महत्वपूर्ण भेदों की और दोनो धर्मावलम्बियों में शिक्षा के भिन्न स्तर की बात कही और यह भी कहा कि यदि साधारण चुनाव प्रणाली अपनाई जाएगी तो बड़ी जाति छोटी जाति के हितो की अवहेलना करेगी। वे मुस्लिम हितो के पूर्ण पक्षपाती थे और वह इस बात को भली-भाँति जानते थे कि मुसलमान शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में पिछड़े हुए है और वह इस परिणाम पर पहुँचे कि भारत के लोग प्रतिनिधित्व और उत्तरदायी प्रकार की पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं के लिए परिपक्व नहीं हैं क्योंकि उनके सम्प्रदाय को उनका उचित भाग नही मिलेगा। इस विचार ने हिन्दू-भय का रूप धारण कर लिया और इसके पश्चात् यह समस्त मुस्लिम विचारधारा का महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया।

ब्रिटिश प्रशासको ने इस भय का लाभ उठाकर हिन्दू-मुसलमानों के मध्य एक खाई बना दी। अलीगढ़ कॉलेज के पहले तीन प्रिंसिपल, थियोडर बैक, मॉरिसन तथा आर्चबोल्ड (Theodore Beck, Morrison and Arehbold) तीनों ने अलीगढ आन्दोलन को अंग्रेजों के पक्ष का और हिन्दुओं के विरोध का रूप दिया। अलीगढ आन्दोलन ने मुसलमानो के मन मे ब्रिटिश ताज के प्रति राजभक्ति की भावना भरी और उन्हें भारतीय राजनैतिक जीवन से दूर रहने की प्रेरणा दी। अगस्त, 1918 मे सैयद अहमद खाँ ने एक संयुक्त भारतीय राजभक्त सभा (United Indian Patriotic Association) बनाई जिसका स्पष्ट उद्देश्य काँग्रेस के प्रचार को निष्फल बनाना या और लोगों को कॉग्रेस से दूर रखना था। इसके कुछ समय पश्चात् केवल मुसलमानों के लिए उत्तर भारत की मुस्लिम एंग्लो-ओरियन्टल रक्षा सभा (Mohammaden Anglo-Oriental Defence Association of Upper India) बनाई ताकि मुसलमान

राजनैतिक जीवन से दूर रहे और वे भारत में ब्रिटिश राज का समर्थन करें।

भारतीय इतिहास-लेखन में साम्प्रदायिकतावाद – भारतीय इतिहास के कुछ अंग्रेजी लेखकों ने भी हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को लेकर ही इतिहास और भारतीय संस्कृति के विकास की कथा लिखी और इस प्रकार साम्राज्यवाद को बढावा दिया। इन्ही की देखादेखी कुछ भारतीय इतिहासकारों में भी इसी तथ्य पर बल दिया। उदाहरण के लिए प्राचीन भारत के इतिहास को हिन्दू काल और मध्यकालीन इतिहास को मुस्लिम काल की संज्ञा दी अर्थात् धर्म ही इस काल के इतिहास में प्रमुख मार्गदर्शक तत्त्व था। यह सत्य है कि राजा और प्रजा दोनो ने धार्मिक नारों का अपने आर्थिक और राजनैतिक उद्देश्यो के लिए प्रयोग किया. परन्तु यह इतिहास नहीं विडम्वना है यदि हम कहें कि सभी मुसलमान शासक थे और सभी हिन्दू शासित। वास्तव में मुस्लिम जनसाधारण उतने ही निर्धन थे, जितने कि हिन्दू और उनका मुस्लिम शासकों और उनके हिन्दू सहयोगियों ने उतना ही शोषण किया जितना कि हिन्दुओं का। जो भी हो इतिहास के प्रति इस साम्प्रदायिक दृष्टिकोण ने 19वी शताब्दी के अंतिम चरणों तथा 20वी शताब्दी के प्रथमार्ध मे भारतीय राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाई।

धर्म-सुधार आन्दोलनों का प्रभाव – 19वी शताब्दी के दोनों हिन्दू और मुसलमान धार्मिक सुधार और पुनरुत्थान आन्दोलनों के कुछ परस्पर विरोधी रूप भी थे। ये आन्दोलन हिन्दू और मुस्लिम धर्मो को रूढिवादी और विवेकरहित तत्त्वों से वचाने के लिए आरम्भ किए गए थे परन्तु इससे कुछ अप्रत्यक्ष प्रवृत्तियाँ भी उत्पन्न हो गई। वहावियों का सभी अमुस्लिम लोगों के प्रति जेहाद (धर्मयुद्ध) का नारा लगाना और देश में दार-उल-इस्लाम स्थापित करने का स्वप्न लेना हिन्दुओं के लिए स्वीकार करना सम्भव नही था। दूसरी ओर विवेकानन्द द्वारा प्राचीन भारतीय उपलब्धियों का उल्लेख करने मे कुछ मुसलमान अप्रसन्न थे।

इसी प्रकार तिलक, लाला लाजपतराय, अरविन्द और गाँधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर

समर्थक थे परन्तु वे जाने-अनजाने मे ऐसी भाषा उपमा और सङ्केतों का प्रयोग करते थे, जो केवल हिन्दू थी। जैसे कि एक आदर्श राज्य के लिए महात्मा गॉधी 'रामराज्य' की बात करते थे, जिसे मुस्लिम जनता द्वारा नापसन्द किया जाता था। यह सत्य है कि इन शब्दो का प्रयोग जनसाधारण की भावनाओ को उभारने के लिए किया गया था. परन्तु अंग्रेजों ने इसका प्रयोग साम्प्रदायिकता की भावना को उभारने के लिए किया।

सरकारी सेवाओं का साम्प्रदायिकता बढ़ाने के लिए उपयोग – व्यापार और उद्योग में पर्याप्त अवसर न मिलने के कारण केवल सरकारी सेवाएँ ही जीवन-यापन का एक अच्छा अवसर प्रदान करती थी। ब्रिटिश शासको ने इसका प्रयोग आपसी द्वेष और ईर्ष्या को उत्तेजित करने के लिए किया। हमारे राष्ट्रीय नेता इसको भली भाँति समझते थे, परन्तु वे इसमें कुछ भी नही कर सकते थे। जैसा कि एक बार पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था – "इस विशाल संरक्षण (Patronage) का प्रयोग अंग्रेजों की भारत में स्थिति सुदृढ़ करने के लिए किया गया   आपस में प्रतिद्वन्दिता और विरोध को बढ़ाने के लिए किया गया ..   आत्मसम्मान को हानि पहुँची, द्वेष बढा और सरकार एक समूह को दूसरे के विरुद्ध भडकाती रही।"[13]

शिमला-प्रतिनिधिमंडल (1 अक्टूबर, 1906) और साम्प्रदायिक निर्वाचन मंडलों की प्रणाली को स्वीकार करना – इंग्लैण्ड स्थित भारत राज्य सचिव से लेकर जिला प्रशासक तक सभी पदाधिकारी इस बात पर तुले हुए थे कि यदि भारत में अंग्रेजी राज्य को बनाए रखना है तो भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति का कोई न कोई प्रतिकार ढूँढ़ना ही पड़ेगा। एक ऐसा प्रतिकार था - साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचन मंडल अर्थात् मुसलमानों के लिए पृथक स्थानों का आरक्षण और उनके चुनाव में केवल मुस्लिम मतदाता ही भाग ले सकते थे। नए संवैधानिक सुधारों पर विचार हो रहा था। अतएव एक अच्छा अवसर स्वयं उपस्थित हो गया। एम० ए० ओ० कॉलेज, अलीगढ़ के प्रिंसिपल आर्चबोल्ड के

सुझाव पर आगा खॉ एक प्रतिनिधिमंडल लेकर अक्टूबर, 1906 को शिमला में लॉर्ड मेयो मे मिले। इस प्रतिनिधि मंडल को मौलाना मुहम्मद अली ने 'आज्ञानुसार कार्य' की संज्ञा दी। आर्चबोल्ड ने उस प्रतिनिधिमंडल के निवेदन पत्र का मसविदा तैयार किया, सरकार और प्रतिनिधिमण्डल के मध्य बिचौलिए की भूमिका निभाई तथा इसकी स्वीकृति का प्रवन्ध किया। प्रतिनिधिमंडल के लोगो ने ब्रिटिश ताज के प्रति राजभक्ति की भावना प्रकट की और उनके सुधारों की प्रशंसा भी की। परन्तु उन्होंने चुनावो पर अपनी शङ्का व्यक्त की, कि संयुक्त चुनाव प्रणाली उनके हितो मे नहीं होगी। प्रार्थियों ने यह भी कहा कि मुसलमानों को केवल जनसंख्या के आधार पर आरक्षण नहीं मिलना चाहिए अपितु यह उनके राजनीतिक महत्त्व और साम्राज्य की रक्षा में की गई सेवाओं के आधार पर मिलना चाहिए। लॉर्ड मिण्टो ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इस पर लॉर्ड मार्ले, भारत राज्य सचिव ने मिण्टो की पीठ ठोंकी और लिखा, "आपका आवेदन-पत्र वहुत उत्तम था – यहाँ इसकी लोगो और समाचार-पत्रों ने बहुत प्रशंसा की है "

मुस्लिम लीग की स्थापना (30 दिसम्बर, 1906) – शिमला प्रतिनिधिमंडल के समय मुस्लिम नेताओं ने एक केन्द्रीय मुस्लिम सभा वनाने की सोची जिसका उद्देश्य केवल मुसलमानों के हितों की रक्षा करना हो। 30 दिसम्बर, 1906 को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का विधिवत् उद्‌घाटन किया गया। इसके उद्देश्य इस प्रकार थे –

(1) भारतीय मुसलमानों में अंग्रेजी सरकार के प्रति राजभक्ति की भावना को वढ़ाना और यदि सरकार के किन्हीं विचारों के विषय में कोई गलत धारणा उठे तो उसे दूर करना।

(2) भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना और उनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को मर्यादापूर्ण शब्दों में सरकार के सम्मुख रखना।

(3) उद्देश्य 1 और 2 को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव मुसलमानों तथा अन्य भारतीय

सम्प्रदायो के मध्य सद्भाव वढाना।

इतिहास साक्षी है कि लीग अपने इस अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने मे बुरी तरह विफल रही।

इस प्रकार मुस्लिम लीग शुरु से ही एक साम्प्रदायिक सभा थी जिसका उद्देश्य केवल मुसलमानों के राजनैतिक तथा अन्य हितों की रक्षा करना था। इसका यही स्वरूप 1947 तक बना रहा।

मुस्लिम लीग के राजनैतिक उद्देश्य अलीगढ मे दिए नवाब वक्कार-उल-मुल्क के एक भाषण से स्पष्ट हो जाते हैं। नवाब ने कहा था, "अल्लाह न करे, यदि अंग्रेज राज्य भारत से समाप्त हो जाए तो हिन्दू हम पर राज्य करेंगे और हमारी जान, माल और धर्म खतरे में होगा। मुसलमानों के इस खतरे से बचने का एक ही मार्ग है, वह यह है कि वे अंग्रेजी राज्य को जारी रखने में सहायता करें। यदि मुसलमान पूरे मन से अंग्रेजों के साथ रहेंगे तो उनका राज्य पूर्ण रूप से वना रहेगा। मुसलमानो को अपने आपको अंग्रेजी सेना समझना चाहिए जो ब्रिटिश ताज के लिए अपना रक्त वहाने और जीवन अर्पण करने को तैयार है।"

मुस्लिम लीग का नेतृत्व नवावों और जमींदारों के हाथ में था। परन्तु 1911 के वाद अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रभाव के कारण, जिसमें वालकन युद्ध और तुर्की में युवा तुर्क आन्दोलन सम्मिलित थे, भारतीय मुसलमानों में पैन-इस्लाम की विचारधारा की लोकप्रियता वढ़ी जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा। मुस्लिम समुदाय का एक युवा वर्ग कॉग्रेस के उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखने लगा और 1913 में लीग ने अपने संविधान में परिवर्तन करके अपना उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वशासन की मांग करना निश्चित किया। कॉंग्रेस की नीतियों से क्रमशः निकटता कॉग्रेस-लीग समझौते में परिणत हुई।

मुस्लिम लीग और कॉंग्रेस समझौता (1916) – कॉग्रेस और लीग में समझौते की बातचीत अक्टूवर 1915 से प्रारम्भ हो गई थी। दिसम्बर, 1915 में लीग और कॉग्रेस के वम्वई में संयुक्त

अधिवेशन हुए। 1916 मे इन संगठनो के प्रतिनिधियो की कई संयुक्त वैठकें हुई। बातचीत के मुख्य मुद्दे दो थे – प्रथम का संवंध मुसलमानों को पृथक्-चुनाव प्रणाली के माध्यम से अपने प्रतिनिधि चुनने की वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने से था और दूसग प्रश्न ब्रिटिश भारत की विभिन्न विधान सभाओं के मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का अनुपात निश्चित करने से था। कॉग्रेस नेतृत्व का एक वर्ग, जिसमें मालवीय प्रमुख थे, पृथक् चुनाव प्रणाली का 1909 से ही तीव्र विरोधी था। उनके विरोध के कारण एक बार तो लीग-काँग्रेस समझौते का भविष्य ही अंधकार में पड गया था, परन्तु तिलक की मध्यस्थता से स्थिति संभल गई।

ऐसा प्रतीत होता है कि तिलक और उन्ही के समानधर्मी कॉग्रेसजन ब्रिटिश गज पर संवैधानिक माँगों को स्वीकार करने के लिए उचित दबाव डालना चाहते थे, और इसके लिए वे लीग को पृथक् निर्वाचन की सुविधा देने को तत्पर थे।

कॉग्रेस-लीग समझौता एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मसौदा है। जव तक भारतीयों को शासन में भागीदारी न देने की ब्रिटिश नीति बरकरार थी, तव तक प्रतिनिधित्व के साम्प्रदायिक आधार का कोई विशेप महत्त्व नही था, परन्तु अगस्त 1917 के वाद स्थिति बदल गई। पहली बार ब्रिटिश गज ने शासन मे भारतीयों को क्रमशः उत्तरदायित्व देने की नीति की घोपणा की, जिसका अर्थ था- कार्यकारिणी का विधायिका के प्रति उत्तरदायी होना। परन्तु नीति निर्माताओं ने भारत में विधानसभाओं के निर्माण के लिए जिस प्रतिनिधित्व प्रणाली को कार्यान्वित किया, उसका आधार काँग्रेस-लीग समझौता था। निश्चय ही साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली स्वयं में अलोकतान्त्रिक थी, परन्तु तर्क यह दिया गया कि यह प्रणाली हिन्दू और मुसलमान नेताओं द्वारा स्वीकृत है। कॉग्रेस लीग समझौते के अन्य महत्त्वपूर्ण सुझावो को लागू करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

खिलाफत आन्दोलन (1919-1923) – ब्रिटिश सरकार पर तुर्की के साथ की जाने वाली

सन्धियों मे न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त दबाव डालने के उद्देश्य से भारतीय मुसलमानों के एक बहुसंख्यक वर्ग ने राष्ट्रीय स्तर पर जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया, वह खिलाफत आन्दोलन के नाम से जाना गया। इलाहाबाद में प्रमुख कॉग्रेसी नेताओं के साथ खिलाफत कमेटी की बैठक हुई और मोतीलाल नेहरू, लाल लाजपत राय और चितरंजन दास के विरोध के बावजूद खिलाफत के प्रश्न पर असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। यह महात्मा गाँधी की पहल पर हुआ। गॉधी का विचार था कि ऐसा करने से हिन्दू-मुस्लिम एकता सुदृढ़ होगी।

1921 का वर्ष भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन मे एक नई जागृति एवं चेतना का वर्ष रहा, जिससे समाज का हर वर्ग प्रभावित था। जहॉ तक मुसलमानों का प्रश्न है, खिलाफत के प्रश्न पर उनको बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित कराने में उलेमा वर्ग की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। परन्तु सामाजिक दृष्टि मे लगभग धर्मान्ध और रूढिवादी इस वर्ग द्वारा नेतृत्व प्रदान करने मे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम भी निकले। खिलाफत आन्दोलन द्वारा धर्मान्धता उभारे जाने के कारण दक्षिण भारत में मालाबार के पश्चिमी किनारे पर भीपण हत्याकांड हुआ, जिसे मोप्पला विद्रोह कहते है । मोप्पला इस क्षेत्र के निम्न हिन्दू जातियों के वंशज थे, जिन्होंने अरब सम्पर्क काल मे ही इस्लाम स्वीकार कर लिया था। आर्थिक दृष्टि से वे गरीब किसान थे और इनका शोपण ब्रिटिश नीतियों से लाभान्वित नम्बूदिरि जमींदार और नायर साहूकार वर्ग करता था। 1921 के प्रारम्भ में खिलाफत समर्थक मालाबार पहुँचे और मोप्पला, जिनकी दृष्टि में ब्रिटिश शासन और हिन्दू शोषक-वर्ग में कोई अन्तर नही था, भड़क उठे। उन्होंने प्रारम्भ में तो पुलिस और सेना पर आक्रमण किया, परन्तु उनके क्रोध के शिकार सबसे अधिक उनके हिन्दू पड़ोसी हुए। बहुत से हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया और उनके मंदिरो व दुकानो को लूट लिया गया तथा विशेषकर महिलाओं के विरूद्ध अत्याचार किए गए। हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना पर इस विद्रोह का प्रतिकूल असर पड़ा।

फरवरी, 1922 में गाँधी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। खिलाफत समर्थकों को इससे विशेष हताशा हुई। इसी बीच अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों के फलस्वरूप खिलाफत आन्दोलन कमजोर पड़ के टूट गया। खिलाफत आन्दोलन मे जो वर्ग उस प्रश्न के धार्मिक पक्ष से बहुत प्रभावित था, उसकी दूरी कॉंग्रेस नेतृत्व से बहुत बढ गई और धीरे-धीरे वह साम्प्रदायिकतावादी हो गया।

साम्प्रदायिक हिंसा (1922-1932) – खिलाफत आन्दोलन के समाप्त होने के बाद हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक सद्‌भाव समाप्त हो गया और उसका स्थान साम्प्रदायिक हिसा ने ले लिया। आधिकारिक रूप से 1923 से 1928 के मध्य 88 दंगों का होना, जिसमें 400 मौतें हुई, तत्कालीन परिस्थिति की गम्भीरता का पर्याप्त प्रमाण है। इन दंगों को उभारने में दोनों समुदायों के जिन धार्मिक रीति रिवाजों का मुख्य स्थान है, वे मुख्यतः दो थे – (1) मस्जिदों के सामने गाजे-बाजे के साथ हिन्दू धार्मिक जुलूसों का निकलना, और (2) मुस्लिम त्योहार बकरीद के अवसर पर गो-हत्या। मुसलमान गाजे-बाजे के शोर को न केवल नमाज के समय व्यवधान मानते हैं, बल्कि उसे इस्लाम-विरोधी समझते हैं। 1926 का कलकत्ते का दंगा मस्जिद के सामने बाजा बजाने से हुआ था। उसी प्रकार हिन्दू समाज गाय को पूज्या तथा माता मानता है। साम्प्रदायिक हिंसा की अनवरत घटनाओं के बाद 1927 मे इन दोनों प्रश्नों पर एक आधिकारिक नीति अपनाई गई, जिससे तनाव कम हो सके। परन्तु यह स्पष्ट था कि इन प्रश्नों पर सामुदायिक सौहार्द राजकीय आज्ञाओं से अधिक सफल होते है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त दंगों का एक बहुत बड़ा कारण हिन्दू और मुस्लिम सामाजिक नेताओं के द्वारा एक-दूसरे के प्रति दुष्प्रचार और विषवमन भी था। इसी काल मे आर्य-समाज तथा हिन्दू महासभा के नेतृत्व में दो अत्यन्त प्रतिक्रियावादी आन्दोलन चलाए गए जिन्हें 'शुद्धि' और 'संगठन' के नाम से जाना जाता है। 'शुद्धि' आन्दोलन के माध्यम से इस्लाम को स्वीकार करने वाले उन अनुयायियो को हिन्दू समाज में वापस लेना था – जो अभी भी अपने को हिन्दू अतीत से मुक्त नहीं कर सके थे।

'संगठन' का उद्देश्य मुसलमानो की तथाकथित शारीरिक श्रेष्ठता के विरुद्ध हिन्दुओं में भी व्यायाम आदि साधनों से शारीरिक बल पैदा करना था। इस प्रकार के आन्दोलनों के उत्तर में मुसलमानो मे भी तंजीम (संगठन) और तबलीग (प्रचार) आन्दोलन प्रारम्भ किए गए। जैसा कि स्वाभाविक था. इन परिस्थितियो ने सामाजिक दृष्टिकोण से कटुता का वातावरण तैयार किया जिसमें एक दूसरे के धार्मिक नेताओं के विरुद्ध कुत्सित प्रचार किए गए। स्वामी श्रद्धानन्द, जो आर्यसमाज के नेताओं मे अग्रणी थे, 1926 मे साम्प्रदायिक हिसा के शिकार हुए।

एक और महत्त्वपूर्ण धारणा जो हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के लिए उत्तरदायी थी, शुद्ध राजनैतिक थी। 1921 में संविधान के क्रियान्वित होते ही प्रान्तो में, मताधिकार के माध्यम से, पहली बार भारतीयों के हाथ में राजनैतिक सत्ता आई। पंजाब में अपने बहुमत का प्रयोग करके मुस्लिम मध्यम वर्ग ने वहाँ की स्थानीय संस्थाओं पर अधिकार का प्रयास किया। 1927 में ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। मुसलमानो में एक सहज आशङ्का उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त के और विस्तार की सम्भावना से उठ खडी हुई क्योंकि ब्रिटिश भारत के कुछ भागो को छोड़कर इसका अर्थ हिन्दू बहुमत की स्थापना होता। अत: मुस्लिम पक्ष को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने के लिए मुस्लिम लीग को पुनर्जीवित किया गया। क्रमशः मुस्लिम राजनैतिक माँगों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई और इन माँगों का स्वीकार किया जाना कॉग्रेस के साथ सहयोग की शर्त बन गया।

मुस्लिम लीग की नीति – 1919 से 1923 तक मुस्लिम लीग की एक राजनैतिक दल के रूप में स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई थी। परन्तु असहयोग आन्दोलन के समाप्त होने के पश्चात् 1924 में मुहम्मद अली जिन्ना की अध्यक्षता में लाहौर में लीग की स्वतंत्र बैठक बुलाई गई। लीग के इसी अधिवेशन में उसकी अपनी माँगों के लिए ब्रिटिश राज पर निर्भर रहने की नीति का अन्त होता है। भविष्य में, कुछ शर्तो के साथ, कॉग्रेस की संवैधानिक माँगों को समर्थन देने का निश्चय किया गया। लाहौर अधिवेशन

में भारत के लिए स्वशासन की माँग को स्वीकार किया गया, परन्तु साथ ही मुसलमानों के लिए पृथक चुनाव प्रणाली एक आवश्यक शर्त मानी गई। कॉग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में स्वीकार किए गए उस प्रस्ताव को फिर से दोहराया गया जिसके अनुसार किसी भी विधानसभा में किसी समुदाय से संबंधित कानून उस समय तक पारित नही किया जा सकता था, जब तक कि उस समुदाय के चुने सदस्यों मे तीन-चौथाई उसका विरोध करते हों। इसी अधिवेशन में यह मॉग भी की गई कि भविष्य के किसी पुनर्गठन में ऐसा परिवर्तन न किया जाए कि मुसलमानों का बङ्गाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का बहुमत घटकर अल्पमत हो जाए। इस प्रस्ताव मे केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की स्थिति में हिन्दू बहुमत के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करने की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

1927-30 में साइमन आयोग की नियुक्ति और लंदन में हुई गोलमेज बैठकों (1930-32) ने मुस्लिम लीग में पुनः जान डालने का कार्य किया। 1932 में ब्रिटिश सरकार ने 'साम्प्रदायिक अधिनिर्णय' की घोषणा की। इसके अधीन मुस्लिम, यूरोपियन, सिक्ख, एंग्लो-इंडियन समुदायो को विभिन्न प्रान्तीय विधानसभाओं मे अपने समुदाय के प्रतिनिधियों को पृथक् चुनाव प्रणाली के माध्यम से चुनने का अधिकार दिया गया। इतना ही नही, हिन्दू जाति-व्यवस्था के दलित वर्ग को भी यह सुविधा दी गई परन्तु गाँधी द्वारा इसके विरुद्ध आमरण अनशन करने के कारण 'पूना समझौता' द्वारा इसे हटा दिया गया। तीसरे गोलमेज सम्मेलन में एक 'पूरक' साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा केन्द्रीय विधानसभा में मुसलमानों के लिए एक-तिहाई स्थानों को सुरक्षित करने की घोषणा की गई। ब्रिटिश सरकार की इस पक्षपातपूर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि 1935 के अधिनियम में फ़ेडरल असेम्बली के 250 स्थानों में मुसलमानो को 82 स्थान सुरक्षित किए गए थे। यह अनुपात कुल स्थानो का एक-तिहाई था, जबकि मुसलमान कुल जनसंख्या के चतुर्थांश थे। यह कहना कि ब्रिटिश सरकार अपने निर्णयों में लखनऊ समझौते का पालन कर रही थी, इस अर्थ में असङ्गत सिद्ध होता है कि लखनऊ समझौता अल्पसंख्यको के प्रतिनिधित्व को, चाहे वे हिन्दू हों या मुस्लिम, जनसंख्या के अनुपात से अधिक निश्चित रखने के पक्ष में था, लेकिन ब्रिटिश

सरकार केवल मुसलमानो के संबंध में अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए इसका उपयोग कर रही थी।

साम्प्रदायिक अधिनिर्णय ने हिन्दू-मुसलमानो के बीच की खाई को चौडा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिन्दू साम्प्रदायिकता का विकास – 1922 के बाद के वर्षो में जब राजनीति का साम्प्रदायिकीकरण हो रहा था, हिन्दू साम्प्रदायिक शक्तियाँ एक संगठित राजनैतिक दल के रूप में उभर रही थीं। इस संबंध में जो दो संगठन प्रमुख थे, उनमें से एक हिन्दू महासभा थी और दूसरा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। हिन्दू महासभा एक सक्रिय राजनैतिक दल था जबकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सामाजिक संगठन था।

हिन्दू महासभा की स्थापना 1915 में हुई। इसके प्रारम्भिक वर्षो में इसके साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के उन सभी प्रमुख नेताओं का संबंध था, जिन्हें साधारणतः 'नरमपन्थी' साम्प्रदायिक नेता कहा जाता है। इसमें प्रमुख मदनमोहन मालवीय और लाजपतराय थे। हिन्दू महासभा के प्रथम अध्यक्षीय भाषण में महाराजा मनिन्द्र चन्द्र नन्दी ने यह आशङ्का प्रकट की थी कि धर्म परिवर्तन की सुविधा के अभाव मे देश की जनसंख्या में कहीं हिन्दू अल्पमत में न हो जाएं। मदन मोहन मालवीय हिन्दू महासभा के सबसे प्रतिष्ठित नेताओं में से थे, और 1933 के अधिवेशन में उन्होंने हिन्दुओं को संगठित होने का आह्वान किया। बनारस के इसी अधिवेशन में 'शुद्धि' जैसे आन्दोलनों का स्वागत किया गया। 1930-32 तक हिन्दू महासभा सङ्कीर्णता की राजनीति से अलग रही और हिन्दुओं के अधिकारों की मॉग करते हुए भी अन्य समुदायों के साथ भारत को ब्रिटिश प्रभुत्व से मुक्त करने के प्रयासों मे सहयोग के लिए उद्यत थी। हिन्दू महासभा का जनाधार भी सीमित था और इसके प्रमुख समर्थक उच्च जातियों के तथा भू-स्वामी वर्ग के थे।

हिन्दू साम्प्रदायिकता को लोकप्रियता देने और इसे आर्थिक तथा सामाजिक रूप से निम्नवर्ग तक पहुॅचाने मे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका प्रमुख है। 1930 से प्रारम्भ होने वाले दशक में उत्तरोत्तर

बढती हुई मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रत्युत्तर के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विकास हुआ। संघ की स्थापना 1927 मे डॉ० बी० एस० मुंजे ने नागपुर में की थी, परन्तु इसको विस्तृत और संगठित करने में डॉ० हेडगेवार का योगदान है। इसको देश के कोने-कोने मे एक श्रेणीवद्ध सगठन के रूप में लोकप्रिय बनाने का काम एम० एस० गोलवकार का था जो 1940 में सरसंघचालक वने। संघ का नारा 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' था। इसने विशेषतः हिन्दू युवकों को आकर्षित किया और उनको लाठियो, कटार और तलवार के माध्यम से अर्द्धसैनिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की, जिससे देश को विदेशियो और मुस्लिम प्रभाव से मुक्त किया जा सके। एक अनुमान के अनुसार वम्बई मे 1946 के अन्त तक संघ की सदस्यता 28,000 और पंजाब में 46,000 तक हो गई थी।

कॉँग्रेस मंत्रिमंडल और मुस्लिम लीग (1937-1939) – 1937 के चुनाव के पश्चात् मुस्लिम लीग ने कॉँग्रेस मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। कॉग्रेस जो असाम्प्रदायिकता के लिए गर्व करती थी, ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और यह कहा कि यदि मुस्लिम लीगी समदस्य मंत्री बनना चाहते हैं तो वे कॉग्रेस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करें। यह सम्भवतः कॉग्रेस की सवसे बड़ी भूल थी। जिन्ना ने इस सुझाव को मुस्लिम लीग के विरुद्ध सबसे वडी चाल वताया। उसने कॉग्रेस के विरुद्ध प्रत्येक प्रकार के आरोप लगाए और कॉँग्रेस को हिन्दुओं की संस्था बताया जो अल्पसंख्यकों को दवाना चाहती है। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि कॉँग्रेस से मुसलमानों को न्याय की आशा नहीं करनी चाहिए। 1937 में मुस्लिम लीग ने पीरपुर के राजा के नेतृत्व में एक समिति नियुक्त की जो 'हिन्दू कॉग्रेसी प्रान्तों' में मुसलमानों पर किए गए अत्याचारों की जॉच करे। पीरपुर रिपोर्ट ने मुसलमानों पर हुए अत्याचारों की कहानियाँ गढ़ ली। रिपोर्ट में लिखा था, "कॉग्रेस और हिन्दू महासभा के उद्देश्य एक है। . . यद्यपि कॉँग्रेस अपने आपको असाम्प्रदायिक कहती है और कुछ कॉँग्रेसी वास्तविक रूप से राष्ट्रवादी नीति पर आचरण भी करते हैं, परन्तु अधिकांश कॉँग्रेसी हिन्दू हैं और वे शताब्दियों के मुस्लिम और अंग्रेजी राज्य के पश्चात् शुद्ध हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहते हैं।" मुसलमान प्रायः यह मानते थे कि "बहुसंख्यक

अन्याय से बढ़कर कोई अन्याय नही है।"

दो राष्ट्र का सिद्धान्त और पाकिस्तान की माँग – प्राय: कवि और राजनैतिक चिन्तक मुहम्मद इकबाल को मुसलमानों, के लिए पृथक् राज्य पाकिस्तान के विचार का प्रवर्तक माना जाता है। 'सर्व इस्लाम' (Pan Islamism) की भावना से प्रेरित होकर इकबाल ने 1930 के अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन मे कहा था, "यदि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि भारत के साम्प्रदायिक प्रश्न का स्थायी हल भारतीय मुसलमान को अपने देश भारत में अपनी संस्कृति और परम्पराओं के पूर्ण और स्वतंत्र विकास का अधिकार है, तो मेरी इच्छा यह होगी कि पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाए। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर अथवा बाहर, एक उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का गठन मुझे कम से कम उत्तर-पश्चिमी भारत मे, मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य प्रतीत होता है।"

मुसलमानों के लिए पृथक् स्वदेश जिसे पाकिस्तान कहा जाए, यह स्पष्ट विचार कैम्ब्रिज के एक अनुस्नातक विद्यार्थी रहमत अली के मन में उत्पन्न हुआ। उसका यह विचार था कि हिन्दू और मुसलमान मूलभूत पृथक् राष्ट्र हैं। उसने लिखा था, "हमारा धर्म, संस्कृति, इतिहास, परम्पराएँ, साहित्य, आर्थिक प्रणाली, दाय के कानून, उत्तराधिकार और विवाह हिन्दुओं से मूलतः भिन्न हैं। ये भिन्नताएँ मुख्य मूल सिद्धान्तों में ही नहीं अपितु छोटे-छोटे ब्यौरे में भी भिन्न हैं। हम मुसलमान और हिन्दू आपस मे बैठकर खाते नहीं और विवाह नही करते। हमारी राष्ट्रीय रीतियाँ, पञ्चाङ्ग, यहाँ तक कि खाना और पहनावा सभी भिन्न हैं।"

हिन्दू-मुसलमान पृथक्-पृथक् राष्ट्र है, इसकी घोषणा स्पष्ट शब्दों में मुहम्मद अली जिन्ना ने लाहौर में मार्च, 1940 के अधिवेशन में की। "ये (हिन्दू और मुसलमान) शब्द के नियमनिष्ठ अर्थ में धर्म नही है, अपितु वास्तव में भिन्न और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्था है और यह एक स्वप्न है कि कभी भी हिन्दू और

मुस्लिम मिलकर एक राष्ट्र बना सकते है। इन दोनो के धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति रिवाज व साहित्य भिन्न है ऐसी दोनों जातियों को एक राज्य में इकट्ठे बॉधने से जिसमें एक अल्पसंख्यक हो और दूसरी बहुसंख्यक इससे असन्तोष बढेगा और राष्ट्र ही नष्ट हो जाएगा।''

भारत का बटवारा मॉगते हुए मुस्लिम लीग ने यह प्रस्ताव पारित किया। ''अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के इस अधिवेशन का यह दृढ़ विचार है कि इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना सफल और मुसलमानों को स्वीकृत नही होगी जो कि निम्नलिखित सिद्धान्तो पर आधारित न हो – भौगोलिक स्थिति से एक-दूसरे से लगे हुए प्रदेश, आवश्यक परिवर्तनों सहित इस प्रकार गठित किए जाएँ ताकि वहॉ मुसलमान् बहुसंख्यक हो जाएँ जैसा कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी प्रदेश और इनको मिलाकर एक 'स्वतंत्र' राज्य बनाया जाए और उसमें सम्मिलित प्रदेश स्वशासी और प्रभुसत्तापूर्ण हों ." इस प्रस्ताव में जो प्रदेश पाकिस्तान में सम्मिलित होने थे, उनका विवरण नहीं था। 1942 मे जिन्ना ने प्रोफेसर कूपलैण्ड को व्याख्या करते हुए कहा था कि ''पाकिस्तान एक मुस्लिम राज्य होगा। भारत के एक ओर उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, पंजाब और सिन्ध तथा दूसरी ओर बङ्गाल होंगे।'' उसने बलूचिस्तान का उल्लेख नही किया था, न ही कश्मीर और हैदराबाद का। परन्तु 12 मई, 1946 को मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल को एक स्मरण-पत्र मे मुस्लिमलीग ने छः प्रान्त (पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान, सिन्ध, बङ्गाल और आसाम) को एक समूह में सम्मिलित करने की बात कही।

कैबिनट प्रतिनिधिमंडल – मार्च, 1946 में ब्रिटेन द्वारा मुस्लिम लीग और कॉग्रेस के परस्पर बढ़ते विरोध और युद्धोपरान्त परिस्थितियों की संवैधानिक जटिलता के समाधान के लिए एक कैबिनेट प्रतिनिधिमंडल भेजा गया। इस प्रतिनिधिमंडल ने पाकिस्तान की माँग अस्वीकार कर दी और एक केन्द्रीय सरकार जिसके अधीन विदेशी मामले, रक्षा और संचार साधन हों, ऐसा सुझाव दिया परन्तु इसने लीग की मांग आंशिक रूप से स्वीकार कर ली और प्रान्तो को तीन भागों में बांटने का सुझाव दिया अर्थात् मद्रास,

बम्बई, सी० पी०, यू० पी, बिहार और उडीसा के हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्तों को समूह 'अ' मे, पंजाब उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और सिन्ध के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त समूह 'ब' में और बङ्गाल और आसाम का समूह 'स' बनाना स्वीकार किया। परन्तु प्रान्तों के पूर्ण स्वशासन और उनकी समूह रचना से पाकिस्तान का सार लीग को मिल गया।

इसके अतिरिक्त संविधान बनाने वाली सभा के गठन की विधि भी निश्चित की और उसके चुनाव मे काँग्रेस को सामान्य स्थानों म से 198 स्थान मिले और लीग को 78 मुस्लिम स्थानों में से 73। जिन्ना ने देखा कि कॉग्रेस को कुल 296 स्थानों मे से 211 का समर्थन मिलेगा और इस प्रकार मुस्लिम दल अल्पसंख्यक हो जाएगा। अतएव उसने दो संविधान सभाएँ माँगी, एक भारत तथा दूसरी पाकिस्तान के लोगों के लिए।

प्रत्यक्ष कार्यवाही और साम्प्रदायिक दंगे (1946-47) – मुस्लिम लीग ने कैबिनेट प्रतिनिधिमंडल की योजना से अपनी स्वीकृति वापस ले ली और 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' मनाया। यह प्रत्यक्ष कार्यवाही अंग्रेजो के विरुद्ध पाकिस्तान लेने के लिए नहीं की गई अपितु हिन्दुओं के विरुद्ध इसी उद्देश्य से की गई। लीग ने बङ्गाल, यू०पी०, बम्बई, पंजाब, सिन्ध और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में दंगे भड़काए। लीग द्वारा 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' का आह्वान और उससे उत्पन्न हिंसा ने इस तरह की घटनाओं का दुरभिचक्र प्रारम्भ कर दिया। सत्ता के निकट भविष्य में ही हस्तान्तरण की सम्भावना ने सामूहिक स्तर पर दंगों की राजनीति प्रारम्भ कर दी। इस दौरान हुए प्रमुख दंगे इस प्रकार थे –

(1) कलकत्ता के दंगे – 16 अगस्त, 1946 को कलकत्ता के मैदान मे मुस्लिम लीग की एक जनसभा हुई जिसमें कैबिनेट प्रतिनिधिमंडल द्वारा मुसलमानों के प्रति विश्वासघात की चर्चा की गई। कलकत्ता में उस दिन सार्वजनिक अवकाश की घोषणा कर दी गई थी, जिससे दफ्तर के बाबुओं तथा विद्यार्थियों की बड़ी संख्या उपद्रवों मे शामिल हो गई। 20 अगस्त तक चले इन दंगों में कम से कम चार

हजार व्यक्ति मारे गए।

(2) नोआखाली – पूर्वी बङ्गाल के नोआखाली जिले में 10 अक्टूबर, 1946 को मुस्लिम लीग की एक सभा के बाद बाजार लूटने की घटना से ये दंगे प्रारम्भ हुए और पड़ोस के त्रिपुरा जिले में भी फैल गए। इसमें कम से कम 200 लोग मारे गए। इन दंगों में बडी संख्याओं हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयास किया गया और विशेषतः महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया।

(3) बिहार – नोआखाली की प्रतिक्रियास्वरूप विहार के दंगों में मुस्लिम लोग हिसा का शिकार हुए। 25 अक्टूबर, 1946 को छपरा से आरम्भ ये दंगे गया, मुंगेर तथा भागलपुर तक पहुँच गए। 3 नवम्बर को सेनाओं का उपयोग किया गया, लेकिन तब तक हजारों की संख्या मे, आधिकारिक सूत्रों के अनुसार 4300 लोग मारे जा चुके थे। नेहरू ने अन्तरिम सरकार के सदस्यों के साथ दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा किया और कहा जाता है कि दंगाइयों के विरुद्ध बम-प्रयोग की भी धमकी दी गई।

(4) यू० पी० – यू० पी० मे हिन्दू महासभा और आर्य समाज के द्वारा यह प्रचार किया जा रहा था कि अन्तरिम सरकार के नेतृत्व में हिन्दू हितों की रक्षा होना असम्भव है क्योंकि जहॉ सरकार के हिन्दू मंत्री विहार में दमन-नीति के प्रयोग का समर्थन कर रहे थे, वही मुस्लिम लीग के मंत्री हिन्दुओं के प्रति की गई हिंसा के प्रति उदासीन थे। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर एकत्रित गढ़मुक्तेश्वर की अपार भीड़ में साम्प्रदायिकतावादियों को अपना अनुकूल अवसर मिला। यहॉ से फैले दंगों में लगभग 250 लोग मारे गए।

(5) पंजाब – पंजाव के हिन्दू और सिक्ख किसी भी मूल्य पर मुसलमानों का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। मार्च 1947 तक आते-आते उन्होंने पंजाव के विभाजन की माँग की। 4 मार्च, 1947 को लाहौर से दंगों का प्रारम्भ हुआ और अमृतसर, मुल्तान, रावलपिण्डी और अटक जिलों

मे फैल गया। इन दंगो की विशेषता यह थी कि हिंसा की घटनाएँ ग्रामीण क्षेत्रो में भी फैल गई, जहाँ हिन्दू जनसंख्या एकदम अल्पसंख्यक थी। मार्च के समाप्त होने तक, एक आधिकारिक सूत्र के अनुसार, लगभग 3000 व्यक्ति मारे गए। सबसे अधिक हानि इन दंगो में सिक्खों को उठानी पडी, जिसका बदला उन्होंने अमृतसर और गुड़गॉव की अल्पसंख्यक मुस्लिम जनसंख्या से लिया।

सत्ता का हस्तान्तरण और भारत का विभाजन – 3 जून, 1947 को सत्ता हस्तान्तरण की नई योजना प्रकाशित की गई। इसके अनुसार ब्रिटिश भारत को दो स्वतंत्र डोमिनियनों में विभाजित कर दिया गया, जो प्रत्येक दृष्टि से ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के समान होते। इसी योजना के अनुसार पंजाब और बङ्गाल की विधानसभाओं के हिन्दू और मुस्लिम सदस्यों को अपनी अलग-अलग बैठकों में यह निश्चय करना था कि वह विभाजन के पक्ष में हैं या नही। जैसी कि आशा थी, पंजाब और बङ्गाल के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों ने पाकिस्तान के पक्ष में और हिन्दू-बहुल क्षेत्रो के विधानसभा के सदस्यो ने भारत में बने रहने के पक्ष में निर्णय किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और आसाम के सिलहट में जनमत गणना कराई गई और वहाँ पर पाकिस्तान में सम्मिलित होने के पक्ष में मत पड़ा। 18 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद द्वारा पारित 'इंडियन इण्डिपेण्डेन्स एक्ट' के द्वारा दो स्वतंत्र प्रभुतासम्पन्न डोमिनियनों का निर्माण हुआ। वास्तविक सत्ता का हस्तान्तरण 14-15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को हुआ।

भारत में देश के विभाजन को एक 'महान दुर्घटना' माना जाता है। इसे अंग्रेजों की प्राचीन नीति 'फूट डालो और राज्य करो' तथा मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकता तथा पार्थक्य के आदर्श का एक स्वाभाविक अन्तिम चरण माना जाता है। इन दोनो ने एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य किया तथा भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस को विभाजन स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया। पाकिस्तान मे इस विभाजन को पूर्णतया तर्कसङ्गत तथा अनिवार्य माना जाता है। वे मुस्लिम राष्ट्रवाद को भारतीय इतिहास में ही निहित समझते हैं। पंडित नेहरू के अनुसार मुसलमानों के साम्प्रदायिकतावाद का कारण उनमें मध्यम वर्ग के

उभरने में देरी का होना था जिसके कारण लीग ने मुस्लिम जनता में भय की भावना भर दी। 'इस्लाम खतरे में है' इस नारे पर सभी मुसलमान लीग के झण्डे तले इकट्ठे हो गए। इस संबंध में के० के० अजीज का मत है – "सैय्यद अहमद खॉ से लेकर जिन्ना तक प्रत्येक पृथकतावाद के प्रतिपादक ने केवल नकारात्मक पक्ष पर ही अधिक बल दिया, सकारात्मक पक्ष पर नहीं। सब लोग हिन्दुओं के प्रभावी बनने पर, बहुसंख्यक अत्याचार अपनी संस्कृति को भय, आत्मसात् होने का डर, अमुस्लिम शासन की भयावह सम्भावनाओं, ऐसा वैसा न होने पर अन्धकारमय भविष्य की बात करते हैं . पृथकता के लिए आत्मपहचान, समाङ्गता तथा राष्ट्रीय एकता के आधार पर कभी अपना पक्ष प्रतिपादित करने का प्रयत्न भी नही किया गया।"[14] यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उग्र हिन्दू संगठनों की भूलों से भी साम्प्रदायिकता तथा पृथकतावाद को बढ़ावा मिला।

(घ) वर्तमान साम्प्रदायिक स्थिति

भारतीय संविधान मे देश को एक पन्थनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, परन्तु स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी भारतीय राजनीति में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भ हुई चुनावी राजनीति ने धर्म के नकारात्मक महत्त्व को उभारा है। धार्मिक विभिन्नता के कारण विभिन्न प्रकार के तनाव उत्पन्न होते हैं। राजनीतिज्ञ स्वार्थवश इन तनावों का लाभ उठाते हुए विभिन्न वर्गो के मध्य साम्प्रदायिक वैमनस्य बढाकर, इन सम्प्रदायों को वोट-बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। भारत में साम्प्रदायिक विद्वेष मुख्य रूप से हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदाय के मध्य पाया जाता है। यद्यपि वर्तमान समय में साम्प्रदायिक विद्वेष विभाजन पूर्व की स्थिति जैसा भयावह नही है तथापि इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष 2002 के प्रारम्भ में हुए गोधरा कांड तथा उसके परिणाम स्वरूप गुजरात मे हुई भीषण साम्प्रदायिक हिंसा ने साम्प्रदायिकता के विकराल स्वरूप को पुनः हमारे सम्मुख खडा कर दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् पिछले 55 वर्षों में देश में घटित साम्प्रदायिक घटनाओं की कुल संख्या लगभग 5000 रही है। गृहमंत्रालय के साम्प्रदायिक एकता प्रकोष्ठ की 1980-81 की रिपोर्ट के अनुसार सन् 1977 तक साम्प्रदायिक हिंसा की जो घटनाएँ देश में घटीं, वे कुल हिंसात्मक वारदातों की 11 6 प्रतिशत थी, 1982 तक यह प्रतिशत बढ़कर 17 6 हो गया और सन् 1982 के बाद तो उनमें 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सन् 1961 मे साम्प्रदायिक तनाव की दृष्टि से देश में 61 जिले पुलिस द्वारा गड़बडी वाले जिले माने गए, 1990 में ऐसे जिलों की संख्या 100 हो गई। सन् 1987 में उत्तर प्रदेश के मेरठ शहर में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए जिनमे लगभग 300 लोगों की जान गई। स्वतन्त्रता के पश्चात् मेरठ में हुए 12 बड़े दंगों में 1500 से अधिक लोग मारे गए। उत्तर प्रदेश में दंगों के कारण पिछले एक दशक में 5500 लोगों के मारे जाने की सम्भावना है। अस्सी के दशक में महाराष्ट्र के भिवण्डी में हुए दंगों मे सैकड़ों जानें गई। 1987 में पुरानी दिल्ली के अनेक क्षेत्रों में साम्प्रदायिक हिंसा की वारदातें हुई। 5 जनवरी, 1993 को मुम्बई शहर व्यापक साम्प्रदायिक हिंसा की चपेट में आ गया। इस हिंसक घटना

में 600 से भी अधिक लोग मारे गए तथा 1500 से अधिक घायल हुए। 50 हजार लोग बेघर हो गए। पिछले कुछ वर्षो में साम्प्रदायिक हिंसा शहरी क्षेत्रों से आगे बढ़कर अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी फैल रही है। गृहमंत्रालय की 1998-99 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1998-99 में साम्प्रदायिक हिसा की 626 वारदातें हुई जिनमें 207 व्यक्तियो की जानें गई और 2065 व्यक्ति जख्मी हुए, जबकि वर्ष 1997-98 में 725 वारदाते हुई जिनके परिणामस्वरूप 264 व्यक्तियों की जानें गई और 2503 व्यक्ति जख्मी हुए। लगभग 90% साम्प्रदायिक घटनाएं उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, दिल्ली, पश्चिमी बङ्गाल तथा तमिलनाडु राज्यों में हुई थी।[15] 27 फरवरी, 2002 को गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस की उस बोगी को आग लगा दी गई जिसमें अयोध्या से कारसेवक वापस आ रहे थे। इस घटना के प्रतिक्रियास्वरूप सम्पूर्ण गुजरात में भयङ्कर दंगे भड़क उठे। इंडिया टुडे के एक सम्पादकीय के अनुसार गोधरा के बाद हुए दंगे, भारत में 1993 के बाद अब तक हुए दंगों में भीषणतम थे, जिसमें सैकड़ों लोग मारे गए तथा हजारो को शरणार्थी शिविरों मे शरण लेनी पडी।[16]

हिंसात्मक घटनाओं के अलावा विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य वैचारिक टकराव भी दिखाई पड़ता है, जो साम्प्रदायिक सद्भाव में कमी लाता है। भारत एक बहुधर्मी देश है, तथा यहाँ बहुत से धर्मो का अस्तित्व साम्प्रदायिकतावादी तत्वों को पनपने का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। भारतीय जनसंख्या का बहुमत हिन्दू धर्म का अनुयायी है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक[17] के रूप में 5 समुदायों अर्थात् मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध तथा पारसी को अधिसूचित किया है। 1991 की जनगणना के अनुसार अल्पसंख्यक समूहों की जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का 18% है।[18] भारत में प्रमुख धर्मो के अनुयायियों की संख्यात्मक स्थिति को आगे दी हुई **TABLE** से भलीभाँति समझा जा सकता है –

TABLE

Census→	1961		1971		1981		1991	
Religion↓	**Million**	**%**	**Million**	**%**	**Million**	**%**	**Million**	**%**
Hindu	366.5	83.50	453.3	82.70	549.7	82.60	672 6	82 41
Muslim	46.9	10.70	61.4	11.20	75.6	11.40	95.2	11.67
Christian	10.7	2.40	14 2	2.60	16.2	2.40	18.9	2 32
Sikh	7.8	1.80	10.4	1.90	13.1	2.00	16.3	1.99
Buddhist	3.2	0.70	3.8	0.70	4.7	0.70	6.3	0 77
Jain	2.0	0.50	2.6	0.50	3.2	0.50	3.4	0.41
Others	1.6	0.40	2.2	0.40	2 8	0.40	3.5	0.43
Total	439.2	100.00	548.2	100.00	665.3	100.00	816 2[1]	100 00

Note : Assam has not been included in the Data of 1981.

1. Excluding Assam and J & K.

इस TABLE से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्मावलम्बी भारत में बहुसंख्यक हैं तथा मुस्लिम समुदाय सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग है। अन्य प्रमुख अल्पसंख्यक समुदाय हैं – ईसाई तथा सिक्ख। हिन्दू तथा मुस्लिम समुदाय के मध्य अनेक मुद्दों को लेकर गम्भीर तनाव पाया जाता है। इस तनाव में 1989 के बाद से अयोध्या के रामजन्मभूमि-वावरी मस्जिद विवाद के जोर पकड़ने से उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या मे विवादास्पद ढॉचे के ध्वंस के पश्चात् यह अपने चरम पर पहुँच गया था। पिछले कुछ वर्षो मे धीरे-धीरे इस तनाव में कुछ कमी आई थी, परन्तु 27 फरवरी, 2002 को गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस की एक बोगी में अयोध्या से वापस आ रहे हिन्दुओं को जीवित जला देने की हृदय-विदारक घटना तथा उसके परिणामस्वरूप गुजरात में भड़के भीषण दंगों ने हिन्दू-मुस्लिम तनाव को पुनः तीव्र कर दिया है।

भारत की साम्प्रदायिकता की समस्या को समझने के लिए विभिन्न धार्मिक समुदायों में व्याप्त साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को समझना आवश्यक है।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता

मुस्लिम समुदाय भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्ग है। ब्रिटिश शासनकाल में चालीस करोड़ की जनसख्या मे मुसलमानों की आवादी नौ करोड़ थी। ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों का समर्थन हासिल करने की नीति के तहत उन्हें विशेप सुविधाएँ देने के साथ-साथ उनके मन में वहुसंख्यकों से भय की भावना को उभारकर उनके अन्दर पृथकतावादी मनोवृत्ति को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1906 में मुसलमानो के प्रथम राजनैतिक दल मुस्लिम लीग की स्थापना हुई, जिसने देश के विभाजन में अहम् योगदान दिया। द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ। पाकिस्तान के निर्माण के बाद भी भारत में बड़ी संख्या में मुसलमान निवास करते हैं। स्वाधीन भारत में सभी धर्मावलम्बियों को संविधान के अनुसार समानता का अधिकार प्राप्त है, इस कारण मुस्लिम समुदाय

भी देश के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक जीवन मे सक्रिय रूप से भाग लेते रहे है तथा संसद, विधानमंडलो, मंत्रिमंडल में मुसलमानों को प्रतिनिधित्व मिलता रहा है तथा महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक, न्यायिक व राजनयिक पदों पर उनकी नियुक्ति होती रही है। संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए किए गए विशेष उपबन्धों के तहत भी यह वर्ग लाभान्वित होता रहा है। इसके उपरान्त भी मुस्लिम समुदाय को बहुसंख्यकों द्वारा अपने प्रति भेदभाव तथा अपनी विशिष्ट पहचान को खो देने का भय सदैव सताता रहता है। मुस्लिम समुदाय मे असन्तोष की भावना विद्यमान है। मुख्य रूप से जिन कारणो से यह असन्तोष है, वह इस प्रकार है –

(1) विधायिका में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व – मुस्लिम समुदाय विधायिका में अपने प्रतिनिधित्व को पर्याप्त नही मानता है। मुसलमान देश की जनसंख्या का 11.67% है, परन्तु लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व कभी भी 10% तक भी नहीं रहा है। लोकसभा की 545 सीटों में मुसलमानों को सर्वाधिक 49 स्थान 1980 के आम चुनावों में मिले थे। 1984 में 45 स्थान प्राप्त किए। अन्य सभी निर्वाचनों में मुसलमानों का प्रतिशत 5 के आसपास रहा है। मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों का मानना है कि राज्य की कानून बनाने वाली संस्थाओं मे मुसलमानों के हितों का संरक्षण सिर्फ मुसलमान ही कर सकते हैं। इस कारण वे अपने लिए उसी प्रकार के पृथक् निर्वाचन मंडल की माँग करते हैं, जैसी सुविधा उन्हें स्वतंत्रता के पूर्व प्राप्त थी तथा जो अन्ततः भारत के विभाजन का कारण बनी।

(2) सरकारी सेवाओं में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व – सरकारी सेवाओं में चयन को लेकर भी मुस्लिम समुदाय को शिकायतें रही हैं। प्रो० एस० एम सईद के अनुसार "मुसलमानों की एक शिकायत यह रही है कि विभिन्न लोकसेवाओं में चयन के समय उनके साथ धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता है। इसलिए मुसलमानों को अखिल भारतीय सेवाओं में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता है।"[19]

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार 1948 से 1982 तक अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा

(आई०ए०एस०) में 3062 व्यक्तियों की प्रत्यक्ष भर्ती हुई जिनमें 1 7 प्रतिशत (52) मुसलमान थे। इसी प्रकार अखिल भारतीय पुलिस सेवा (आई०पी०एस०) में प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त होने वालों की संख्या 1615 थी, जिनमें 2 5 प्रतिशत (41) मुसलमान थे।

1 जनवरी, 1984 को देश मे 4195 आई०ए०एस० थे, जिनमें 90 मुसलमान थे। लगभग यही स्थिति पुलिस सेवा में भी थी। उपलब्ध ऑकड़ो के अनुसार 1 जनवरी, 1983 को कुल 2222 आई०पी०एस० थे, जिनमें केवल 67 मुसलमान थे। इस प्रकार उपर्युक्त सेवाओ में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व क्रमशः 2 14 तथा 3 प्रतिशत था।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ वर्षो में अखिल भारतीय सेवाओं में कोई भी मुसलमान न चुना जा सका। उदाहरण के लिए 1962-64 तथा 1968-69 में आई०ए०एस० में तथा 1975-76 तथा 1982 में आई०पी०एस० में एक भी मुसलमान नियुक्ति न पा सका।[20]

उपर्युक्त आधारों पर मुस्लिम समुदाय द्वारा सार्वजनिक सेवाओं, पुलिस बल तथा सशस्त्र सेनाओं में मुसलमानों को आरक्षण प्रदान करने की मॉग की जाती है।

मुस्लिम समुदाय की इस शिकायत तथा इस मॉग को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। संविधान का अनुच्छेद 16 लोक नियोजन मे धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का प्रतिषेध करता है। अन्य सभी धर्मावलम्बियों की ही भाँति मुसलमान प्रतियोगियो को भी इन सेवाओं के लिए होने वाली प्रतियोगात्मक परीक्षाओं मे भाग लेने का समान रूप मे अधिकार होता है तथा चयन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में धार्मिक आधार पर किसी के साथ कोई विभेद नही किया जाता है। यदि मुस्लिम प्रतियोगी इन परीक्षाओं में अधिक संख्या में सफल नहीं हो पाते तो यह मुस्लिम समुदाय मे व्याप्त शैक्षिक पिछडेपन का परिणाम है, न कि किसी सरकारी भेदभाव का। साथ ही यदि लोक नियोजन में मुसलमानों को आरक्षण दिया जाएगा तो यह अन्य धर्मावलम्बियों के साथ धार्मिक आधार पर भेदभाव होगा तथा संविधान के

अनुच्छेद 16 का उल्लंघन होगा।

(3) वैयक्तिक विधि – विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, विरासत आदि से संबंधित अपनी 'वैयक्तिक विधि' को लेकर अधिकॉश मुसलमान अत्यधिक संवेदनशील हैं। इसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विचार पर उन्हे आपत्ति होती है। वस्तुत: अपनी चिरपुरातन प्रथाओं को बनाए रखने में कट्टरपन्थी मुसलमान बड़ा रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। जब कभी भी समान नागरिक संहिता बनाए जाने की बात उठती है, इस वर्ग द्वारा उसका घोर विरोध किया जाता है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 44 में स्पष्ट रूप से इसका निर्देश किया गया है तथा सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने कुछ निर्णयों के दौरान सरकार द्वारा समान नागरिक संहिता की दिशा में कोई भी कदम न उठाने पर खेद व्यक्त किया है। न्यायालय के ऐसे निर्णयों पर भी कट्टर मुस्लिमों द्वारा रोष प्रकट किया गया है। प्रबुद्ध मुस्लिम नेताओं व बुद्धिजीवियों द्वारा भी जब कभी भी मुस्लिम वैयक्तिक विधि में सुधार करने के मुद्दे को उठाया गया है तो मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों ने इस पर सदैव जबर्दस्त विरोध का रुख अपनाया है।

शाहबानों मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद इस मसले पर देश भर में व्यापक चर्चा हुई थी तथा प्रगतिशील व प्रबुद्ध मुसलमानों ने भी मुस्लिम वैयक्तिक विधि के आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर सहमति जताई थी। यह आशा थी कि तत्कालीन राजीव गॉधी सरकार इस विधि में समुचित संशोधन करेगी परन्तु कट्टरपन्थी मुसलमानों के दबाव के कारण सरकार ने ऐसा न करके संसद् द्वारा नवीन विधि बनाकर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निष्प्रभावी कर दिया।

(4) अलीगढ़ विश्वविद्यालय – स्वतंत्रता के बाद एक अन्य मुद्दा, जिसने मुस्लिम समुदाय को विशेष रूप से प्रभावित किया है, वह है – अलीगढ़ विश्वविद्यालय का मामला। मई, 1965 में भारत सरकार ने अलीगढ विश्वविद्यालय के संगठन और कार्यप्रणाली में कुछ सुधार लाने के उद्देश्य से एक अध्यादेश जारी किया, जिसमें विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद् के पुनर्गठन और विश्वविद्यालय

कोर्ट के सदस्यों के नामाङ्कन की व्यवस्था की गई थी। 31 अगस्त 1970 को इस अध्यादेश को एक विधेयक के रूप मे राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया। मुसलमानो के बहुमत के विचार से विश्वविद्यालय के संगठन और प्रशासन में इन परिवर्तनों का अर्थ उस विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक स्वरूप को समाप्त करना था। इस विधेयक का विभिन्न मुस्लिम संगठनो की ओर से कठोर विरोध किया गया तथा यह माँग की गई कि विश्वविद्यालय के नाम से 'मुस्लिम' शब्द को अलग न किया जाए तथा विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी और कोर्ट का गठन इस प्रकार से न किया जाए कि विश्वविद्यालय पर सरकार का प्रभुत्व स्थापित हो जाए। सर्वोच्च न्यायालय में भी इसके विरुद्ध मुकदमा किया गया, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने 20 अक्टूबर, 1967 को दिए गए निर्णय में उस अध्यादेश को संवैधानिक घोषित किया। मुस्लिम समुदाय में इस निर्णय को लेकर काफी असन्तोष रहा।

(5) उर्दू भाषा – उर्दू के प्रति सरकरों का कथित उदासीन रवैया भी मुस्लिम समुदाय में असन्तोष का एक प्रमुख कारण रहा है। वस्तुतः यह उर्दू भाषा का दुर्भाग्य है कि इसके प्रोन्नयन का वास्तविक प्रयत्न करने के स्थान पर राजनैतिक दलों ने इसका प्रयोग राजनैतिक हथियार के रूप में किया है। जहाँ कुछ तथाकथित धर्मनिरपेक्ष दल इसकी उन्नति के वायदे करके मुस्लिम वोट हथियाने का प्रयास करते है वही हिन्दूवादी संगठन इसे मुसलमानो की भाषा बताकर इसे एक साम्प्रदायिक प्रश्न बना देते है। मुस्लिम कट्टरपन्थियों का भी इसे साम्प्रदायिक रूप प्रदान करने में कम योगदान नहीं है। इसका उदाहरण पश्चिम बङ्गाल में देखा जा सकता है, जहाँ ऐसे मुस्लिम जिनकी मातृभाषा बांग्ला है, जनगणना के समय उर्दू को अपनी मातृभाषा बताते हैं। मुसलमानों की ओर से उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाए जाने की मांग की जाती रही है। 1989 में नौंवी लोकसभा के निर्वाचन के पूर्व उत्तर प्रदेश में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाए जाने से साम्प्रदायिक विद्वेष फैला तथा बदायूँ जिले में हुई साम्प्रदायिक हिंसा में दो दर्जन जानें गई।

(6) पाठ्य-पुस्तकों में हिन्दू पौराणिक कथाएँ – प्रो०एस०एम० सईद के अनुसार "मुसलमानों

की ओर से एक और शिकायत, शिक्षा पाठ्यक्रमों मे निर्धारित पुस्तकों के संवध मे रही है। शिक्षा संस्थाओं मे विभिन्न स्तरो पर पढ़ाई जाने वाली कुछ पुस्तकों मे अल्पसख्यक वर्गो, विशेषकर मुसलमानों के धार्मिक विश्वासों के विरूद्ध सामग्री पाई गई और कई बार ऐसी पुस्तको के विरुद्ध आन्दोलन भी हुए। 1966 में राज्यसभा ने इस प्रकार की शिकायतो की जांच करने के लिए एक समिति का गठन किया, जिसने शिक्षा संस्थाओं मे निर्धारित पुस्तकों का अध्ययन करने के पश्चात् यह प्रतिवेदन किया कि वहुत-सी ऐसी पुस्तकें है, जिनका अधिकांश भाग हिन्दू पुराणकथाओं पर आधारित है और उनमें हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की उपलब्धियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है, जबकि अन्य धर्मो के धार्मिक महापुरुषों की उपेक्षा की गई है। समिति के अनुसार कुछ पुस्तकों मे ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार मिलता है कि जिससे देश के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच एकता उत्पन्न होने के बजाए और ज्यादा भेदभाव बढता है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के लिए अत्यधिक हानिकारक है।"[21]

वस्तुतः इस मसले पर मुस्लिम रूढिवादियों द्वारा सङ्कीर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है। हिन्दू पौराणिक कथाएँ इस देश की सांस्कृतिक विरासत है, उनका पाठ्य-पुस्तकों में पाया जाना एक सहज-स्वाभाविक बात है, न कि धर्म विशेष के प्रति पक्षपात। जहाँ तक ऐतिहासिक घटनाओं का प्रश्न है, ऐतिहासिक तथ्यों को किसी सम्प्रदाय के सुविधानुसार परिवर्तित नही किया जा सकता। इस मसले पर अधिक परिपक्वता से विचार करने की आवश्यकता है।

(7) अयोध्या मसला – अयोध्या के रामजन्मभूमि-वावरी मस्जिद विवाद ने मुस्लिम समुदाय को अत्यधिक उद्वेलित किया है। मुस्लिम कट्टरपन्थियों, विभिन्न राजनैतिक दलों तथा प्रेस द्वारा इस विवाद को अत्यधिक महत्त्व दिए जाने के कारण आज एक आम मुसलमान की धार्मिक भावनाएँ अयोध्या की उस नामालूम मस्जिद के साथ गहराई तक जुड़ गई हैं। यही कारण है कि जव 6 दिसम्बर, 1992 को विवादास्पद ढाँचे को ध्वस्त कर दिया गया तो मुस्लिम समुदाय में गहरा क्षोभ व्याप्त हो गया। इसे

बहुसंख्यकों द्वारा मुस्लिम अल्पसंख्यको के धार्मिक प्रतीको पर हमले का रूप दे दिया गया, जिससे मुसलमानों में अपने धर्मस्थलों के प्रति भय की भावना व्याप्त हो गई। इस भय ने देश के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक हिसा का रूप धारण कर लिया।

(8) साम्प्रदायिक दंगे – मुसलमानो के एक वर्ग द्वारा यह शिकायत भी की जाती है कि साम्प्रदायिक दंगों के पीछे शासन का पक्षपातपूर्ण रवैया और राज्य सरकारो का हाथ रहता है तथा हिन्दू बहुसंख्यक मुसलमानो को दवाए रखना चाहता है। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी वर्ग का शान्तिप्रिय व्यक्ति कभी भी दंगो में शामिल नहीं होता। दंगों के पीछे हमेशा उग्रवादी, असामाजिक तथा अपराधी तत्त्वों का हाथ होता है तथा यह तत्त्व हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ही वर्गो मे पाए जाते हैं। मार्च, 2002 में गुजरात में हुये दंगों मे न सिर्फ मुसलमानों बल्कि विपक्षी राजनैतिक दलों तथा मीडिया ने राज्य सरकार को इन दंगों के लिए जिम्मेदार ठहराया। यह तो स्वीकार किया जा सकता है कि राज्य सरकार इन दंगों से निपटने मे पर्याप्त कुशलता का परिचय न दे सकी, परन्तु इन दंगो को राज्य द्वारा प्रायोजित कहना उचित नही है। यह दंगे गोधरा में घटी हृदय-विदारक घटना की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुए थे, जिसमें 56 हिन्दुओं को सोते समय जीवित ही जला दिया गया था। इंडिया टुडे — आज तक — ओ० आर० जी० — मार्ग द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार गुजरात के 39% मुसलमानों का मत था कि ये दंगे गोधरा घटना का परिणाम थे, जबकि 32% इसे राज्य द्वारा प्रायोजित मानते थे, 6% ने इसके लिए मुस्लिम अतिवादियों को तथा 7% ने हिन्दू अतिवादियों को व 11% ने दोनों पक्षों के उपद्रवी तत्त्वो को जिम्मेदार ठहराया।[22] इन दंगो के उपरान्त भी 56% मुसलमान गुजरात मे रहना सुरक्षित महसूस करते थे।[23] 21% लोगों का मत था कि सरकार ने दंगो मे निपटने में पक्षपात किया जबकि 61% का मानना था कि इनसे निष्पक्ष व प्रभावी ढंग से निपटा गया तथा 15% के अनुसार सरकार ने अयोग्यता का परिचय दिया।[24]

मुसलमानों द्वारा पुलिस बलों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे दंगों के समय हिन्दुओं का

साथ देते है। 1990 के अन्त मे उत्तर प्रदेश मे हुए दंगों के दौरान मुसलमानों ने उत्तर प्रदेश के प्रान्तीय सशस्त्र बल पी० ए० मी० पर आरोप लगाया कि सभी जगह पी० ए० सी० के जवानों ने हिन्दुओं के घरों की छतों पर चढकर ही निशाना साधा। इस पर एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी का कहना था कि जब मुसलमान हमें अपने इलाको में आने ही नही देगे तो हम कहॉ से निशाना साधेंगे।[25] इस प्रकार जहॉ एक ओर मुसलमानों द्वारा पुलिस बलों पर पक्षपात का आरोप लगाया जाता है, वही दूसरी ओर पुलिस बल मुसलमानों पर असहयोग करने का आरोप लगाते हैं।

मुस्लिम समुदाय के इस आरोप को पूरी तरह सत्य नही माना जा सकता। कुछ पक्षपात के मामले हो सकते है, पर यह अपवाद स्वरूप ही होते हैं, जहॉ कुछ पुलिसकर्मी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अपने समुदाय के प्रति पक्षपात कर बैठते हैं। दूसरी ओर मुस्लिम समुदाय में बहुसंख्यकों के प्रति व्याप्त अविश्वास की भावना उनको पुलिस के साथ सहयोग करने से रोकती है। इसी कारण कही-कहीं मुसलमान भी अनावश्यक रूप मे पुलिस के प्रति हिंसक हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मुसलमानों व पुलिस में सीधा टकराव हो जाता है तथा मुसलमानों की इस भावना को वल मिलता है कि पुलिस उनकी विरोधी है तथा हिन्दुओं का साथ देती है।

मुस्लिम संगठन

मुसलमानों को सक्रिय राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं, इस संबंध में दो विरोधी दृष्टिकोणों का विकास हुआ। कुछ मुस्लिम नेताओं ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया कि मुसलमानों को सक्रिय राजनीति में भाग नही लेना चाहिए। इसके वजाय उन्हे अपने धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा मुस्लिम सम्प्रदाय के आर्थिक और शैक्षणिक विकास के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मुस्लिम नेताओं के दूसरे वर्ग का यह विचार था कि विना सक्रिय राजनीति में भाग लिए मुसलमान अपने हितों को सुरक्षित नही रख सकते। इसके फलस्वरूप दो प्रकार के मुस्लिम संगठनों का विकास हुआ – (1) मुस्लिम

राजनैतिक दल. (2) धार्मिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक सुधार के लिए स्थापित संगठन, जो कि गैर-राजनैतिक होने का दावा करते है।

स्वतंत्रता के वाद मुस्लिम लीग के अतिरिक्त मुसलमानो का अन्य कोई राजनैतिक दल राष्ट्रीय स्तर पर नही बन सका तथा मुस्लिम लीग का अस्तित्व भी केवल दक्षिण भारत तक सिमट कर रह गया। राजनैतिक दलों में मुस्लिम लीग के अतिरिक्त मुस्लिम मजलिस का नाम भी उल्लेखनीय है।

धार्मिक और सुधारवादी मुस्लिम संगठनों में 'जमीअतुल उलमा' राष्ट्रवादी मुसलमानो का संगठन है। यह धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता पर विश्वास रखता है और देश के बहुसंख्यक वर्ग के साथ मिलकर रहने तथा पारस्परिक सहयोग करने का समर्थक है।[26]

मुस्लिम संगठनों में जमाते इस्लामी का नाम सबसे ज्यादा महत्त्व रखता है। इसे मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों की 'विचारधारा पर आधारित पार्टी' समझा जा सकता है. जिसको यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि मुसलमान कुरान और शरीयत के अनुसार अपने राज्य की स्थापना करके राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सकते हैं और इस प्रकार वे धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक सरकार की व्यर्थता प्रदर्शित कर सकते है। किसी गैर इस्लामी सरकार के साथ सहयोग 'हराम' या 'कुफ्र' है।[27]

मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों मे रूढ़िवादी तत्त्व. राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ एक शक्तिशाली मामला तैयार करते हैं कि यह सव इस्लाम कि दृष्टि से हेय है। इसका एकमात्र विकल्प है कुराने-पाक के अनुसार दैवी मार्गदर्शन। यह उदारवाद. समाजवाद, साम्यवाद और लोकतंत्र का विकल्प प्रदान करता है। जमाते-इस्लामी को हिन्दुओं या गैर-इस्लामी तत्त्वों से किसी प्रकार का सहयोग करने में भी आपत्ति है।

अन्य मुस्लिम संगठनों में तब्लीगी जमात, तामीरे मिल्लत, मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन. बावरी मस्जिद एक्शन कमेटी आदि हैं। यह सभी गैर-राजनैतिक होने का दावा करते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से

मुसलमानो के पक्ष मे राजनैतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा दबाव गुट के रूप में कार्य करते हैं। तब्लीगी जमात इस बात का समर्थन करती है कि इस्लाम एक पूर्ण व्यावहारिक जीवन शैली है और मुसलमानो को अपने ऊपर यह जिम्मेदारी लेनी चाहिए कि वे मानवता के कल्याण के लिए इस्लामी प्रथाओं को लागू करे। तामीरे मिल्लत और मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन दो ऐसे मुस्लिम संगठन हैं, जिनकी स्थापना और नेतृत्व मे हैदराबाद के प्रमुख मुसलमानों का योगदान है। इनका बल इस बात पर है कि इस्लामी ढाँचे के भीतर परिवर्तन की आवश्यकता है और मुस्लिम समाज के आधुनिक आधारों पर पुनर्गठन और पुनर्निमाण किए जाने की आवश्यकता है। ऐसा करते हुए इस्लाम के बुनियादी सिद्धान्तों को किसी प्रकार की क्षति नही पहुँचनी चाहिए। इससे यह पता चलता है कि जहॉ तक समुदाय के आधुनिकीकरण का सवाल है, विभिन्न धार्मिक सांस्कृतिक संगठनों में आपस में तीव्र मतभेद पाए जाते हैं। बहरहाल, एक बात उल्लेखनीय है कि ऐसे सभी संगठन इस्लाम की मौलिकता से प्रेरणा ग्रहण करते है और इस बात की आवश्यकता पर बल देते है कि मुस्लिम समुदाय के पुनर्गठन की इसलिए आवश्यकता है कि वह अन्ततः प्रभुत्व की स्थिति में आ जाए।

मुस्लिम मजलिसे मुशावरत[28] ने यद्यपि अपने उद्देश्यों में धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रीय व्यवस्था के सिद्धान्तों को सम्मिलित किया है, तथापि इसका बुनियादी तौर पर साम्प्रदायिक स्वरूप इस तत्त्व में पाया जा सकता है कि यह बार-बार यह आपत्ति पेश करती है कि "हिन्दू समुदाय ने अपना ऐसा नेतृत्व स्थापित कर लिया है, जिससे अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गो में डर, विखण्डन और आर्थिक विघटन व पराश्रितता की भावना पैदा होती है।" [29]

बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमेटी रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे पर सदैव मुस्लिम समुदाय को उद्वेलित और उत्तेजित करने का कार्य करती रही है।

विभिन्न मुस्लिम संगठनों का देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मुद्दों पर विभिन्न दृष्टिकोणों

का अध्ययन करने के वाद मुस्लिम साम्प्रदायिकता के कुछ सामान्य सिद्धान्तों का पता चलता है –

मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादी पृथकता की भावना मे प्रभावित है। वे एकीकरण या आत्मसात् किए जाने मे विश्वास नही रखते और वे अपनी अलग और विशिष्ट सत्ता वनाए रखना चाहते हैं। उनका तर्क है कि हिन्दू और मुस्लिम दो समानान्तर समाज हैं और इसलिए इन दो में कोई संश्लेषण नहीं हो सकता। यही कारण है कि इन लोगों ने अबुल कलाम आजाद की इस वुद्धिमत्तापूर्ण सलाह को नहीं माना कि स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों को राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल हो जाना चाहिए ताकि उनके वैध हितों की रक्षा हो सके।

अपनी विशिष्ट पहचान नष्ट होने के भय के कारण वे अपनी पुरातन प्रथाओं के प्रति बडे संवेदनशील होते हैं। यही कारण है कि वे अपनी 'वैयक्तिक विधि' में किसी भी प्रकार के परिवर्तन या सुधार के विचार को वर्दाश्त नहीं कर पाते।

हिन्दू वहुसंख्यकों के प्रति अविश्वास की भावना उन्हे साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन मण्डलों की मॉग के लिए प्रेरित करती है। व्यवस्थापिका मे मुसलमानों के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व को देखते हुए उन्हें बहुसंख्यकों से अपने समुदाय के प्रति न्याय की आशा नही रहती।

मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादी मुस्लिम देशो की ओर प्रवल धार्मिक भावना से देखते हैं। मुस्लिम जमत मे उनकी विशेष रूचि है। कुवैत-इराक युद्ध हो या अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान में तालिवान के विरुद्ध कार्यवाही, भारत के एक आम मुसलमान के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई देती है। ये सभी मुस्लिम देशों, विशेषकर पाकिस्तान, से मैत्रीपूर्ण संवंध वनाए रखने पर जोर देते हैं।

इस प्रकार, मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वुनियादी आधार उनके हिन्दुओं के विरुद्ध एक शक्ति के निर्माण की दिशा में एक दृढ़ संकल्प में ढूँढ़ा जा सकता है। मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों द्वारा धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और आधुनिकीकरण के किसी विचार की प्रशंसा नहीं की जाती।

इसके मूल में भय की भावना है जो उनके मन में असुरक्षा का भाव पैदा करती है तथा वे एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में आस्था खो वैठते हैं। यह असुरक्षा की भावना ही है कि जब हाल ही मे सिमी (Students Lslamic Movement of India) जैसे पाकिस्तान परस्त आतंकवादी गतिविधियों मे संलग्न संगठन पर प्रतिबन्ध लगाया गया तो इसे मुसलमानों के विरुद्ध कार्यवाही का रूप दे दिया गया। इसी प्रकार 'पोटा' जैसे आतंकवाद निरोधक कानून के प्रति यह दुष्प्रचार किया गया कि इसका दुरुपयोग मुसलमानों को प्रताड़ित करने के लिए किया जाएगा।

विभिन्न मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठनों की माँगों तथा क्रियाकलापों से यह पता चलता है कि उनका मुख्य वल इसी बात पर हैं कि मुस्लिम समुदाय को इस प्रकार सक्रिय कर दिया जाए कि वह एक दबावकारी गुट की भूमिका निभाए, जिसके फलस्वरूप राजनीतिक व अन्य विशेषाधिकार प्राप्त किए जा सकें, जिससे भारत में मुसलमानों को एक पृथक् अस्तित्व प्राप्त हो सके।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता का एक भयावह पहलू यह है कि पाकिस्तान उनकी साम्प्रदायिकतावादी मनोवृत्ति को उभारकर उन्हे देशविरोधी आतङ्कवादी गतिवधियों में संलग्न करने का प्रयास करता है।

हिन्दू साम्प्रदायिकता

हिन्दू समुदाय भारत का वहुसंख्यक वर्ग है। हिन्दू समुदाय के एक वडे वर्ग ने स्वतंत्रता के वाद से ही मुसलमानों की भांति कट्टरता का परिचय न दिया तथा वह नवीन धारणाएं अपनाने को उत्सुक और तत्पर रहा जो कि आधुनिक सभ्य समाज के अनुकूल हों। यही कारण रहा कि उसने विवाहादि से संवंधित अपनी शास्त्रीय विधि में सुधारों को 'हिन्दू कोड विल' के रूप में स्वीकार कर लिया। यद्यपि हिन्दुओं के एक वर्ग ने इसका घोर विरोध भी किया या, तथापि एक आम हिन्दू ने इसे सहज भाव से स्वीकार कर लिया। अन्य धर्मावलम्वियों के प्रति विरोध की भावना भी हिन्दू समाज के एक छोटे मे हिस्से में ही पाई जाती थी, परन्तु पिछले 10-12 वर्षों से यह भावना एक बड़े वर्ग तक फैलती जा रही है।

इसके पीछे स्वतंत्रता के बाद से ही विभिन्न सरकारों व राजनैतिक दलों द्वारा अपनाई गई अल्पसंख्यक, विशेषकर मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति है, जिससे हिन्दू समाज में असन्तोष बढ़ता गया है। रामजन्मभूमि मुद्दे के रूप मे इस असन्तोष को एक आधार मिल गया तथा यह अधिक मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ। मुख्य रूप से जिन बातों को लेकर हिन्दुओं में असन्तोष व्याप्त है वे इस प्रकार है –

(1) संविधान में अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार – भारतीय संविधान मे अल्पसख्यको को संस्कृति तथा शिक्षा-संबंधी विशेषाधिकार प्रदान किए गए है। हिन्दुओं के एक वर्ग का मानना है कि एक धर्मनिरपेक्ष देश में धार्मिक आधार पर इस प्रकार का भेदभाव किया जाना उचित नहीं है। उनका मत है कि अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार प्रदान करके बहुसंख्यकों को इस देश में दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया गया है।

(2) अल्पसंख्यक तुष्टीकरण – अधिसंख्य हिन्दुओं का मानना है कि सरकारें व राजनैतिक दल अल्पसंख्यकों के वोटों के लालच में उनकी अनुचित व असंवैधानिक मॉगों को मानने में भी कोई गुरेज नही करते। अल्पसंख्यक आयोग के गठन या उसे संवैधानिक दर्जा दिए जाने की मॉग हो या अलीगढ विश्वविद्यालय के मुस्लिम स्वरूप को बनाए रखने का मामला, मुस्लिम वैयक्तिक विधि की बात हो या धर्मान्तरण का मुद्दा लगभग सभी राजनैतिक दल व सरकारें औचित्य-अनौचित्य का विचार किए बिना एक-दूसरे से स्पर्धा करते हुए अल्पसख्यकों का समर्थन करने लगते है। जब कॉग्रेस, जनता दल आदि ने प्रशासनिक, न्यायिक व रक्षा सेवाओं में अल्पसंख्यकों को आरक्षण देने का वायदा अपने चुनाव घोषणापत्रों में किया तो हिन्दू समुदाय में रोष व्याप्त हो गया। जब बौद्ध धर्म में संपरिवर्तित हिन्दू दलितों को अनुसूचित जातियों को मिलने वाले आरक्षण का लाभ दिया गया तो हिन्दुओं को सरकार के इस कदम को हिन्दू धर्म के विरुद्ध धर्मान्तरण को बढ़ावा देने वाला कहकर इसकी आलोचना की।

(3) समान नागरिक संहिता पर सरकारों की उदासीनता – संविधान के स्पष्ट निर्देश व सर्वोच्च

न्यायालय के आग्रह के बावजूद किसी भी सरकार द्वारा अब तक समान नागरिक संहिता बनाने की दिशा में कोई भी कदम न उठाने के कारण हिन्दू समाज में क्षोभ है। कई ऐसे मामले प्रकाश में आए हैं जहाँ हिन्दू व्यक्तियों ने दूसरा विवाह करने के लिए इस्लाम स्वीकार कर लिया। हिन्दुओं का कहना है कि सरकार ने उन्हें तो विवाह, उत्तराधिकार आदि की शास्त्रीय विधि छोड़ने के लिए तैयार कर लिया पर मुसलमानों को इसके लिए राजी न कर सकी। समान नागरिक संहिता के अभाव में हिन्दू धर्म के विरुद्ध धर्मान्तरण को बढ़ावा मिलता है।

(4) धर्मान्तरण संबंधी कानून का अभाव – हिन्दुओं का आरोप है कि ईसाई मिशनरी भारत में आदिवासी क्षेत्रों के लोगो को बहला-फुसलाकर तथा धन का प्रलोभन देकर ईसाई बना लेते है। केन्द्र सरकार इस बात को जानते हुए भी इस प्रकार के अवैध धर्मान्तरण को रोकने के लिए कोई कानून नहीं बनाती। उल्लेखनीय है कि उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश की सरकारों ने इसे रोकने के लिए कानून बनाए थे, जिसका ईसाई समुदाय ने न सिर्फ विरोध किया था बल्कि उसे सर्वोच्च न्यायालय मे चुनौती भी दी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने इन कानूनों को संवैधानिक घोषित कर दिया था तथापि केन्द्र सरकार ईसाइयों के विरोध के भय मे इस संबंध मे कोई भी कानून बनाने का साहस न कर सकी। हिन्दुओ का कहना है कि धर्मान्तरण चाहे ईसाइयों द्वारा कराया जाए अथवा मुसलमानो या बौद्धों द्वारा, इसका शिकार हमेशा हिन्दू ही होते है।

(5) साम्प्रदायिक दंगे – हिन्दू समुदाय का मानना है कि दंगो की शुरूआत प्रायः मुस्लिम समुदाय की ओर से होती है तथा जब हिन्दू उनका मुकाबला करते हैं, तथा जब मुसलमानो को क्षति पहुँचती है, तो हिन्दुओं को साम्प्रदायिक करार दिया जाता है। दंगों में हिन्दुओं को हुई जान-माल की हानि की फिक्र न तो सरकार को होती है और न ही किसी राजनैतिक दल या मीडिया को, परन्तु जिस भी स्थान पर मुसलमानों को जानमाल का अधिक नुकसान होता है, वहाँ मंत्रीगण व अन्य प्रमुख नेतागण

सभी दौरा करने पहुँच जाते है। मीडिया भी मुसलमानों को हुए नुकसान को ही अधिक प्रभुखता देता है तथा हिन्दुओं को जो हानि होती है, उसकी उपेक्षा की जाती है। मुसलमानों को हुई क्षति की भरपाई के लिए राज्य व केन्द्र सरकारें तुरन्त मुआवजों की घोषणा कर देती है, पर हिन्दुओ की सुध कोई नही लेता।

(6) अयोध्या-विवाद – अयोध्या-विवाद ने हिन्दुओं के असन्तोष को खुलकर अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिन्दू श्रीराम को अपना आराध्यदेव मानते हैं तथा उनका यह विश्वास है कि जिस स्थान पर बाबरी मस्जिद है, वही श्रीराम का जन्म हुआ था तथा वहाँ एक राम मंदिर था, जिसे मुगल आक्रान्ता बाबर ने गिरवा दिया था तथा वहाँ मस्जिद वनवा दी थी। हिन्दू चाहते हैं कि उसी स्थान पर श्रीराममंदिर पुनः प्रतिष्ठापित हो। उनका तर्क है कि जन्मस्थान में परिवर्तन नहीं किया जा सकता जबकि किसी पूजास्थल (मस्जिद) का स्थान परिवर्तन किया जा सकता है। हिन्दू संगठनों का कहना था कि मस्जिद सम्मानपूर्वक अन्यत्र स्थापित करके वहॉ राममंदिर का निर्माण हो सकता है। मुस्लिम समुदाय इसके लिए तैयार न था। 6 दिसम्बर, 1992 को जब मस्जिद ढहा दी गई तो हिन्दुओं ने इसके लिए मुस्लिम हठधर्मिता को जिम्मेदार माना। सभी प्रमुख राजनैतिक दल (भाजपा को छोड़कर) भी मुसलमानो का समर्थन कर रहे थे, जिससे हिन्दुओं का आक्रोश बढ़ रहा था व हिन्दूवादी संगठन इसका लाभ उठाकर उन्हें अपने पक्ष में कर रहे थे। परन्तु फिर भी इंडिया टुडे-मार्ग के जनवरी, 1993 में कराए एक सर्वेक्षण में 53% हिन्दुओं ने मस्जिद-ध्वस को उचित नहीं माना। यद्यपि अगस्त, 1993 के सर्वेक्षण में 51% हिन्दू उसी स्थान पर मंदिर-निर्माण के पक्षधर थे। यह भावना अभी हिन्दुओं में विद्यमान है तथा जनवरी, 2002 के सर्वेक्षण में 48% हिन्दू तुरन्त मंदिर निर्माण के पक्ष में थे।[30] हिन्दुओं को शिकायत है कि इस मामले में मुसलमानों ने घोर अनुदारता का परिचय दिया है। यदि वे चाहते तो शान्तिपूर्वक मस्जिद को स्थानान्तरित करके इस विवाद का हल कर सकते थे।

हिन्दू संगठन

हिन्दू साम्प्रदायिकता की पहली मूर्त्त अवस्था हिन्दू महासभा की स्थापना के रूप मे 1907 में देखने में आई जो मुस्लिम लीग का मुकाबला करने के लिए अस्तित्व मे आई। हिन्दू महासभा ने 'शुद्धि' आन्दोलन चलाने के लिए आर्य समाज की प्रशंसा की, जिसके अन्तर्गत वे लोग, जो पहले हिन्दू थे तथा बाद में धर्मान्तरण कर चुके थे, उन्हें वापस हिन्दू धर्म मे लेने की व्यवस्था थी। हिन्दू महासभा ने हिन्दू सम्प्रदाय के एकीकरण, सम्मेलन और सुदृढ़ीकरण के लिए एक आन्दोलन चलाया, जिसे 'संगठन आन्दोलन' का नाम दिया। हिन्दू महासभा के वीर दामोदर सावरकर ने हिन्दू साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति को और तीक्ष्ण किया तथा 'हिन्दू' की परिभाषा करते हुए उन्होंने उस व्यक्ति को 'हिन्दू' कहा, "जो भारत को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि समझता है।"[31] सावरकर ने मुसलमानो की दारुल हर्ब और दारुल इस्लाम की संकल्पनाओं के कारण उनके मानसिक परिवर्तन की सम्भावना को पूर्णतया नकार दिया। इस्लाम के अनुसार, हर वह स्थान दारुल हर्व है, जहाँ इस्लाम सत्ता में नहीं है। इसलिए सावरकर ने कहा, "परिणामस्वरूप, प्रादेशिक देशभक्ति की संकल्पना से मुसलमान अनभिज्ञ है। मुस्लिम इलाके के अतिरिक्त वह हर जगह को कुफ्र मानते है। अफगान देशभक्त हो सकते है क्योंकि अफगानिस्तान आज एक मुस्लिम इलाका है।"[32] सावरकर ने यह स्वीकार करके 'हिन्दू राष्ट्र' को एक नई संकल्पना प्रदान की कि हिन्दू राष्ट्र का विचार उन लोगों की ओर निर्देश करता है जो समान देश, रक्त संबंध, इतिहास, धर्म तथा भाषा से बँधे हुए है।

हिन्दू महासभा ने देश के विभाजन की चर्चा के बारे में गहन क्षोभ और खेद व्यक्त किया और इसके बजाए 'अखण्ड हिन्दुस्तान' का नारा बुलन्द किया। स्वतन्त्रता के बाद इसने स्पष्ट रूप से कहा कि "यह भारत में हिन्दू राज की स्थापना करना चाहती है, जहाँ राजनीति और अर्थव्यवस्था की हिन्दू संकल्पनाओं के अनुसार शासन-प्रणाली हो।"[33] स्वतन्त्रता के बाद के राजनैतिक पटल पर यह कोई

सफलता प्राप्त न कर सकी। यहॉ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम भी उल्लेखनीय है। यद्यपि यह स्वयं एक राजनैतिक संगठन नही है, तथापि पहले जनसंघ तथा बाद मे भारतीय जनता पार्टी के माध्यम से यह देश की राजनीति मे भाग लेता रहा है। हालांकि भाजपा स्वयं को संघ का आनुषङ्गिक संगठन स्वीकार नही करती, परन्तु इसकी नीतियों पर संघ का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भाजपा के संगठन के पदाधिकारियों की नियुक्ति व नीति-निर्माण में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हमेशा दखल रहता है। चुनावों के समय संघ के स्वयंसेवक भाजपा के प्रचार अभियान मे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना 1920 के दशक में हुई थी व इसके प्रमुख डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार थे। संघ का उद्देश्य हिन्दू समुदाय को सैन्य प्रशिक्षण प्रदान करना था। इसने अपने प्रयास कठोर रूप से सिद्धान्तशील, शारीरिक रूप से सक्षम और समर्पणशील स्वयंसेवकों का विकास करने में केन्द्रित किए, जो लघु पैमाने पर हिन्दू समाज के संगठन के आदर्श का प्रतिनिधित्व करता हो। संघ भारत को एक हिन्दू राष्ट्र मानता है। उसकी हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना के अनुसार 'राष्ट्र' एक सांस्कृतिक सत्ता है, यह केवल राजनैतिक सत्ता नही है, और इस आधार पर वे भारत में इस्लाम के आने से पहले से ही हिन्दू समुदाय को एक राष्ट्र मानते आए हैं। उनका बल इस बात पर है कि अल्पसंख्यकों को उसी प्रकार आत्मसात् कर लिया जाना चाहिए जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस या संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया।

आलोचको द्वारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को एक साम्प्रदायिक संगठन माना जाता है पर संघ की ओर से इसका खंण्डन किया जाता है। नानाजी देशमुख के अनुसार "यह आरोप लगाया जा सकता है कि आर० एस० एस० हिन्दुओं को एक समुदाय का रूप प्रदान कर रहा है और उनमे साम्प्रदायिकता की भावना का संचार कर रहा है। परन्तु एकमात्र देवता, जिसकी आर० एस० एस० पूजा करता है और जिसकी पूजा करने के लिए अन्य लोगों को प्रेरित करता है, वह है मातृभूमि। यह राष्ट्र की वेदी पर पूजा करता है। इसकी सारी गतिविधियॉ देशभक्ति व राष्ट्रवाद की भावनाएँ पैदा करने के लिए हैं न कि

भाषावाद, जातीयता, प्रान्तीयता और संकीर्णता की बुराइयो को उत्पन्न करने के लिए की जाती है। यह लोगो को सङ्कीर्ण व्यक्तिगत व पारिवारिक हितो से ऊपर उठने के लिए आह्वान करता है। इन सारे प्रयासो की साम्प्रदायिकता के रूप में किस प्रकार निन्दा की जा सकती है? किसी समुदाय के प्रति द्वेष की भावना से आर०एस०एस० का प्रयोजन कलुषित नहीं है। यह चाहता है कि एक शक्तिशाली, गौरवपूर्ण, समृद्ध भारत अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उभरकर आए।"[34]

अन्य हिन्दूवादी संगठनों में विश्व हिन्दू परिषद तथा बजरंग दल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विश्व हिन्दू परिषद का उद्देश्य भारत में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना का है। अयोध्या के राममंदिर आन्दोलन का नेतृत्व इसी संगठन के हाथ में है। मथुरा मे कृष्ण जन्मभूमि को मुक्त कराना तथा वाराणसी में ज्ञानवापी मस्जिद के स्थान पर विश्वनाथ मंदिर का निर्माण तथा गोवध रोकना भी इसके कार्यक्रमों में शामिल है। मार्च 2002 में गुजरात में हुए दंगों को भडकाने में विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल का हाथ होने का आरोप लगाया जाता है। बजरंग दल विश्व हिन्दू परिषद् का आनुषङ्गिक संगठन है तथा यह विहिप के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में उसका साथ देता है।

हिन्दूवादी राजनैतिक दलों में शिवसेना का नाम प्रमुख है। इसका प्रभाव क्षेत्र महाराष्ट्र तक सीमित है। शिवसेना 'हिन्दुत्व' की कट्टर समर्थक है। इसके प्रमुख बाल ठाकरे यह कहने मे संकोच नही करते कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है, यदि मुसलमान यहाँ रहना चाहते हैं तो उन्हें हमारी शर्तो पर रहना होगा।

प्रमुख राष्ट्रीय दल भारतीय जनता पार्टी पर भी साम्प्रदायिकता का आरोप लगाया जाता है। पहले आर० एस० एस० से जुड़े होने कारण इस पर यह आरोप लगता था तथा बाद में अयोध्या के राममंदिर आन्दोलन का खुला समर्थन करने के कारण इस आरोप में और तीव्रता आ गई। भाजपा राममंदिर निर्माण को धर्म मे न जोड़कर इसे 'राष्ट्रीय अस्मिता' का प्रश्न मानती है। वह स्वयं को 'सकारात्मक पन्थ निरपेक्षता' का समर्थक कहती है, जिसके अन्तर्गत 'न्याय सभी के लिए, तुष्टीकरण

किसी का नहीं' की नीति का अनुसरण किया जाता है। यह अन्य दलो पर 'छद्म पन्थनिरपेक्षता (Pseudo Secularism)'अपनाने का आरोप लगाती है, जिसमें अल्पसंख्यकों का अनुचित तुष्टीकरण किया जाता है। भाजपा के अनुसार 'हिन्दुत्व' धर्म न होकर एक 'जीवन पद्धति' है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने एक निर्णय में कहा है।

विभिन्न हिन्दूवादी संगठनों का अध्ययन करने से उनके जिन प्रमुख सिद्धान्तो का पता चलता है, वे इस प्रकार है –

हिन्दुस्तान या भारत हिन्दुओं का देश है। हिन्दू कोई धर्म न होकर एक जीवन-पद्धति है। सांस्कृतिक संगठन होने के कारण हिन्दू एक राष्ट्र है, केवल एक राजनैतिक इकाई नही। इसकी व्युत्पत्ति वेदों के समय से चली आ रही है। हिन्दुओं के इस देश में रहने वाले अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यक लोगो में आत्मसात हो जाना चाहिए। अल्पसंख्यकों को किसी भी प्रकार का विशेपाधिकार नहीं दिया जाना चाहिए तथा उनका तुष्टीकरण वन्द होना चाहिए।

अयोध्या, मथुरा तथा काशी में मंदिर-निर्माण 'राष्ट्रीय अस्मिता' से जुड़े मुद्दे है तथा मुसलमानों को इन स्थानो पर अपना दावा छोड देना चाहिए।

हिन्दू समुदाय को समेकित, सुदृढ तथा सैन्य प्रशिक्षित होना चाहिए ताकि इसे अधीनस्थता की दुर्दशा का फिर से सामना न करना पडे। इस प्रयोजन के लिए हिन्दुओं की धार्मिक प्रथाओं का सम्वर्धन करके उन्हें सुदृढ़ किया जाना चाहिए। गो-हत्या पर प्रतिवन्ध लगाया जाना चाहिए। वल, कपट और प्रलोभन के आधार पर धर्म-परिवर्तन को समाप्त किया जाना चाहिए।

देश का विभाजन एक महान दुर्घटना थी। पुनः अखण्ड भारत के निर्माण का प्रयास किया जाना चाहिए।

अल्पसंख्यकों की वैयक्तिक विधियों को समाप्त कर सभी के लिए समान कानून का निर्माण होना

चाहिए, जो कि हिन्दुत्व के सिद्धान्तों पर आधारित हों।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि देश का वहुसंख्यक समुदाय होने के वावजूद हिन्दू भारत के छह राज्यों जम्मू-कश्मीर, पजाव. अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम व नागालैण्ड में अल्पसंख्यक है।

ईसाई साम्प्रदायिकता

भारत में जनसंख्या की दृष्टि से मुसलमानो के वाद ईसाई अल्पसंख्यक दूसरे स्थान पर आते है, परन्तु ये देश की कुल जनसंख्या का केवल 2 32% है। यद्यपि ये देश के विभिन्न भागों में बिखरे हुए हैं, लेकिन दक्षिण भारत और विशेषकर केरल में इनकी संख्या काफी है। राजनैतिक क्षेत्र मे ईसाइयों की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नही रही है। अपनी किसी राजनैनिक संस्था के निर्माण मे भी उनकी कोई रुचि नहीं रही है। उन्होंने अपनी गतिविधियॉ सामाजिक, धार्मिक व शैक्षणिक क्षेत्र में फैला रखी है। डॉ० डी० ई० स्मिथ के अनुसार "ईसाई अल्पमत के प्रति केन्द्र और राज्य दोनों ही सरकारों की नीतियाँ साधारणतया न्यायपूर्ण रही है।"[35] ईसाई मिशनरियों पर प्राय: यह आरोप लगाया जाता है कि वे छल-कपट. वल प्रयोग व प्रलोभन द्वारा हिन्दुओं को ईसाई वना रहे है। हिन्दुओं को अपने धर्म मे संपरिवर्तित होने के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया विदेशों से आता है तथा नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर आदि क्षेत्रों में इसी कारण ईसाइयों की जनसख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

जव कभी भी सरकार ने इस प्रकार के धर्मान्तरण के विरुद्ध कोई कानून वनाया या उसका प्रयास किया तव ईसाइयों की ओर से इसका जोरदार विरोध हुआ है। सत्तर के दशक में मध्य प्रदेश व उडीसा की सरकारों ने वल. कपट व लोभ के आधार पर हुए धर्मपरिवर्तन को अवैध घोपित किया तो ईसाई इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में गए तथा इसे संविधान के अनुच्छेद 25 में प्रदत्त धर्म प्रचार की स्वतंत्रता का हनन बताया. पर सर्वोच्च न्यायालय ने इन कानूनों को संवैधानिक घोपित कर दिया। इसके बाद 1978 मे लोकसभा के एक सदस्य ओम प्रकाश त्यागी (सत्तारूढ़ जनता पार्टी) ने इसी प्रकार का एक

विधेयक 'धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक' प्रस्तुत किया। इससे ईसाइयो मे गहरा क्षोभ उत्पन्न हुआ तथा ईसाइयों के सभी वर्गों ने इसका इस आधार पर विरोध किया कि इससे उनकी धार्मिक स्वतंत्रता जिसमें धर्मप्रचार की आजादी भी शामिल है, बाधित होगी। ईसाइयों के जबर्दस्त विरोध को देखते हुए यह विधेयक वापस ले लिया गया। हाल ही मे तमिलनाडु की जयललिता सरकार ने वहाँ धर्मान्तरण विरोधी कानून लागू किया है, जिसका ईसाइयों द्वारा विरोध हो रहा है।

1998-99 के दौरान कई ऐसे मामले प्रकाश में आए जिसमें ईसाइयो पर हमले किए गए। परन्तु इसमें अधिकांश मामले अपराधजनित थे, पीड़ित व्यक्तियों का ईसाई होना एक संयोग था। कुछ भी हो इन मामलों को लेकर ईसाई समुदाय में कुछ असुरक्षा की भावना आई। परन्तु इस तरह की घटनाओं में निरन्तरता न होने के कारण समय के साथ यह भय समाप्त हो गया।

सिक्ख साम्प्रदायिकता

1991 की जनगणना के अनुसार सिक्ख भारत की कुल जनसंख्या का 1.99% है। संविधान निर्माण के समय भी कई सिक्ख प्रतिनिधियों ने सिक्खों के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व तथा सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था न किए जाने पर असन्तोष व्यक्त किया था। स्वतंत्रता के बाद सिक्खों ने पंजाबी सूबे की माँग की। सिक्खों के राजनैतिक संगठन अकाली दल ने एक आन्दोलन प्रारम्भ किया और कहा कि सिक्खों की भाषा व संस्कृति के आधार पर एक पृथक् राज्य का निर्माण किया जाना चाहिए। सन् 1966 में पंजाब का विभाजन कर हरियाणा और पंजाब राज्य बनाए गए। नवगठित पंजाब में सिक्खों की जनसंख्या 61% हो गयी। सिक्ख अपने आपको अलग इकाई समझते हैं तथा इस आधार पर हिन्दू समुदाय में आत्मसात् किए जाने का विरोध करते हैं कि इसमें वे अपनी स्थिति खो बैठेंगे। खुशवन्त सिंह ने सिक्खों के हिन्दुत्व में आत्मसात किए जाने की आशङ्का को अभिव्यक्ति प्रदान की है और चेतावनी देते हुए अपने विचार व्यक्त किए कि "यदि यह प्रक्रिया अपनी वर्तमान गति से चलती रही तो इतिहास के

थोडे से समय मे (अधिक से अधिक पचास वर्ष में) हम वह आश्चर्यजनक परिघटना देख सकते हैं कि एक धार्मिक समुदाय, जिसने राष्ट्रत्व का रूप ग्रहण कर लिया था, हिन्दुत्व के रेगिस्तान में विलुप्त हो गया।''[36] यह पृथकता की भावना ही थी कि सिक्खो की पंजाबी राज्य की माँग स्वीकार होने के बाद भी सिक्ख सन्तुष्ट न हुए। सिक्खो को केन्द्रीय मंत्रिमंडल, संसद, पुलिस एवं प्रशासन में भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इस सबके बावजूद भी सिक्खों के एक वर्ग ने पृथक् राज्य 'खालिस्तान' की माँग प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे सिक्ख आन्दोलन हिसात्मक रूप लेता गया। 1982 मे अकाली दल ने अपने आन्दोलन को 'धर्मयुद्ध' घोपित कर दिया। बब्बर खालसा, खालिस्तान कमाण्डो फोर्स, भिण्डरावाले टाइगर्स फोर्स आदि उग्रवादी संगठनों ने सरकार पर दबाव डालने के लिए आतंकवादी गतिविधियों का सहारा लिया। पंजाब में निर्दोष हिन्दुओं की हत्याये होने लगी। यह हिंसा हरियाणा व दिल्ली तक भी फैल गई। 'स्वर्णमंदिर' आतंकवादी गतिविधियों का केन्द्र बन गया, जिसे मुक्त कराने के लिए सैनिक कार्यवाही करनी पडी। 'स्वर्णमंदिर' में सैनिक कार्यवाही से सिक्ख समुदाय बहुत ज्यादा उत्तेजित हुआ पर सामयिक रूप मे उग्रवाद पर काबू पा लिया गया। 31 अक्टूबर, 1984 को जब दो सिक्ख अंगरक्षकों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या कर दी, तो सिक्ख समुदाय के विरुद्ध देश भर में जगह-जगह हिंसक वारदाते हुई। सिक्खों की जान-माल को भारी क्षति पहुँची। आज भी सिक्ख समुदाय 1984 के दंगो की कसक को भूल नही पाया है। 24 जुलाई, 1985 को तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी व अकाली नेता सन्त लोंगोवाल के मध्य पंजाब समस्या को लेकर एक समझौता हुआ परन्तु सिक्खों का एक वर्ग इससे असन्तुष्ट रहा तथा कुछ समय बाद लोगोवाल की हत्या कर दी गई। वर्तमान समय में पंजाब में आतंकवाद को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया है तथा वहाँ लोकतान्त्रिक सरकार पिछले दस वर्षों से कार्य कर रही है तथापि कभी-कभी अब भी अतिवादी घटनाएँ घट जाती हैं।

सिक्खों की हिंसात्मक साम्प्रदायिकता मुख्यतः पंजाब में केन्द्रित रही है तथा इसने हरियाणा व

दिल्ली को भी प्रभावित किया है।

देश के प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों की साम्प्रदायिकता का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का ही अस्तित्व रहा है। हिन्दू तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता एक-दूसरे के प्रति प्रतिक्रियात्मक है। दोनों ही वर्गों में एक-दूसरे के प्रति जबर्दस्त अविश्वास की भावना विद्यमान है। विभिन्न राजनैतिक दलों ने इन दोनों ही सम्प्रदायों की धार्मिक भावना को अपने-अपने दलीय हितों के पक्ष में भुनाने का प्रयास किया है। यह समस्या आज विकराल रूप से हमारे सामने है तथा देश मे पन्थनिरपेक्ष समाज के निर्माण मे सबसे बड़ी बाधा है।

सन्दर्भ-सङ्केत

1 D E Smith - India as a Secular State, Page - 454

2 Encyclopedia Britanica 2000, Deluxe Edition, Disc-2

3 Oxford Advanced Learner's Dictionary, Page - 1443

4 D E Smith - India as a Secular state, Page - 454

5 डॉ० जे०सी० जौहरी - भारतीय राजनीति, पृष्ठ - 324

6 R L Park & B B de Merquita - India Political System, Ed. II, Page - 22

7 K P Krunakaran - Domocracy in India, Page - 228

8. A.H. Merriam - Gandhi & Jinnah, Page - 5

9. Jawaharlal Nehru - The Discovery of India, Page - 386

10 Mehta & Patwardhan - The Communal Triangle, Page - 181

11 Jarachand - History of the Freedom Movement in India, Vol - II, Page - 515

12 A H Merriam - Gandhi & Jinnah, Page - II

13 Jawaharlal Nehru - The Discovery of India, Page - 307

14 के०के० अजीज, "आधुनिक भारत का इतिहास" - वी०एल० ग्रोवर, यशपाल, में उद्धृत।

15. वार्षिक रिपोर्ट, 1998-99 — भारत सरकार, गृहमन्त्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ - 6

16. इंडिया टुडे, 25 नवम्बर, 2002, पृष्ठ - 1

17 भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 1957 में केरल शिक्षा-विधेयक के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा कि कोई भी समूह जिसकी संख्या 50% से कम हो वह अल्पसंख्यक-वर्ग में आता है। 50% का अभिप्राय बताते हुए न्यायालय ने कहा कि अल्पसंख्यक होने या न होने का प्रश्न एक राज्य की सम्पूर्ण जनसंख्या के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।

18 वार्षिक रिपोर्ट 2000-01, भारत सरकार - सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय पृष्ठ - 43

19 प्रो०एस०एम० सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृष्ठ - 347

20 मुस्लिम इंडिया, मई, 1985, पृष्ठ - 204, प्रो०एस०एम० सईद "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था" में उद्धृत।

21 प्रो०एस०एम० सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृष्ठ - 349-350

22. India Today, November 25, 2002, Page - 42

23. India Today, November 25, 2002, Page - 42

24. India Today, November 25, 2002, Page - 42

25. इंडिया टुडे, 15 जनवरी, 1991 पृष्ठ - 25

26 Moin Shakir - Muslims in Free India, Page - 112

27 Main Shakir - Muslims in Free India, Page - 50

28 मुस्लिम मजलिसे मुशावरात, जिसका निर्माण 1964 मे हुआ था, विभिन्न मुस्लिम सगठनों का एक मंच है। इस सस्था मे इडियन यूनियन मुस्लिम लीग, जमात-उल-उल्माए हिन्द, जमाते इस्लामी, तामीरे मिल्लत, इत्तेहादुत मुसलमीन, मुस्लिम ब्लॉक और मुस्लिम मजलिस शामिल है।

29 Moin Shakir - Muslims in Free India, Page - 60

30 India Today, January 4, 2002, Page - 30

31 Savarkar - Hindutva, edited by V.G Ketkar, 1942, Page - 4

32 Savarkar - Hindu Rashtravad, edited by satya Prakash, Page - 72

33. D E Smith - India as a Secular state, Page - 461

34 R S S - Victim of Slander, Page - 47

35 D E. Smith - India as Secular State, Page - 201

36 Khushawant Singh - The Sikhs, Page - 19

चतुर्थ अध्याय

संविधान निर्माण एवं पन्थनिरपेक्षता

कैबिनेट मिशन योजना के तहत जिस संविधान सभा का गठन 1946 ई० मे हुआ वह एक सम्प्रभु सभा नही थी। मूल सिद्धान्तो तथा प्रक्रिया दोनों ही दृष्टियों से इसकी अधिकारिता सीमित थी। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 द्वारा इसके सम्प्रभु चरित्र की स्थापना हुई तथा यह सभी बन्धनों से मुक्त संविधान सभा बन गई। 1946 ई० में संविधान सभा के निर्वाचन के पश्चात् एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गई। मुस्लिम लीग ने निर्वाचन में भाग लिया तथा उसके प्रत्याशी चुने गए किन्तु इसी बीच कैबिनेट के 'गुट सम्बन्धी खण्डों' के निर्वाचन के बारे में कॉग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच में मतभेद हो गए। ब्रिटिश सरकार ने इस प्रक्रम पर हस्तक्षेप किया और लन्दन में नेताओं को यह बताया कि लीग का पक्ष सही है। 9 दिसम्बर 1946 ई० को ब्रिटिश सरकार ने यह कथन प्रकाशित किया –

"यदि ऐसी संविधान सभा द्वारा संविधान बनाया जाता है जिसमें भारत की जनसंख्या के किसी वहुत बडे भाग का प्रतिनिधित्व नहीं है तो हिज मैजेस्टी की सरकार ऐसे संविधान को देश के उस न मानने वाले भाग पर बलपूर्वक लागू नही करेगी।"

इसका परिणाम यह हुआ कि 9 दिसम्बर 1946 ई० को जब संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ तब मुस्लिम लीग के सदस्य उपस्थित नही हुए और संविधान सभा ने मुस्लिम लीग के सदस्यों के बिना कार्य प्रारम्भ किया। जो संविधान सभा अविभाजित भारत के लिए निर्वाचित की गई थी और जिसकी पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 ई० को हुई थी वही भारत डोमिनियन की प्रभुत्वसम्पन्न संविधान सभा के रूप में पुनः समवेत हुई। संविधान सभा ने संविधान निर्माण के लिए जो विधि अपनाई, वह थी- सर्वप्रथम इसके उद्देश्यों को परिभाषित करना।

यदि हम संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान संविधान सभा में रखे गए विभिन्न प्रस्तावों तथा उन पर हुए विचार-विमर्श का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि भारतीय संविधान

निर्माता प्रारम्भ से ही भारत को एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का स्वरूप देने के इच्छुक थे। उस समय ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक वैमनस्य अपने चरम पर था। मुस्लिम लीग द्वारा अलग राज्य तथा अलग संविधान सभा की माँग की जा रही थी। साथ ही मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय संविधान सभा के विरुद्ध यह दुष्प्रचार भी किया जा रहा था कि वह सिर्फ एक वर्ग-विशेष (सवर्ण हिन्दुओं) के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। इस कारण गैर-हिन्दुओं और पिछड़े वर्गों के मन में संविधान सभा के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न हो रही थी। ऐसी परिस्थितियों में संविधान सभा के ऊपर यह महान् उत्तरदायित्व था कि वह अल्पसंख्यकों के मन से भय की भावना को निकालकर उनमें विश्वास का संचार करे तथा साथ ही बहुसंख्यकों के साथ भी न्याय करे।

संविधान सभा के उद्देश्य नेहरू द्वारा प्रेषित उद्देश्य प्रस्ताव में निहित थे। इन उद्देश्य प्रस्तावों के रूप में संविधान सभा ने अपने उद्देश्यों की घोषणा की। नेहरू के अनुसार "उद्देश्य प्रस्ताव हमारे उद्देश्यों को परिभाषित करते हैं, प्रस्तावित योजना का वर्णन करते हैं और हमारा मार्गदर्शन करते हैं।"[1] इन्हीं उद्देश्य प्रस्तावों के आधार पर संविधान की प्रस्तावना तैयार की गई। इनमें से कुछ उद्देश्य प्रस्तावों पर संविधान सभा में वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श हुआ तथा इसके दौरान इन्हें परिभाषित भी किया गया। नेहरू द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव के आठ खण्ड थे, जिसमें पॉचवॉ तथा छठा खण्ड प्रस्तावित संविधान के पन्थनिरपेक्षता के उद्देश्य को घोषित करते थे –

> "(5) WHEREIN shall be guaranteed and secured to all the people of India justice, social, economic and political, equality of status, of opportunity, and before the law freedom of thought, expression, belief, faith, worship, vocation, association and action, subject to law and public morality;"[2]

अर्थात् भारत के लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की

विधि के समक्ष समता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संगम और कार्य की स्वतन्त्रता विधि और सदाचार के अधीन रहते हुए होगी।

"(6) WHERIN adequate safeguards shall be provided for minorities, backward and tribal areas and depressed and other backward classes,"[3]

अर्थात् अल्पसंख्यकों के लिए, पिछड़े और जनजाति क्षेत्रो के लिए, दलित और अन्य पिछड़े वर्गो के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जाएँगे।

संविधान सभा में नेहरू के इन उद्देश्य प्रस्तावों को भरपूर समर्थन मिला। यद्यपि उद्देश्य प्रस्तावों के लिए चालीस संशोधन प्रस्ताव आए परन्तु यह प्रस्ताव पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् अपने मूलस्वरूप में ही बगैर किसी संशोधन के पारित कर दिए गए। उद्देश्य प्रस्तावों पर चर्चा के दौरान जो प्रमुख मुद्दे उठाए गए, वह थे – मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा का वहिष्कार, संविधान सभा पर सवर्ण हिन्दुओं की सभा होने का आरोप, सभी को न्याय तथा सामाजिक, धार्मिक समानता तथा स्वतन्त्रता प्रदान करना तथा अल्पसंख्यकों को सुरक्षा उपाय प्रदान करना।

संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव पर व्यक्त कुछ प्रमुख विचार

पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इन प्रस्तावों का समर्थन करते हुए कहा ''समानता इन उद्देश्य प्रस्तावों का आधार है। हम सभी वर्गो के साथ न्याय करेंगे तथा उन्हें उनके सामाजिक तथा धार्मिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता देंगे।''[4] मुस्लिम लीग के संविधान सभा की बैठक में सम्मिलित न होने तक उद्देश्य प्रस्ताव पर विचार विमर्श को स्थगित करने सम्बन्धी संशोधन प्रस्ताव की आलोचना करते हुए श्री टण्डन ने कहा – ''हमारे जो साथी मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति में कुछ भी करना नहीं चाहते वह इस बैठक में आखिर किस लिए सम्मिलित हुए हैं। मुस्लिम लीग का सहयोग हासिल करने के लिए हम अब तक ऐसी कई बातों को स्वीकार कर चुके हैं, जो हमारे आदर्शों के विरुद्ध थीं, परन्तु अब हमें मुस्लिम लीग को

सन्तुष्ट करने के लिए अपने आधारभूत सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अंग्रेजो के इशारे पर जो हमारा विरोध कर रहे है, वह हमारे भाई हैं तथा हम निश्चित रूप से उनका सहयोग चाहते है, परन्तु इस सहयोग को प्राप्त करने के लिए हम अपने उन आधारभूत सिद्धान्तो का त्याग नही कर सकते, जिनको हमने अभी तक अपनाया है तथा जो एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं।"[5]

जे० जे० एम० निकोलस राय ने उद्देश्य प्रस्ताव के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप पर मत व्यक्त करते हुए कहा – "इन प्रस्तावों में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा उपासना की स्वतन्त्रता की बात कही गई है। इस देश में कुछ दलों द्वारा यह प्रचार किया गया है कि जब भारत में स्वशासन होगा तब कुछ धार्मिक मतों को अपने मत का प्रचार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यह सचमुच ही झूठा प्रचार है। यह उद्देश्य प्रस्ताव इस बात की घोषणा करते हैं कि ऐसा नहीं होगा। भारत के संविधान में सभी धर्मों के लिए स्वतन्त्रता तथा अपनी इच्छा के अनुसार अपनी धार्मिक आस्था के प्रचार के लिए प्रावधान होगा। मुझे खुशी है कि यह विधि तथा सार्वजनिक नैतिकता का विषय होगा।"[6] हाऊस ऑफ लार्ड्स में विस्काउन्ट साइमन के भाषण को भी उन्होने उद्धृत किया जिसमें साइमन ने कहा था कि यदि यह संविधान सभा संविधान निर्माण का कार्य करेगी तो भारत मे 'हिन्दू राज' का 'खतरा' होगा। इसपर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री राय ने कहा कि "जब मैं पाश्चात्य देशों – इंग्लैण्ड तथा अमेरिका में था, मुझे इस तथ्य का पता लगा कि उन देशों में कुछ लोग समझते है कि हिन्दू वह है जो जाति व्यवस्था को मानता है तथा गाय की पूजा करता है। यदि विस्काउन्ट साइमन का 'हिन्दू राज' से आशय है कि भारत के लोगों को जाति व्यवस्था को मानने तथा गाय की पूजा करने को बाध्य किया जाएगा, तो वह पूरी तरह गलत है। यदि यहाँ एकत्रित सभी व्यक्ति, चाहे वे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई या कोई अन्य धर्म मानने वाले हों, यदि वह एक लोकतान्त्रिक संविधान का निर्माण करते हैं, जिसमें सभी के साथ न्याय हो तो इस संविधान को 'हिन्दू राज' क्यों कहा जाना चाहिए? और यदि 'हिन्दू' का अर्थ भारत में रहने वाले लोगों से है, तो निश्चित रूप से हमें भारत के लोगों के लिए ही संविधान निर्माण करना है।"[7]

विश्वनाथ दास ने ब्रिटिश संसद में कंज़र्वेटिव पार्टी के नेताओं द्वारा भारत की संविधान सभा को 'सवर्ण हिन्दुओं की संस्था' कहे जाने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा ''इस महान् सभा में न केवल हिन्दू-बहुल राज्यों की हिन्दू जनसंख्या के प्रतिनिधि हैं बल्कि मुस्लिम-बहुल राज्यों के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के भी प्रतिनिधि है। इसमें अनुसूचित जातियो, ईसाइयों, सिक्ख, पारसी, आंग्ल-भारतीय तथा आदिवासियों के भी प्रतिनिधि है। हमारे बीच में मुस्लिम लीग को छोडकर मुस्लिम समुदाय के प्रतिनिधि भी हैं। इन परिस्थितियों में यह कहना कि महान् भारत राष्ट के प्रतिनिधियों की यह सभा 'सवर्ण हिन्दुओं की संस्था' है तथा इस विदेशी दुष्प्रचार के लिए ब्रिटिश संसद का प्रयोग करना अत्यन्त अनुचित एवं दुर्भाग्यपूर्ण है। ब्रिटिश संसद के भाषणों मेंअल्पसंख्यकों के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसा कौन सा देश है जहाँ अल्पसंख्यक न हों? इंग्लैण्ड में भी अल्पसंख्यक हैं। क्या 'वेल्श' तथा 'स्कॉट्स' अल्पसंख्यक नहीं हैं? 'वेल्श' एक भिन्न नस्ल तथा भाषा वाले हैं जो ब्रिटेन से पूरी तरह अलग हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी भाषायी तथा नस्लीय अल्पसंख्यक हैं। सोवियत संघ में भी यही परिस्थितियाँ हैं। अतः कन्जर्वेटिव पार्टी के नेताओं द्वारा हमारे देश तथा संविधान सभा के विरुद्ध दुष्प्रचार करना अनुचित है।''[8]

श्रीकृष्ण सिन्हा ने इन उद्देश्य प्रस्तावों को पूर्ण समर्थन देते हुए कहा कि ''यह सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस प्रकार के उद्देश्य प्रस्तावों को संशोधन का विषय बनाया जाए। यह उद्देश्य प्रस्ताव भविष्य के भारत की तस्वीर को प्रस्तुत करते हैं। भविष्य का भारत एक लोकतान्त्रिक तथा विकेन्द्रीकृत गणराज्य होगा, जिसमें अन्तिम सम्प्रभुता जनता में निहित होगी और जिसमें मूलभूत अधिकार यहाँ रहने वाले अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपाय होंगे।''[9]

श्री एम० आर० मसानी का मत था कि ''मैं आशा करता हूँ कि हमारे देश में जो अल्पसंख्यक हैं, वह बहुसंख्यकों के साथ मिलकर एक राष्ट्र बनने की दिशा में अपनी प्रगति को जारी रखेंगे, एक प्रक्रिया जो इस प्राचीन देश मे शताब्दियों से नए आने वाले समूहों को समाहित करती रही हैं, परन्तु जो

पिछली कुछ शताब्दियों से जाति की संकीर्णता तथा समाज की विशिष्टता के कारण समाप्त होती प्रतीत होती है। इस अवस्था में एक राष्ट्र का निर्माण शाश्वत या स्थायी अल्पसख्यक वर्ग के अस्तित्व की अनुमति नही देता है। या तो राष्ट्र इन अल्पसंख्यकों को स्वयं मे समाहित कर लेगा या समय के साथ यह टूट जाएगा। अतः उद्देश्य प्रस्तावों के वह खण्ड जो अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपायों की प्रतिज्ञा करते है, का स्वागत करने के साथ-साथ मै यह कहूँगा कि यह अच्छी बात है कि हमारे पास यह कानूनी तथा संवैधानिक सुरक्षा-उपाय है, परन्तु अन्ततः कोई भी कानूनी सुरक्षा-उपाय छोटे अल्पसंख्यक वर्गो की विशाल बहुसंख्यक वर्ग से सुरक्षा नहीं कर सकता, जब तक कि दोनों पक्षों की ओर से एक-दूसरे के नजदीक आने तथा समेकित राष्ट्र बनने का प्रयास न किया जाए।''[10]

पंजाब के सिक्ख प्रतिनिधि उज्ज़ल सिह ने कहा कि ''उद्देश्य प्रस्तावों का तीसरा भाग अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्गो को यह आश्वासन देता है कि उनके हितों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाएगी। इस सम्बन्ध में मेरा समुदाय(सिक्ख समुदाय) यह महसूस करता है कि यह सुरक्षा-उपाय न सिर्फ पर्याप्त होने चाहिए बल्कि यह सिक्खों तथा अन्य अल्पसंख्यक वर्गो के लिए सन्तोषप्रद होने चाहिए।''[11]

डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का कहना था कि ''जब हम अल्पसंख्यकों की बात करते हैं तब कहा जाता है कि मुस्लिम लीग भारत के एकमात्र अल्पसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु ऐसा नहीं है। यहाँ और भी अल्पसंख्यक वर्ग हैं। मै सभा को याद दिलाना चाहता हूँ कि हिन्दू भी भारत के कम से कम चार राज्यों में अल्पसंख्यक हैं। यदि अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान की जाती है, तो यह सभी अल्पसख्यक वर्गो के लिए होनी चाहिए, जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग हैं।''[12]

संविधान सभा में व्यक्त किए गए उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि इस बात पर सभा में आम सहमति थी कि नेहरू द्वारा प्रेषित उद्देश्य-प्रस्तावों पर आधारित संविधान सभी वर्गों को समानता, न्याय, सामाजिक व धार्मिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करेगा। इन उद्देश्य प्रस्तावों में कही गई

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान करने की बात को इस बात का द्योतक माना गया कि संविधान के अधीन सभी धर्मो के लिए स्वतन्त्रता तथा अपनी इच्छा के अनुसार अपनी धार्मिक आस्था के प्रचार के लिए प्रावधान होगा। कुछ दलों द्वारा किए जा रहे इस दुष्प्रचार को गलत बताया गया कि स्वतन्त्र भारत में कुछ धार्मिक मतों को अपने धर्म का प्रचार करने की अनुमति नही दी जाएगी। ब्रिटिश नेताओं द्वारा संविधान सभा को 'सवर्ण हिन्दुओं की संस्था' कहे जाने पर सदस्यों में रोष था तथा इसपर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सदस्यों ने यह याद दिलाया कि सभा में न सिर्फ़ सवर्ण हिन्दू हैं बल्कि इसमें अनुसूचित जाति, ईसाइयों, सिक्ख, पारसी, आंग्ल-भारतीय तथा आदिवासियों के भी प्रतिनिधि हैं। अतः इसे 'सवर्ण हिन्दुओं की संस्था' कहा जाना नितान्त अनुचित है। अंग्रेजों को यह स्मरण कराया गया कि अल्पसंख्यक उनके देश में भी हैं तथा अमेरिका और सोवियत संघ जैसे देशो में भी भाषाई तथा नस्लीय अल्पसंख्यक वर्गो का अस्तित्व है। इस दुष्प्रचार के लिए ब्रिटिश संसद के मंच का दुरुपयोग करने की भी निन्दा की गई। संविधान मे अल्पसंख्यको को सुरक्षा-उपाय प्रदान करने का भी आम तौर पर स्वागत किया गया पर साथ ही कुछ सदस्यों का मत था कि अल्पसंख्यकों को राष्ट्र की मुख्यधारा में सम्मिलित हो जाना चाहिए क्योंकि एक राष्ट्र का निर्माण स्थायी अल्पसंख्यक वर्ग के अस्तित्व को स्वीकार नही कर सकता। सिर्फ़ कानूनी रक्षोपाय अल्पसंख्यक वर्गो को पूर्ण सुरक्षा प्रदान नही कर सकते। इसके लिए बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक वर्गों को एक दूसरे के निकट आना चाहिए तथा उनमें आपसी प्रेम, सद्भाव तथा विश्वास बना रहना चाहिए। जहाँ एक ओर कुछ अल्पसंख्यक सदस्यों का मानना था कि प्रदत्त रक्षोपाय अल्पसंख्यक वर्गो को सन्तोषजनक लगने चाहिए वही दूसरी ओर कुछ हिन्दू प्रतिनिधियों ने हिन्दू अल्पमत वाले राज्यों का प्रश्न भी उठाया। मुस्लिम लीग के संविधान सभा में सम्मिलित न होने तक विचार-विमर्श को स्थगित रखने के संशोधन प्रस्ताव पर अधिकाश सदस्यों का मत था कि मुस्लिम लीग को सन्तुष्ट करने के लिए अपने मूलभूत आदर्शो से समझौता करना उचित नहीं है। एक लम्बे विचार-विमर्श के बाद संविधान सभा ने नेहरू द्वारा रक्खे गए उद्देश्य प्रस्ताव सर्वसम्मति से

पारित कर दिए।

तत्कालीन परिस्थितियाँ बहुत विषम थीं। देश हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की चपेट में था। जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पर अड़ी थी। ब्रिटिश शासन द्वारा इस माँग को बढ़ावा दिया जा रहा था। भारत के अल्पसंख्यको तथा असवर्ण जातियो के मन में यह भय पैदा करने का प्रयास किया जा रहा था कि भारतीय संविधान सभा द्वारा निर्मित सविधान के शासन मे उनकी तथा उनके धर्म और संस्कृति की सुरक्षा खतरे मे पड जाएगी तथा उन्हे दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाएगा। अंग्रेजों ने जिस फूट का विषबीज बोया था, वह वृक्ष बन कर फल-फूल रहा था। ऐसे समय में संविधान सभा के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि वह इन वर्गो को आश्वस्त करे कि प्रस्तावित संविधान उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा सुरक्षा प्रदान करेगा। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सभी को न्याय, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समानता तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और उपासना की स्वतन्त्रता देने की बात कही गई। साथ ही अल्पसंख्यकों, पिछडे तथा आदिवासी वर्गो को पर्याप्त रक्षोपाय प्रदान करने का प्रस्ताव भी रखा गया। दुर्भाग्य का विषय है कि यह बातें मुस्लिम समुदाय की बहुसंख्या में विश्वास उत्पन्न न कर सकी तथा भारत के विभाजन को रोकने में सफल न हो सकी। आगे चलकर उद्देश्य प्रस्ताव में उल्लिखित ये सभी बातें भारत के संविधान मे सम्मिलित की गई तथा भारत को एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का स्वरूप प्रदान किया गया।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों में सम्मिलित धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार तथा संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार हमारे देश के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप का मूल आधार हैं। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान इन मूल अधिकारों पर हुई चर्चा तथा उनमें प्रस्तावित संशोधनों और उनपर हुए विचार-विमर्श पर दृष्टिपात करके हम इन अधिकारों के पीछे संविधान निर्माताओं के पन्थनिरपेक्ष संविधान बनाने के मन्तव्य को भलीभाँति समझ सकते हैं। 1 मई, 1947 को संविधान सभा की

परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल ने मूल अधिकारों पर अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में 24 उपवन्ध थे, जिनमें 13,14,15,16,17 तथा 18 धर्म, संस्कृति तथा शिक्षा से सम्बन्धित थे।

मूल अधिकारों पर अन्तरिम रिपोर्ट

उपबन्ध-13

All persons are equally entitled to freedom of conscience, and the right freely to profess, practise & propagate religion, subject to public order, morality or health, and to the other provisions of this part.

Explanation 1. The wearing and carrying of kripans shall be deemed to be included in the profession of the Sikh religion.

Explanation 2. The above right shall not include any economic, financial, political or other secular activities that may be associated with religios practice.

Explanation 3. The freedom of religious practice guaranteed in this clause shall not debar the state from enacting laws for the purpose of social welfare and reform.

उपबन्ध-14

Every religious denomination shall have the right to manage its own affairs in matter of religion and, subject to general law to own, acquire and administer property movable and immovable, and to establish and maintain

institutions for religious or charitable purpose.

उपबन्ध-15

No person may be compelled to pay taxes, the proceeds of which are specifically appropriated to further or maintain any particular religion or denomination.

उपबन्ध-16

No person attending any school maintained and receiving aid out of public funds shall be compelled to take parts in the religious instruction that may be given in the school or to attend religious worship held in the school or in premises attached thereto.

उपबन्ध-17

Conversion from one religion to another brought about by coercion or undue influence shall not be recognised by law.

उपबन्ध-18

1. Minorities in every unit shall be protected in respect of their language, script and culture and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudically in this respect.
2. No minority whethr based on religion, community or language shall be discriminated against in regard to the admission to the state educational institutions, nor shall any religious instruction be

compulsorily imposed on them.

3. All minorities whether based on religion, community or language shall be free in any unit to establish and administer educational institutions of their choice.

4. The state shall not, while providing state aid to schools, discriminate against schools under the management of minorities whether based on religion, community or language.

उपर्युक्त उपवन्धों मे 13 तथा 14 मामूली संशोधनों के पश्चात् तथा 15 विना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया गया। उपबन्ध 16, जो कि सार्वजनिक कोष से सहायता प्रात स्कूलों में किसी भी व्यक्ति को धार्मिक निर्देश तथा धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिए वाध्य किए जाने पर रोक लगाता था, को पुनर्विचार हेतु परामर्शदात्री समिति को वापस भेज दिया गया। परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल ने स्वयं ही यह सुझाव दिया कि यद्यपि यह उपवन्ध परामर्शदात्री समिति द्वारा पास कर दिया गया है परन्तु फिर भी इससे सम्बन्धित समस्याओं को देखते हुए यह सलाह दी गई है कि इसे पुनर्विचार के लिए वापस भेज दिया जाए। धर्मान्तरण से सम्बन्धित उपवन्ध 17 तथा अल्पसंख्यकों के अधिकार से सम्बन्धित उपवन्ध 18 पर सदस्यों के मध्य तीव्र मतभेद सामने आए।

धर्मान्तरण से सम्वन्धित उपबन्ध के विषय में कुछ सदस्यों का मत था कि न सिर्फ बल प्रयोग तथा लोभ द्वारा होने वाले धर्मान्तरण पर रोक लगनी चाहिए बल्कि धोखाधड़ी करके कराया गया धर्मान्तरण भी अवैध घोषित होना चाहिए। साथ ही साथ अठारह वर्ष से कम उम्र के अवयस्कों के धर्मान्तरण को भी विधि द्वारा मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। के० एम० मुंशी ने उपबन्ध 17 पर संशोधन प्रस्ताव रखते हुए कहा कि यह उपबन्ध इस प्रकार होना चाहिए –

"Any conversion from one religion to another of any person brought about by fraud, coercion or undue influence or of a minor under the age of 18 shal not be recognised by law "[13]

मुंशी का कहना था कि "मूल रूप से जो उपबन्ध रखा गया था, वह यही था। सबसे पहले इसमें 'Fraud' शब्द जोड़ा जाना चाहिए। दूसरा मुद्दा अवयस्कों के धर्मान्तरण का है। वस्तुतः यह मुद्दा एक अन्य समिति द्वारा उठाया गया था, पर यह सामान्य भावना है कि अवयस्कों के धर्मान्तरण को विधि द्वारा मान्यता नहीं मिलनी चाहिए। विधि द्वारा मान्यता न देने का सिर्फ यह प्रभाव होगा कि यदि कोई व्यक्ति धोखाधड़ी, बल प्रयोग या लोभ द्वारा या अवयस्क होते हुए धर्मान्तरित होता है तो विधि द्वारा वह पुराने धर्म का ही माना जाएगा तथा उसके अन्य विधिक अधिकार पूर्ववत् बने रहेंगे।"[14]

बंगाल के एफ० आर० एन्टोनी ने मुंशी के संशोधन में 'or of a minor under the age of 18' के आगे यह जोडने का प्रस्ताव रखा 'except when the parants or surviving parants have been converted and the child does not choose to adhere to its original faith'[15]

एन्टोनी ने कहा कि "मै मानता हूँ कि लोभ, बल प्रयोग या धोखाधड़ी द्वारा धर्मान्तरण विधि द्वारा मान्य नही होना चाहिए। परन्तु जव सभी को अपने धर्म के पालन तथा प्रचार का मूल अधिकार दिया जा रहा है तो यदि अवयस्क के धर्मान्तरण पर रोक लगाई जाएगी तो यह धर्मान्तरण के अधिकार पर रोक होगी। यदि माता-पिता ईसाई धर्म में परिवर्तित होंगे तो वे अपने बच्चों को अपने धर्म में नही ला सकेंगे। इस प्रकार आप पारिवारिक जीवन की जड़ों को काट देंगे। यह प्राकृतिक विधि तथा न्याय की सामान्य अवधारणा के विरुद्ध है। 'Surviving parants' जोड़ने का आशय यह है कि यदि पिता विधुर हो तथा वह ईसाई धर्म स्वीकार करे तथा अपने बच्चों को भी इसी धर्म में लाना चाहे तो यह कहा जा सकता है कि माता-पिता दोनों जीवित नहीं हैं, अतः पिता बच्चों को अपने धर्म मे नहीं ला सकता।"[16]

असम के जे० जे० एम० निकोलस राय ने मत व्यक्त किया कि "यह उपवन्ध पगमर्शदात्री समिति से जिस रूप मे आया था उसी स्वरूप में रहना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का संशोधन उचित नहीं है। अठारह वर्ष से कम के युवाओं मे भी ईश्वर के प्रति विश्वास होता है, अत वह अपनी आस्था को व्यक्त न कर सकें, यह गलत होगा। यदि श्री एन्टोनी के संशोधन मे 'or save when the minor himself wants to change his religion' यह वाक्यांश जोड़ लिया जाए तो मैं इस संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं करूंगा। मैं लोभ, धोखाधडी या बल प्रयोग द्वारा धर्मान्तरण के विरुद्ध हूँ। यदि हम इन बुराइयों के विरुद्ध कानून बनाते हैं तो हमें सावधानीपूर्वक यह भी देखना चाहिए कि कानून युवाओं के अन्तःकरण को न दवाए, उन्हें भी स्वतन्त्रता की आवश्यकता है।"[17]

पुरुषोत्तमदास टण्डन ने धर्मान्तरण का विरोध करते हुए कहा कि "काँग्रसी शुरू से ही धर्मान्तरण के पक्ष में नहीं थे, परन्तु अपने ईसाई माथियों कोअपने माथ ग्खने के गट्रीय प्रयास के लिए हमने इसे स्वीकार कर लिया। पग्न्तु अवयस्कों के धर्मान्तग्ण का ममर्थन नहीं किया जा मकता।"[18]

डॉ० भीमगव अम्वेडकग ने के० एम० मुंशी के संशोधन प्रस्ताव से असहमति व्यक्त की तथा उनसे संशोधन वापस लेने का आग्रह किया। अवयस्कों द्वाग धर्मान्तरण के मम्भावित प्रकागें की विवेचना करने के वाद डॉ० अम्वेडकग ने कहा कि "इन परिस्थितियों में इस उपवन्ध को पूर्ण रूप मे वापस ले लेना चाहिए। ऐसा कोई प्रावधान किया जाना चाहिए कि ऐसे वच्चे जिनके कानूनी अभिभावक मौजूद हो, विना अभिभावक के ज्ञान तथा जानकारी के धर्मान्तरण नहीं किया जा सकता।"[19]

परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष सरदार पटेल ने इस उपवन्ध पर गहगे मतभेदों को देखते हुए इसे परामर्शदात्री ममिति के पाम पुनर्विचाग हेतु वापस भेजने का सुझाव दिया जो मंजूग हो गया।

उपबन्ध 18 अल्पमंख्यकों के अधिकारों से सम्बन्धित था। इस ममय तक धार्मिक आधाग पर देश के विभाजन का निर्णय हो चुका था। इस कारण कई सदस्य चाहते थे कि पहले यह ज्ञात कर लिया

जाए कि पाकिस्तान अपने यहाँ अल्पसंख्यकों को क्या अधिकार प्रदान करता है, तत्पश्चात् भारत मे अल्पसंख्यकों के अधिकारों का निर्धारण किया जाए। मोहनलाल सक्सेना ने इस पूर्ण उपबन्ध को वापस परामर्शदात्री समिति के पास भेजने की सलाह दी। आचार्य जे० बी० कृपलानी ने सुझाव दिया कि पहले इस पर चर्चा की जाए तथा यदि समस्याएं आएं तो इसे वापस भेजा जाए।अन्य सदस्यों ने भी आचार्य का समर्थन किया। के० एम० मुंशी ने संशोधन प्रस्ताव रक्खा कि उपबन्ध के खण्ड (2) को पुनर्विचार हेतु परामर्शदात्री समिति के पास वापस भेजा जाए। महावीर त्यागी ने मोहनलाल सक्सेना का समर्थन करते हुए इस उपबन्ध को वापस भेजने की सलाह दी। उन्होंने खुलकर कहा कि "पहले हमें यह देखना चाहिए कि देश का जो भाग भारत से अलग होगा, वहाँ अल्पसंख्यको को क्या अधिकार दिए जाते हैं।"[20] सेठ गोविन्ददास का मत था कि हमें इन बातो से निरपेक्ष रहते हुए अपना कार्य करते रहना चाहिए। डा० अम्बेडकर ने श्री त्यागी तथा श्री मुंशी के संशोधनों पर आश्चर्य व्यक्त किया तथा कहा – "इसका एक ही कारण समझ में आता है कि पहले यह देखा जाए कि पाकिस्तान की असेम्बली अपने यहाँ के अल्पसंख्यकों को क्या अधिकार देती है, फिर हम अपने यहाँ के अल्पसंख्यकों के अधिकार निश्चित करें। मै ऐसे किसी भी विचार का विरोध करता हूँ। अल्पसंख्यकों के अधिकार आत्यन्तिक होने चाहिए।"[21]

उपर्युक्त दोनों उपबन्धो पर हुई बहस से यह स्पष्ट होता है कि धर्मान्तरण तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों के मुद्दों पर सदस्यों में गम्भीर मतभेद थे। जहाँ तक धर्मान्तरण का प्रश्न था, इस बात पर किसी को कोई आपत्ति नही थी कि बल प्रयोग, लोभ या धोखाधड़ी द्वारा होने वाले धर्मान्तरण को अवैधानिक घोषित किया जाए। किन्तु अठारह वर्ष से कम उम्र के अवयस्कों के धर्मान्तरण पर सदस्य एकमत नहीं थे। जहाँ एक ओर काँग्रेसी सदस्य अवयस्कों के धर्मान्तरण के विरुद्ध थे, वहीं कुछ अल्पसंख्यक, मुख्यतः ईसाई सदस्यों द्वारा अवयस्कों के धर्मान्तरण की वकालत की जा रही थी। अवयस्कों के धर्मान्तरण का समर्थन करने वालों में भी तीन मत उभर कर सामने आए – प्रथम, अवयस्कों के माता-

पिता या दोनों में से जो भी जीवित है, यदि धर्म परिवर्तन करता है, तो अवयस्क सन्तान का स्वतः ही माता-पिता के धर्म मे परिवर्तन हो जाएगा। द्वितीय, अवयस्कों को भी अपने अन्तःकरण के अनुसार धर्मान्तरण का अधिकार होना चाहिए तथा तृतीय, अवयस्को को अपने कानूनी अभिभावको की जानकारी में ही धर्मान्तरण का अधिकार होना चाहिए। इन तीनो मतो में भी परस्पर विरोध दिखाई पडता है। क्योंकि यदि अवयस्क सन्तान के माता-पिता द्वारा धर्मान्तरण करने पर सन्तान का स्वयमेव धर्म-परिवर्तन हो जाएगा, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उस अवयस्क सन्तान को धर्म-परिवर्तन के विषय में अन्तःकरण की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी तथा उसे अपने माता-पिता के धर्म को ही मानना होगा, चाहे उसकी इच्छा हो या न हो।

अवयस्कों के धर्मान्तरण के विषय में उठे विवाद का दुष्परिणाम यह हुआ कि. बल-प्रयोग, लोभ, तथा धोखाधडी द्वारा कराए जाने वाले धर्म-परिवर्तन को अवैध घोपित करने वाला मूल उपवन्ध. जिस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं थी, विचारार्थ वापस कर दिया गया तथा अन्ततः यह उपबन्ध मूल संविधान में भी समाविष्ट नहीं किया जा सका। यह समस्या आज भी देश के साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए नासूर वनी हुई है।

संविधान सभा द्वारा नियुक्त विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार करने तथा उनकी संस्तुतियो को स्वीकार करने के वाद संविधान के प्रारूप को तैयार करने के लिए सभा द्वारा 29 अगस्त, 1947 को एक प्रस्ताव पारित कर प्रारूप समिति का गठन किया गया। इस समिति का अध्यक्ष डा० भीमराव अम्बेडकर को बनाया गया। विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर संविधान सभा द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर संविधान का प्रारूप तैयार करने का उत्तरदायित्व प्रारूप समिति को सौंपा गया। प्रारूप संविधान के तीन वाचन हुए। तृतीय तथा अन्तिम वाचन के समय इसमें 315 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थी। संविधान सभा ने 26 नवम्बर, 1949 को संविधान को अन्तिम रूप प्रदान किया। यह 26 जनवरी, 1950 से लागू हुआ।

संविधान सभा के सम्मुख अनेक कठिन चुनौतियाँ थी। उन्हें 30 करोड की जनसंख्या के लिए संविधान का निर्माण करना था। यह जनसंख्या भी समान प्रकार की नहीं थी। इसमें बहुत से सम्प्रदायो को मानने वाले वर्ग थे तथा अनेक भाषाभाषी थे। विभिन्न सम्प्रदायों तथा भाषाभापियों के मध्य गहन मतभेद भी थे। साम्प्रदायिकता की समस्या एक प्रमुख वाधा थी। यह समस्या एक लम्वे समय से चली आ रही थी। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन असफल हो गया था क्योंकि साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान न हो सका था। इसके बाद भी इस दिशा में कई कार्य किए गए, किन्तु इसका कोई हल न निकल सका तथा अन्ततः इस समस्या की परिणति देश के विभाजन में हुई। विभाजन के बाद भी यह समस्या उतनी ही गम्भीरता के साथ बनी रही। संविधान निर्माताओं के ऊपर यह उत्तरदायित्व था कि वह संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था करें कि यह समस्या पुनः विकराल रूप न धारण करे। इस दिशा मे कार्य करते हुए संविधान सभा ने धार्मिक आधार पर होने वाले पृथक् निर्वाचन से छुटकारा पा लिया, जिसने पिछले कई वर्षो से हमारे सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन मे विप घोल दिया था। विधायिका मे सम्प्रदाय के आधार पर सीटों के आरक्षण को भी समाप्त कर दिया गया। संविधान निर्माता यह आवश्यक समझते थे कि अल्पसंख्यको को इस वात का विश्वास दिलाया जाए कि स्वतन्त्र भारत में उनके साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा तथा किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। इस बात को लेकर वे अतिरिक्त सावधानी वरत रहे थे। यही कारण था कि सभी को धर्म के पालन तथा प्रचार की स्वतन्त्रता देने तथा धार्मिक आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का प्रतिपेध करने के बाद भी अल्पसंख्यकों को संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी विशेषाधिकार प्रदान करने की आवश्यकता महसूस की गई। अल्पसंख्यकों को हर प्रकार से सन्तुष्ट करने के प्रयास का ही परिणाम था कि सभी के लिए समान नागरिक विधि तथा गोवध-निषेध जैसी बातें नीति निर्देशक तत्त्वों मे ही स्थान प्राप्त कर सकीं, जो कि न्याय-अमान्य (Non-justiciable) है। धर्मान्तरण सम्बन्धी उपबन्ध भी इसी कारण संविधान में समाविष्ट न हो सका। इतना सबकुछ होने के बावजूद भी अल्पसंख्यकों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं किया जा

सका। संविधान सभा मे ही काजी सैयद करीमुद्दीन ने अल्पसंख्यकों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व न दिए जाने तथा सरदार हुकुम सिह ने आर्थिक सुरक्षोपाय न प्रदान करने को लेकर संविधान की आलोचना की तथा इसके पन्थनिरपेक्ष स्वरूप पर उंगली उठाई। मौलाना हसरत मोहानी ने सारी हदे पार करते हुए संविधान को झूठा (Farce) कह कर इस पर टिप्पणी करने से इंकार कर दिया।

प्रारूप संविधान पर चर्चा के दौरान इसके सभी अनुच्छेदों तथा उद्देशिका पर विशद विचार-विमर्श हुआ। विभिन्न सदस्यों ने पन्थनिरपेक्षता तथा धर्म के अर्थ, अवधारणा तथा स्वरूप पर अपने-अपने विचार सदन के समक्ष रखे। इस विषय में सदस्यों के मध्य मतभेद भी सामने आए। कुछ सदस्यों का मत था कि जब संविधान में धर्म को मानने तथा प्रचार करने की छूट दी गई है तो इसे एक पन्थनिरपेक्ष संविधान नहीं माना जा सकता क्योंकि एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। यह सलाह भी दी गई कि व्यक्तिगत रूप से धर्म के पालन की छूट तो होनी चाहिए परन्तु इसके सार्वजनिक प्रदर्शन करने पर रोक होनी चाहिए। दूसरी ओर अन्य सदस्यों का मानना था कि संविधान में किसी भी धर्म को विशेष संरक्षण नही दिया गया है तथा किसी भी धर्म को राज्य-धर्म का दर्जा नहीं दिया गया है तथा कानून के समक्ष सभी धर्मो को समान माना गया है। साथ ही साथ धर्म को मानने, पालन करने तथा प्रचार करने की स्वतन्त्रता होने के बावजूद इस पर सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार तथा नैतिकता के हित में निर्बन्धन लगाए जा सकते है। अतः यह संविधान भारत को पूर्णतया पन्थनिरपेक्ष राज्य बनाता है। इसी आधार पर 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द को संविधान में सम्मिलित करने का संशोधन प्रस्ताव भी लाया गया किन्तु डा० अम्बेडकर ने इसे अनावश्यक बताया।

संविधान सभा में प्रारूप संविधान पर व्यक्त प्रमुख विचार

प्रथम अनुच्छेद पर चर्चा के दौरान बिहार के प्रो० के० टी० शाह ने संशोधन प्रस्ताव रखा कि इसमें 'Secular, Federal, Socialist' शब्द समाविष्ट किए जाने चाहिए। 'Secular' शब्द जोड़ने के

लिए तर्क देते हुए उन्होंने कहा कि "जहाँ तक एक राज्य के पन्थनिरपेक्ष चरित्र का सम्बन्ध है, हम कई बार सभी मंचों से कह चुके हैं कि हमारा राज्य एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है। यदि यह सत्य है तथा यदि यह अच्छी बात है तो मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि किसी भी प्रकार की गलतफहमी या मिथ्याधारणा को बचाने के लिए यह शब्द स्वयं संविधान में ही शामिल क्यो नही किया जा सकता।"[22]

डॉ० अम्बेडकर ने प्रो० शाह से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि "मैं यह संशोधन स्वीकार नहीं कर सकता। संविधान राज्य के विभिन्न अंगों के कार्यों को नियन्त्रित करने का एक साधन है। राज्य की नीतियाँ क्या होंगी तथा समाज का सामाजिक तथा आर्थिक संगठन किस प्रकार का होगा, यह निर्धारित करने का कार्य स्वयं जनता पर छोड़ दिया जाना चाहिए ताकि वे समय तथा परिस्थितियों के अनुसार इनका निर्धारण करें। यह संविधान में निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह लोकतन्त्र को पूर्णतया विनष्ट कर देगा। यदि यह संविधान में निशचित कर दिया जाएगा कि राज्य को सामाजिक संगठन का कौन सा रूप अपनाना चाहिए तो मेरी राय में यह लोगों की इस स्वतन्त्रता को छीन लेगा कि वह किस प्रकार के सामाजिक संगठन मे रहना चाहते है। इस संशोधन को स्वीकार न करने का दूसरा कारण यह है कि यह पूरी तरह अनावश्यक है। मूल अधिकारों से लेकर राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व के अन्तर्गत विधायिका व कार्यपालिका दोनों के लिए नीति-निर्धारण हेतु कुछ कर्त्तव्यो का निर्धारण किया गया है।"[23]

श्री एच० बी० कामथ का कहना था कि "श्री शाह का संशोधन कुछ हद तक गलत स्थान पर है। मेरी राय में 'Secular and Socialist' को यदि स्थान मिलना चाहिए तो उद्देशिका में मिलना चाहिए। इस भाग का शीर्षक 'संघ का राज्यक्षेत्र व क्षेत्राधिकार' है अतः इस भाग में सिर्फ इसके राज्यक्षेत्र व क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित बातें होनी चाहिए, भविष्य के संवैधानिक ढाँचे के चरित्र की नहीं।"[24]

बाद में यह संशोधन सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

अनुच्छेद 13 पर चर्चा के दौरान प्रो० के०टी० शाह ने कई अन्य स्वतन्त्रताओं के साथ

'उपासना की स्वतन्त्रता' के अधिकार को शामिल करने का प्रस्ताव रखा तथा कहा "लोगो की एक बड़ी संख्या उपासना की आवश्यकता महसूस करती है तथा उपासना के क्रियाकलाप करती है, जिन पर रोक लगाई जा सकती है जब तक कि संविधान में यह स्पष्ट रूप से नहीं होगा। धर्म को लेकर अभी तक जो भी लड़ाइयाँ हुई हैं तथा जिसे हमारे प्रारूपकर्ता अच्छी तरह जानते हैं कि आज भी ये जारी है ये सभी मुक्त उपासना के अधिकार के सम्बन्ध में है।"[25]

मोहम्मद इस्माइल साहेब ने एक संशोधन प्रस्ताव रखा कि समुदाय को अपने समुदाय के व्यक्तिगत कानून का पालन करने की स्वतन्त्रता दी जाए।[26]

सी० सुब्रह्मण्यम ने इसका विरोध करते हुए कहा कि यह सभा नीति निर्देशक सिद्धान्तों वाले भाग में पहले ही इस बात को स्वीकार कर चुकी है कि एक समान नागरिक संहिता होनी चाहिए।[27]

अनुच्छेद-13 के ये दोनों संशोधन बाद में अस्वीकार कर दिए गये।

अनुच्छेद 18 के बाद 'धर्म से सम्बन्धित अधिकार' शीर्षक प्रारम्भ होता था। प्रो० के० टी० शाह ने इसके प्रारम्भ मे एक नया अनुच्छेद, अनुच्छेद-18 A जोड़ने का संशोधन प्रस्ताव रखा, जो इस प्रकार था –

"The state in India being secular shall have no concern with any religion, creed or profession of faith; and shall observe an attitude of absolute neutrality in all matters relating to the religion of any class of its citizens or other persons in the union."[28]

इसके पक्ष मे तर्क देते हुए उन्होंने कहा, "हम बार-बार यह दावा करते रहे हैं कि भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है और मै समझता हूँ कि इसलिए इसका धार्मिक मामलों तथा किसी विशेष आस्था, समुदाय या विश्वास के क्रियाकलापों से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

इसके द्वारा मैं यह नही कहना चाहता कि धार्मिक मामलों में राज्य की तटस्थता का अर्थ धर्म या विश्वास के नाम पर या किसी विशेष आस्था वाले लोगो के द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं और सेवाओं के बारे में निरी अज्ञानता या उपेक्षा करना नहीं है। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि आस्था या विश्वास के वास्तविक क्रियाकलापों से राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। न ही राज्य के किसी भी कार्य से ऐसा संकेत मिलना चाहिए कि वह किसी एक धर्म का पक्षपात कर रहा है।''[29]

यह अनुच्छेद संविधान सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

अनुच्छेद19 जो कि धर्म तथा अन्तःकरण की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित था, के विषय मे संशोधन-प्रस्ताव रखते हुए बिहार के तजामुल हुसैन ने कहा कि "Practise and propagate religion" के स्थान पर "and practise religion privately" होना चाहिए।''[30]

श्री हुसैन का कहना था कि, ''अपने धर्म का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करने का अधिकार तो लोगों को होना चाहिए, परन्तु इस देश में धर्म के प्रचार का अधिकार देना उचित नहीं है। मै समझता हूँ कि धर्म एक व्यक्ति तथा उसके बनाने वाले के बीच का व्यक्तिगत सम्बन्ध है। इसका दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं। मेरा धर्म मेरा अपना विश्वास है तथा आपका धर्म आपका विश्वास है। मुझे आपके धर्म में हस्तक्षेप क्यो करना चाहिए।

यह एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है और एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।''[31]

तजामुल हुसैन ने अनुच्छेद 19 (1) के प्रथम स्पष्टीकरण को हटा कर उसकी जगह यह वाक्य रखने का संशोधन प्रस्ताव रखा –

"No person shall have any visible sign or mark or name, and no person shall wear any dress whereby his religion may be recognised"[32]

उपर्युक्त दोनों ही संशोधन संविधान सभा द्वारा अस्वीकार कर दिए गए।

श्री के०टी० शाह ने एक संशोधन प्रस्ताव रखते हुए अनुच्छेद 19 (1) में यह जोडने को कहा –

"Provided that no propaganda in favour of any one religion, which is calculated to result in change of faith by the individuals affected, shall be allowed in any school or college or other educational institution, in any hospital or asylum, or in any other place or instituton where persons of a tender age, or of unsound mind or body are liable to be exposed to undue influence from their teachers, nurses or physicians, keepers or guardians or any other person set in authority above them, and which is maintained wholly or partially from public revenues, or is in any way aided or protected by the government of the union, or of any state or public Authority therein."[33]

श्री शाह ने कहा "मुझे इस बात में कोई विरोध नहीं है कि अपने विचारों के अनुरूप धार्मिक क्रियाकलापों को करने की आजादी इस उदारवादी राज्य में दी जाए या दूसरों के सामने अपनी पूजा-पद्धति के लाभ या खूबसूरती को बताने की आजादी हो। मेरी एक मात्र शर्त यह है तथा यह संशोधन भी यही कहना चाहता है कि इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न हो, जैसा कि पहले हो चुका है। ऐसे स्थान या संस्थाएं, जहाँ अपरिपक्व वय के लोग या ऐसे लोग जो कि शारीरिक या मानसिक असमर्थता से पीड़ित है, उन्हें लोभ के वशीभूत किया जाता है और वे ऐसे व्यक्तियो के द्वारा आसानी से प्रभावित किए जा सकते है, जो उनके ऊपर अधिकारिता रखते हैं। उन्हें लाभ देकर तथा एक धर्म विशेष के सम्बन्ध में प्रश्न न करने योग्य तर्क देकर उन्हें प्रभावित किया जा सकता है और इसका परिणाम धर्मान्तरण हो सकता है। यह मत का समुचित परिवर्तन नहीं है बल्कि लोभ का परिणाम है जिसे रोका जाना चाहिए।"[34]

श्री शाह का संशोधन भी संविधान सभा ने अस्वीकार कर दिया। श्री एच०वी०कामथ ने अनुच्छेद 19 (1) के बाद एक नया उपखण्ड जोडने का संशोधन-प्रस्ताव रखा –

"The state shall not establish, endow, or patronize any particular religion, nothing shall however prevent the state from imparting spiritual training or institution to the citizen of the union."[35]

श्री कामथ ने कहा कि इस संशोधन के दो भाग है। पहला भाग धर्म व राज्य के पृथक्करण से सम्बन्धित है तथा दूसरा धर्म की गहन महत्ता से अर्थात् आत्मा के शाश्वत मूल्यों से।

जहॉ तक संशोधन के प्रथम भाग का सम्बन्ध है, यूरोप व इंग्लैण्ड के मध्यकाल का खूनी इतिहास चर्च व राज्य के गठजोड़ के घातक प्रभावों की गवाही देता है। भारत में अशोक के राज्य में, अशोक ने वौद्ध धर्म को राज्य-धर्म का दर्जा दिया और मुझे विश्वास है कि इसी कारण वौद्धों व हिन्दुओं के मध्य मतभेद हुआ तथा अन्ततः वौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया। इसलिए मैं समझता हूँ कि यदि राज्य किसी एक धर्म के साथ खुद को जोड़ेगा तो राज्य में विवाद होगा। राज्य अपने राज्य-क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए वह स्वयं को जनता के किसी एक वर्ग के धर्म के साथ नहीं जोड़ सकता। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि राज्य को धर्मविरोधी या अधार्मिक होना चाहिए। हमने निश्चय ही भारत को एक पन्थनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है। परन्तु मेरे विचार में एक पन्थनिरपेक्ष राज्य न तो ईश्वर-रहित राज्य है और न ही एक अधार्मिक या धर्मविरोधी राज्य।

अव मै 'Religion' शब्द के वास्तविक अर्थ पर आता हूँ। मेरा मत है कि 'धर्म' शब्द सबसे व्यापक अर्थ में 'Religion' के वास्तविक मूल्यों को व्यक्त करता है। 'धर्म' जिसे हमने अपनी संविधान सभा के प्रतीक चिह्न के रूप में स्वीकार किया है तथा जिसे हम अपनी वहस की मुद्रित कार्यवाही के ऊपर पाते हैं – "धर्मचक्र प्रवर्तनाय" यह भावना भारत संघ के नागरिकों के मस्तिष्क में स्थापित करनी

चाहिए। हमारे सभाभवन के वाह्य द्वार के ऊपर संस्कृत मे एक श्लोक लिखा है –

न सा सभा यत्र न मन्ति वृद्धाः

वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्

यह 'धर्म' हमारा 'Religion' होना चाहिए। 'धर्म' जिसके वारे में कहा गया है – 'येनेदं धार्यते जगत्' अर्थात् जिसके द्वारा यह जगत् समर्थित है। हमारे विभिन्न धर्मो के जो महान् सूत्र है, महावाक्य हैं, यथा संस्कृत में, हिन्दू धर्म में 'अहं ब्रह्मास्मि', सूफीवाद मे 'अनाल हक़' तथा ईसाई धर्म में 'I and my father are one' (मैं तथा मेरे पिता एक हैं), ये सिद्धान्त यदि अपनाए जाएं तो ये विश्व में हो रहे हिंसात्मक विवादो को शान्त करने का कार्य करेंगे।''[36]

यह संशोधन भी अस्वीकार कर दिया गया।

प्रो० के० टी० शाह ने एक अन्य मशोधन प्रस्ताव रखा कि अनुच्छेद 19(2b) में 'OR Throwing open Hindu' के वाद 'Jain, Budhist or Christion' शब्द जोड़े जाने चाहिए।[37]

उन्होंने कहा ''मैं नही ममझ पा रहा हूँ कि क्यों यह अधिकार सिर्फ हिन्दू धार्मिक संस्थाओं तक सीमित है। मै ममझता हूँ कि इस खण्ड का उद्देश्य तभी पूरा होगा, जव यह और अधिक सामान्यीकृत किया जाएगा तथा इस देश के सभी प्रमुख धर्मो पर लागू किया जाएगा। जिनके धार्मिक संस्थान कम या अधिक ममान स्रोत या मूल वाले हैं और जो इस कारण अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन नही समझेंगे।

मै ममझता हूँ कि इस संविधान द्वारा प्रत्याभूत धार्मिक स्वतन्त्रता, इसे एक मूल अधिकार वनाना, सभी धार्मिक संस्थाओं को सभी की पहुँच में होना और इसे मभी समुदायों के लिए खोलना, ये वातें एक स्वस्थ संकेत हैं तथा यह इस देश के विभिन्न मतावलम्बियों के मध्य सद्भाव तथा भाई चारे की वृद्धि करेंगी।''[38]

यह संशोधन भी अस्वीकार कर दिया गया।

मोहम्मद इस्माइल साहेब ने संशोधन प्रस्ताव रखा कि अनुच्छेद 19 (2) के एक बाद एक नया खण्ड जोड़ा जाए –

"(3) Nothing in clause (2) of this Article shall affect the right of any citizen to follow the personal law of the group or the community to which he belongs or professes to belong."[39]

यह संशोधन प्रस्ताव रखने की भूमिका बनाते हुए उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत कानून, कल्पना के विस्तार द्वारा, धर्म से सम्बन्धित लौकिक क्रियाओं के अन्तर्गत लाया जा सकता है। अतः मैं यह स्पष्ट करने का प्रस्ताव रखता हूं कि जहाँ तक व्यक्तिगत कानून का प्रश्न है, यह अनुच्छेद, सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा उसके अनुपालन को प्रभावित नहीं करेगा।[40]

इस प्रस्ताव को रखने का विरोध करते हुए श्री के० सन्थानम ने कहा कि यह व्यक्तिगत विधि से सम्बन्धित है तथा यहाँ हम सिर्फ धार्मिक स्वतन्त्रता के विषय पर बात कर रहे हैं।[41]

डॉ० अम्बेडकर ने भी कहा कि यह बिन्दु, नीति निदेशक तत्त्वो पर बहस के दौरान ही निरस्त किया जा चुका है।[42]

यह सशोधन भी अस्वीकार हो गया।

अनुच्छेद पर बहस के दौरान पश्चिम बंगाल के पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्रा ने कहा "प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 19 सभी व्यक्तियों को उनकी रुचि के धर्म को मानने, पालन करने और प्रचार करने के अधिकार की सुरक्षा करता है, परन्तु यह अधिकार राज्य द्वारा नैतिकता, लोकव्यवस्था व सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए सीमित किया जा सकता है। साथ ही यह अधिकार संविधान के इस भाग में दिए गए अन्य अधिकारों से नहीं टकराता है। यहाँ हमारे कुछ मित्रों ने तर्क दिया है कि यह

अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि हम बार-बार यह कह चुके है कि यह एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है तथा धर्म का पालन करने की अनुमति एक मूल अधिकार के रूप में नही दी जानी चाहिए। यह भी कहा गया कि किसी आस्था या धर्म के प्रचार का अतिरिक्त अधिकार सभी प्रकार की समस्याओं तथा विवादों के द्वार खोल देगा, जो कि राज्य के सामान्य जन-जीवन को पंगु बना देगा। मेरा कहना है कि पन्थनिरपेक्ष राज्य की यह अवधारणा पूरी तरह गलत है। जहॉ तक मैं समझता हूँ, पन्थनिरपेक्ष राज्य का तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो किसी धर्म विशेष के व्यक्ति के साथ उसके धर्म या समुदाय के आधार पर कोई भेदभाव नही करेगा। इस अर्थ का सार यह है कि किसी भी धर्म को राज्य का संरक्षण प्राप्त नही होगा।''[43]

अनुच्छेद 20 पर चर्चा में भाग लेते हुए श्री जसपत राय कपूर ने मत व्यक्त किया कि अनुच्छेद में से 'and chantable' शब्द हटा देने चाहिए। उनका कहना था कि इसका शरारतपूर्ण प्रयोग हो सकता है। यदि कोई 'खत्री' किसी प्याऊ का निर्माण कराए, तो वह उसे केवल 'खत्री' जाति या सवर्ण हिन्दुओं के लिए सीमित कर सकता है तथा हिन्दू समुदाय की अन्य जातियों को इससे वंचित कर सकता है। कोई ईसाई अस्पताल ऐसा कर सकता है कि उसमें गैर ईसाइयों का इलाज न हो, चाहे उसे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो। मुसलमान किसी 'सबील' में गैर-मुस्लिमों को पानी देने पर रोक लगा सकते हैं।

ऐसा कहा गया है कि संविधान मे यह शब्द अल्पसख्यकों के हित में रखे गए हैं। मैं यह जानने में असमर्थ हूँ कि कैसे यह अल्पसख्यकों के हित में हैं। मैं यह भी नहीं समझ पाता कि यह कैसे बहुसंख्यकों के हित में है। अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों की तुलना में कम सम्पन्न है। यदि बहुसंख्यक चाहे तो अल्पसंख्यकों से अधिक संख्या में ऐसे सहायतार्थ संस्थान बना सकते हैं और उनका प्रयोग तथा लाभ बहुसंख्यक समुदाय तक सीमित कर सकते हैं। इससे अल्पसंख्यक समुदाय पीड़ित होंगे, बहुसंख्यक नहीं। यह तो बहुसंख्यकों के लिए एक कलंक होगा पर वह दूसरी बात है। अतः मैं डॉ० अम्बेडकर से अपील

करूंगा कि वह इसे स्थगित कर, अल्पसंख्यक समुदायों से बात करके उनकी सहमति से इन शब्दों को हटा लें।[44]

श्री तजामुल हुसैन ने 'अल्पसंख्यक' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए कहा, "मेरे मत में इस देश में कोई अल्पसंख्यक समुदाय नही है। एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यक जैसी कोई चीज़ नहीं होती। यहाँ सभी को समान अधिकार, स्तर तथा कर्त्तव्य प्राप्त है।"[45]

अनुच्छेद 21 जिसमे यह अधिकार था कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे कर देने के लिए बाध्य नही किया जाएगा, जिसकी आय विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिए निश्चित कर दी गई हो, पर चर्चा के दौरान श्री एम० अनन्थसायनम आयंगर ने मत व्यक्त किया कि "एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में, जहाँ राज्य से सभी धार्मिक सम्प्रदायों को समान दृष्टि से देखने तथा दूसरे धर्मों के खर्च पर किसी विशेष सम्प्रदाय को प्रोत्साहन न देने की अपेक्षा की जाती है, वहाँ यह प्रावधान निश्चित रूप से आवश्यक है।"[46]

अनुच्छेद 22 पर संशोधन प्रस्ताव रखते हुए मुहम्मद इस्माइल साहेब ने प्रस्ताव रखा कि यह अनुच्छेद इस प्रकार से होना चाहिए –

"22 No person attending an educational institution maintained, aided or recognised by the state shall be required to take part in any religious instruction in such institution without the consent of such person if he or she is a major or without the consent of the respective parent or guardian if he or she is a minor"[47]

उन्होंने कहा कि "प्रारूप संविधान में अनुच्छेद 22 राज्य द्वारा सहायता प्राप्त तथा राज्य के शैक्षिक संस्थाओ में धार्मिक निर्देश देने पर पूरी रोक लगाता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में राज्य की शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षण देने पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। यदि

राज्य विद्यार्थियों को ऐसे धर्म के अध्ययन के लिए बाध्य करे, जिसे वे नहीं मानते, तो यह एक पन्थनिरपेक्ष राज्य की भावना के विरुद्ध होगा। परन्तु यदि विद्यार्थी या उनके माता-पिता या अभिभावक चाहते हों कि संस्था उन्हें उनके अपने धर्म की शिक्षा दे, तो यह राज्य के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप के विरुद्ध नहीं है।''[48]

प्रो० के० टी० शाह ने संशोधन प्रस्ताव रखा कि अनुच्छेद 22 (1) में "in any educational institution wholly" के बाद "or partly" यह शब्द जोड़े जाने चाहिए तथा यह इस प्रकार होना चाहिए –

"No religious instruction shall be provided by the state in any educationl institution wholly or partly maintained out of state funds."[49]

प्रो० शाह ने मूल उपवन्ध में 'Wholly' शब्द शामिल करने पर आश्चर्य व्यक्त किया तथा कहा कि इसका अर्थ तो यह होगा कि उस संस्था के लिए एक-एक पैसा सरकार द्वारा लगाया गया हो। उन्होंने कहा कि ऐसा होना सम्भव नही है। यदि कोई संस्था सरकार के खर्च पर संचालित हो पर उसे कोई छात्रवृत्ति किसी व्यक्तिगत दान से मिले, तो भले ही यह 1% ही हो तथा बाकी 99% सरकार द्वारा व्यय हो तो इसे 'पूरी तरह' सरकार द्वारा संचालित नही माना जाएगा तथा उसमें धार्मिक शिक्षण दिया जा सकेगा।[50]

डॉ० अम्बेडकर ने एक संशोधन द्वारा अनुच्छेद में से "by the state" इन शब्दों को हटाने का प्रस्ताव रखा तथा कहा कि इससे यह भ्रम हो सकता है कि राज्य के अतिरिक्त अन्य को ऐसी संस्थाओं में धार्मिक निर्देश देने का अधिकार हो सकता है।[51]

श्री तजामुल हुसैन ने अनुच्छेद में से 'by the state' तथा 'Wholly maintained out of state funds' इन शब्दों को हटाने का प्रस्ताव रखा तथा कहा कि वर्तमान स्वरूप मे इस अनुच्छेद का

अर्थ होगा कि ऐसी शैक्षिक संस्थाएं जो आंशिक रूप से राज्य द्वारा सहायता प्राप्त हैं या जो राज्य द्वारा सहायता प्राप्त नही है, उनमे धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। इसका परिणाम यह होगा कि सभी व्यक्तिगत तथा सहायता प्राप्त स्कूल, कॉलेज, पाठशाला व मकतब लड़के लड़कियों को धार्मिक शिक्षण देंगे। यह एक पन्थनिरपेक्ष राज्य में नहीं होना चाहिए।[52]

डॉ० अम्बेडकर ने चर्चा में भाग लेते हुए राज्य द्वारा पूर्णतया सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न देने के पक्ष में तर्क देते हुए कहा –

"इसमें प्रमुख समस्या है – हमारे देश में धर्मो की अधिकता। उदाहरण के लिए, बम्बई जैसे शहर में, जहॉ एक बड़ी जनसंख्या है, जो अलग-अलग धर्मो में विश्वास करती है। यदि बम्बई में नगरपालिका द्वारा चलाया जा रहा स्कूल उदाहरणार्थ लें तो निश्चय ही वहाँ हिन्दू बच्चे होंगे जो हिन्दू धर्म मानते हैं, वहॉ ईसाई, ज़ोराष्ट्रियन व ज्यूश सम्प्रदायों के बच्चे भी होंगे। हिन्दुओं में भी सनातनी, वैदिक, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि विभिन्न प्रकार होंगे। क्या शिक्षण संस्था को सभी सम्प्रदायों में शिक्षा देनी होगी। मेरे विचार से राज्य को इस प्रकार का कार्य सौंपना, असम्भव कार्य करने को कहने के समान है। दुर्भाग्य से हमारे देश में जो धर्म हैं, वह सिर्फ अ-सामाजिक ही नहीं हैं, वल्कि जहाँ तक उनके पारस्परिक सम्बन्धो का प्रश्न है वह समाज विरोधी है। एक धर्म दावा करता है कि उस धर्म की शिक्षाएं ही ईश्वर-प्राप्ति का सही मार्ग बताती है, अन्य सभी गलत है। मुसलमान मानते है कि जो कोई इस्लाम के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता वह 'काफिर' है तथा मुसलमानों के साथ समान व्यवहार के योग्य नहीं है। ईसाई धर्म मे भी ठीक इसी प्रकार का विश्वास किया जाता है। इस तरह की विवादपूर्ण बातें संस्था के शान्तिपूर्ण वातावरण में व्यवधान डालेंगी।"[53]

प्रो० के० टी० शाह ने अनुच्छेद 22 के बाद एक नया अनुच्छेद 22A जोड़ने का संशोधन प्रस्ताव रखा –

"22-A All privilleges, immunities or exemptions of heads of religious organisations shall be abolished."[54] यह संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

अनुच्छेद 23 पर सामान्य चर्चा में भाग लेते हुए श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय ने कहा ''प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 23 अल्पसंख्यकों के लिए एक निश्चित प्रत्याभूति है कि उनकी भाषा, संस्कृति तथा लिपि की हर प्रकार से सुरक्षा की जाएगी। इस देश में विभिन्न प्रकार के अल्पसंख्यक हैं और भाषा, लिपि तथा संस्कृति पर आधारित ये अल्पसंख्यक वस्तुतः इस अनुच्छेद में एक महान् सुरक्षा पाएंगे।''[55]

पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने अनुच्छेद 23 में एक संशोधन प्रस्ताव रखा कि, अनुच्छेद 23 का खण्ड (2) इस प्रकार होना चाहिए –

"(2) No Citizen shall be denied admission into any educational institution maintained by the state or receiving aid out of state funds on grounds only of religion, race, caste, language or any of them."[56] तथा खण्ड-3 के उपखण्ड (a) तथा (b) को अनुच्छेद 23-A बना दिया जाए।

श्री भार्गव ने कहा ''इस संशोधन में मूल अनुच्छेद से तीन भिन्नताएं है। पहला, 'No minority' के स्थान पर 'No citizen' शब्द, दूसरा, सिर्फ राज्य द्वारा संचालित संस्थान ही नही बल्कि जो संस्थान राज्य के कोष से सहायता प्राप्त है, उन्हे भी शामिल किया जाए तथा तीसरे 'religion, community or language' के स्थान पर 'religion, race, caste, language or any of them' शब्द रखे जाएं।

'No minority' शब्द रखने का तात्पर्य यह होगा कि बहुसंख्यकों को उससे अलग दिया जाएगा। इस अध्याय का शीर्षक 'संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार' है, अतः इसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों को स्थान नही मिलना चाहिए। यदि वर्तमान खण्ड (2) को पढ़े, तो यदि अल्पसंख्यकों को कुछ निश्चित अधिकार दिए जाएंगे तो राष्ट्रहित के लिए यह आवश्यक है कि बहुसंख्यकों को इससे

वंचित न किया जाए। मेरे विचार से, शैक्षिक मामलों मे, राष्ट्रहित को दृष्टि में रखते हुए किसी भी अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक के पक्ष में कोई भी भेदभाव न्यायसंगत नही है।

दूसरे परिवर्तन से सिर्फ राज्य द्वारा संचालित ही नहीं, सहायता प्राप्त संस्थान भी इनमें शामिल किए जाएंगे। यहाँ ऐसे संस्थान बहुत बड़ी संख्या में है तथा इससे भविष्य में अल्पसंख्यकों के अधिकार विस्तृत होंगे तथा बहुसंख्यकों के अधिकार सुरक्षित होंगे। अतः यह बहुत ही स्वस्थ तथा राष्ट्र का निर्माण करने वाला संशोधन है।

अब 'Community' शब्द हटाने की बात है क्योंकि 'समुदाय' शब्द का कोई अर्थ नहीं है। यदि यह एक तथ्य है कि एक 'समुदाय' का अस्तित्व कुछ सामान्य विशेषताओं से निश्चित होता है तथा सभी 'समुदाय' धर्म या भाषा में समाहित हैं, तो स्वयं 'समुदाय' शब्द का कोई आधार नहीं है। अतः 'समुदाय' शब्द निरर्थक है तथा इसके स्थान पर 'नस्ल या जाति' होना चाहिए। इससे यह प्रावधान अधिक व्यापक होगा तथा जाति, नस्ल, भाषा या धर्म के आधार पर किसी भेदभाव की अनुमति नहीं होगी।''[57]

यह संशोधन संविधान सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। सम्पूर्ण प्रारूप संविधान पर बहस हो जाने के पश्चात् उद्देशिका के प्रारूप को संविधान सभा के सम्मुख विचारार्थ रखा गया।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने एक संशोधन प्रस्ताव रखते हुए उद्देशिका को इस प्रकार संशोधित करने का सुझाव दिया –

"WE THE PEOPLE OF INDIA, having resolued to constitute India into a SECULAR CO-OPERATIVE COMMONWEALTH to establish SOCIALIST ORDER and to secure to all its citizens —

1. an adequate means of LIVELIHOOD

2 FREE AND COMPULSORY EDUCATION

3 FREE MEDICAL AID

4 COMPULSORY MILITARY TRAINING

do hereby ordain and establish this constitution for India "[58]

उद्देशिका में 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द शामिल करने पर जोर देते हुए उन्होंने कहा, "इस शब्द 'पन्थनिरपेक्ष' को हमारे संविधान में कहीं स्थान नहीं मिला है। यही वह शब्द है, जिस पर हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने सबसे अधिक जोर दिया है। यह शब्द उद्देशिका में सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि इसमे अल्पसंख्यकों का मनोबल ऊँचा होगा।"[59]

श्री प्रसाद का संशोधन संविधान सभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

उद्देशिका में कही गई विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा उपासना की स्वतन्त्रता पर बोलते हुए आचार्य जे० बी० कृपलानी ने कहा "हमने कहा है कि हमे विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था व उपासना की स्वतन्त्रता होगी। यह सभी स्वतन्त्रताएं सिर्फ अहिंसा के आधार पर प्रत्याभूत की जा सकती हैं। यदि हिंसा होगी तो न तो विचार की, न अभिव्यक्ति की, न विश्वास की तथा न ही उपासना की स्वतन्त्रता मिल सकेगी।"[60]

संविधान सभा में प्रारूप संविधान प्रस्तुत करते समय अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपायों की व्यवस्था के सम्बन्ध में बोलते हुए डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने कहा था – "प्रारूप संविधान की इसलिए भी आलोचना की गई है, कि इसमें अल्पसंख्यकों को रक्षोपाय प्रदान किए गए है। इसमें प्रारूप समिति का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। इसने संविधान सभा के निर्णयों का पालन किया है। जहॉ तक मेरा सम्बन्ध है, मझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि संविधान सभा ने अल्पसंख्यकों को सुरक्षा उपाय प्रदान करके बुद्धिमत्ता का कार्य किया है। इस देश में अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक दोनों ही गलत रास्ते पर चल रहे हैं।

बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यको के अस्तित्व को नकारना गलत है। अल्पसंख्यकों द्वारा स्वय को अल्पसंख्यक ही बनाए रखना भी उतना ही गलत है। एक ऐसे हल की आवश्यकता है, जो दोहरे उद्देश्य को पूरा करता है। इसे प्रारम्भ में अल्पसंख्यकों के अस्तित्व को मानना होगा तथा साथ ही बहुसंख्यकों तथा अल्पसंख्यकों को एक-दूसरे में समाहित होने योग्य बनाना होगा। संविधान सभा द्वारा प्रस्तावित हल का स्वागत करना चाहिए क्योंकि यह हल इस दोहरे उद्देश्य को पूरा करता है। मै उन कट्टरपन्थियों से दो बातें कहना चाहूँगा, जो अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान किए जाने के विरुद्ध उन्माद पैदा कर रहे हैं। पहली यह कि अल्पसंख्यक एक विस्फोटक शक्ति हैं, जो यदि फट पड़े तो सम्पूर्ण राज्य के ताने-बाने को नष्ट कर देंगे। यूरोप का इतिहास इस तथ्य का पर्याप्त तथा दुःखद प्रमाण है। जहॉ भारत में अल्पसंख्यक अपना अस्तित्व बहुसंख्यकों के हाथ में सौंपने को राजी हो गए है वहीं आयरलैण्ड के विभाजन के रोकने के लिए हो रही बातचीत के दौरान, रेडमण्ड ने कार्सन से कहा, "कोई भी सुरक्षा-उपाय, जो प्रोटेस्टेण्ट अल्पसंख्यकों के लिए चाहिए, ले लो, पर आयरलैण्ड को एक रहने दो।" कार्सन का उत्तर था, "तुम्हारे सुरक्षा-उपाय भाड में जाएं, हम तुम्हारे द्वारा शासित होना नही चाहते।" भारत में किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग ने यह रुख नहीं अपनाया। उन्होंने निष्ठापूर्वक बहुसंख्यकों के शासन को स्वीकार कर लिया, जो कि साम्प्रदायिक बहुसंख्यक है, राजनैतिक बहुसंख्यक नहीं। अब यह कर्त्तव्य बहुसंख्यकों को समझना चाहिए कि अल्पसंख्यको के साथ भेदभाव न करे। अल्पसंख्यक वर्ग रहेंगे या समाप्त हो जाएंगे, यह बहुसंख्यको की इस आदत पर निर्भर करता है। जिस क्षण बहुसख्यक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध भेदभाव की आदत छोड देंगे, अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का कोई आधार नहीं रहेगा। वह समाप्त हो जाएंगे।"[61]

सम्पूर्ण प्रारूप संविधान पर बहस हो जाने के पश्चात् जब इसे पारित करने हेतु संविधान सभा के समक्ष रखा गया तो अधिकांश सदस्यों ने इस पर मत व्यक्त करते हुए यह माना कि यह संविधान एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का निर्माण करता है। सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता, अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपायों की व्यवस्था तथा साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन व आरक्षण को समाप्त करना, ये ऐसी बातें थीं, जिनके

आधार पर इसे एक पन्थनिरपेक्ष संविधान माना गया । इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं –

पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्रा ने कहा, "हमने अलगाववाद को इस देश से पूरी तरह हटा दिया है। पृथक् निर्वाचन को हमने समाप्त कर दिया है। हमने भाषा, लिपि, संस्कृति तथा और जो कुछ भी किसी समुदाय का विशेष भाग है तथा वह उसे अपने लिए सुरक्षित रखना चाहता है, उसकी रक्षा का अधिकार दिया है।"[62]

श्री अनन्तसायनम आयंगर ने कहा, "अल्पसंख्यक समस्या आसानी से हल नही हो सकती थी परन्तु धार्मिक तथा अन्य अल्पसंख्यक वर्गो की एकता को धन्यवाद, जिसके कारण पृथक् निर्वाचन, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने एक समुदाय को दूसरे समुदाय से अलग किया था तथा शासन किया था, को छोड़ दिया गया। अल्पसंख्यकों ने पृथक् निर्वाचन को सीटों के आरक्षण के साथ संयुक्त निर्वाचन हेतु छोड़ा, परन्तु बाद में सीटों के आरक्षण को भी छोड़ दिया। अब यह बहुसंख्यक समुदाय पर निर्भर करता है कि वह दिखाए कि किसी के भी साथ इस आधार पर भेदभाव नही किया जाएगा कि वह किसी विशेष अल्पसंख्यक वर्ग का है।"[63]

श्री वी० ए० मण्डलोई ने कहा, "प्रारूप संविधान इस सभा में प्रस्तुत होने के बाद, तथाकथित अल्पसंख्यकों के लिए जो रक्षोपाय संविधान सभा ने प्रदान किए थे, वह उन्होंने स्वेच्छापूर्वक छोड़ दिए। संयुक्त निर्वाचन तथा आरक्षण न होना, ये प्रावधान अल्पसंख्यकों पर थोपे भी जा सकते थे पर हमने पाया कि भारत के विभाजन के बाद अल्पसंख्यक इस बात से सन्तुष्ट थे कि हमारी सरकार एक पन्थनिरपेक्ष सरकार होगी, धर्म या अन्य किसी कारण से कोई भेदभाव नही होगा। पूर्णतया संतुष्ट होने के कारण अल्पसंख्यक आगे आए तथा उनके नेताओं ने खुलकर दावा किया कि वे कोई रक्षोपाय नहीं चाहते। यह हृदय परिवर्तन एक महान् उपलब्धि है तथा अब संयुक्त निर्वाचन होगा। इसका अर्थ यह है कि अल्पसंख्यक आश्वस्त हैं कि भारत में उनके लिए समान लाभ तथा समान अधिकार होंगे जैसा

कि संविधान ने प्रदान किया है।''[64]

श्री शङ्करराव देव का मत था – ''हमारे संविधान में ऐसी वहुत सी वातें है, जिन पर हम तथा हमारी आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकती हैं । पहली वात है, राष्ट्र की एकता, जिसे हमारे वर्तमान संविधान में शामिल किया गया है। हमने पृथक् निर्वाचन तथा अल्पसंख्यको के लिए सीटो के आरक्षण, जिसने हमारी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक एकता को नष्ट कर दिया था, से एक वार में हमेशा के लिए मुक्ति पा ली है।''[65]

श्री कमलापति तिवारी का मत था कि पृथक् निर्वाचन को समाप्त करना कोई गर्व करने लायक बात नहीं है। यह तो आवश्यक था। उन्होंने कहा – ''पृथक् निर्वाचन हमारे देश को नष्ट करने के लिए जिम्मेदार था। हमारे पिछले डेढ सौ साल का इतिहास इस वात का प्रमाण है कि अन्य कोई भी समस्या हमारे देश को नष्ट करने के लिए उतनी जिम्मेदार नहीं है, जितनी कि पृथक निर्वाचन । अकेले पृथक् निर्वाचन ने ही साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। इसी ने द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त को जन्म दिया। पृथक् निर्वाचन ने ही देश के विभाजन के विचार को जन्म दिया जो अन्ततः देश के विभाजन तक पहुँचा । यह सब केवल पृथक् निर्वाचन के कारण हुआ। क्या अभी भी हमें पृथक् निर्वाचन को स्वीकार करना चाहिए था।''[66]

श्री अलादी कृष्णस्वामी अय्यर ने कहा – ''इस वात को पूरी तरह समझने के वाद कि साम्प्रदायिक निर्वाचन तथा लोकतन्त्र एक साथ नहीं रह सकते तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन लोकतन्त्र के मुक्त विकास को रोकने का एक हथियार था, जिसे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपनाया. इस सभा ने हमारे प्रधानमन्त्री तथा सरदार पटेल के योग्य नेतृत्व में साम्प्रदायिक निर्वाचन को समाप्त कर दिया?''[67]

डॉ० वी० पट्टाभिसीतारमैया का कहना था – ''हमने संयुक्त निर्वाचन द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्राप्त किया है।''[68]

श्री जसपत राय कपूर तथा श्रीमती हंसा मेहता ने समान नागरिक संहिता के प्रावधान पर प्रसन्नता प्रकट की। श्री कपूर का कहना था – "हम सम्पूर्ण देश के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त करेंगे। यह प्रसन्नता की बात है। यह एकता के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।"[69]

श्रीमती मेहता ने कहा "मेरे विचार में समान नागरिक संहिता राष्ट्रभाषा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमारे देश में बहुत से व्यक्तिगत कानून हैं और ये व्यक्तिगत कानून आज देश को बॉट रहे हैं। अतः यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि यदि हम एक राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो हमारी एक नागरिक संहिता हो।"[70]

श्री अजीत प्रसाद जैन ने संविधान के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा – "अल्पसंख्यकों का प्रश्न हमारे लिए एक कठिन तथा उलझा हुआ प्रश्न था। भविष्य में कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग न तो विधायिका और न ही सेवाओं में सीटों के आरक्षण के लिए जाना जाएगा। सिर्फ अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण मिलेगा, वह भी धर्म या जाति के आधार पर नहीं, बल्कि उनके तुलनात्मक पिछडेपन के आधार पर होगा। अल्पसंख्यकों को धर्म की स्वतन्त्रता तथा अपनी संस्कृति, भाषा तथा लिपि के विकास का अधिकार होगा, परन्तु राजनीतिक अधिकारो के मामले में न तो उनके पक्ष में और न ही उनके विरूद्ध कोई भेदभाव होगा। अतः अल्पसंख्यकों को अपने भविष्य को लेकर भयभीत या चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नही है। इस अर्थ मे हमने जिस राज्य की स्थापना की है, उसे आमतौर पर पन्थनिरपेक्ष राज्य कहा जाता है।"[71]

श्री टी० जे० एम० विल्सन ने पन्थनिरपेक्षता को एक बड़ी उपलब्धि बताते हुए कहा – "हमारे संविधान की जो सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, वह है – इसका पन्थनिरपेक्ष चरित्र तथा उससे उत्पन्न हुआ पन्थनिरपेक्ष राज्य। हमने राज्य के पन्थनिरपेक्ष चरित्र को प्राप्त किया है तथा संविधान में इसे प्रदान किया है। परन्तु राज्य के इस पन्थनिरपेक्ष चरित्र पर खतरे के बादल मँडरा रहे हैं। मैं केवल प्रार्थना तथा

विश्वास कर सकता हूँ कि गज्य की प्रगतिवादी शक्तियो तथा हमारे महान् तथा प्रिय प्रधानमन्त्री के निर्देशन तथा नेतृत्व में यह वादल छँट जाएंगे और हमारा देश विनाश तथा मुसीवत के दौर से नही गुजरेगा, जिससे कि यूरोप तथा एशिया के अधिकॉश देश पन्थनिरपेक्ष राज्य को प्राप्त करने के पहले गुजर चुके हैं।"[72]

काज़ी सैयद करीमुद्दीन ने कहा – "मुझे इस वात की खुशी है कि भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य होने का दावा करता है। अनुच्छेद 9 से 30 तक के प्रावधान से धर्म, नस्ल, जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा तथा लोक नियोजन के अवसरों मे तथा सम्पत्ति रखने तथा बेचने में समानता होगी।"[73]

उन्होने इस बात पर कुछ दुःख प्रकट किया कि सीटों का आरक्षण समाप्त करने का उनका प्रस्ताव तो मान लिया गया, परन्तु आनुपातिक प्रतिनिधित्व की उनकी मॉग नहीं मानी गई।

सरदार हुकुम सिंह ने भी कहा – "पृथक निर्वाचन समाप्त कर दिया गया और इसे सिक्खों ने प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दिया। जनसंख्या के आधार पर आरक्षण भी समाप्त हो गया। परन्तु आर्थिक सुरक्षा उपाय स्वेच्छा से नही छोडे गए।"[74]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश सदस्यों ने धर्म के पालन व प्रचार की स्वतन्त्रता तथा संस्कृति, भाषा तथा लिपि के संरक्षण के अधिकार को पन्थनिरपेक्षता का द्योतक माना। परन्तु कुछ सदस्यों का मत था कि एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का धर्म से कुछ भी सम्वन्ध नही होना चाहिए। यदि हम तटस्थ दृष्टि से देखें तो संविधान ने धर्म पालन व प्रचार की छूट दी है, परन्तु स्वयं किसी धर्म को संरक्षण नही दिया है या किसी धर्म को राज्य का धर्म नहीं माना है। कुछ सदस्यों ने अल्पसंख्यकों को दिए गए रक्षोपायों को पन्थनिरपेक्षता के विरुद्ध माना है, परन्तु ध्यान देने योग्य वात यह है कि यह रक्षोपाय धार्मिक व सांस्कृतिक आधार पर दिए गए हैं, न कि राजनीतिक आधार पर । राजनीतिक रूप से प्रदत्त

विशेषाधिकार यथा साम्प्रदायिक निर्वाचन तथा धर्म के आधार पर विधायिका में सीटों के आरक्षण को समाप्त कर दिया गया। यह पन्थनिरपेक्षता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कदम था। एक दु:ख का विषय यह है कि समान नागरिक संहिता का विचार नीति निदेशक तत्त्वों में ही स्थान पा सका तथा यही कारण है कि आज भी इसे अपनाया नही जा सका है तथा अल्पसंख्यकों के व्यक्तिगत कानून लागू हैं। यह निश्चित ही पन्थनिरपेक्ष राज्य की परिकल्पना से मेल नही खाता।

सन्दर्भ सङ्केत

1. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re · Aims & Objects, Page - 57
2. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 59
3. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re . Aims & Objects, Page - 59
4. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re . Aims & Objects, Page - 66-67
5. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 67, 69-70
6. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 116
7. Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 116

8 Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re Aims & Objects, Page - 121-122

9 Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re Aims & Objects, Page - 87

10 Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re Aims & Objects, Page - 91-92

11 Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 105

12 Constituent Assembly Debates, vol-1, Resolution Re : Aims & Objects, Page - 98

13. Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 488

14 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 488-489

15 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 489-490

16 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 490

17 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 491

18 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 492

19 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 502

20 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 505

21 Constituent Assembly Debates, vol-3, Interim Report on Fundamental Rights, Page - 508

22 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constiution, Page - 399-400

23. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page - 401-402

24 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page - 402

25. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-716.

26 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-721.

27. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-721.

28 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-815.

29 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-816

30. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-817.

31 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-817-818

32 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft constitution, page-818

33 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-820

34 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-820.

35 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-824.

36 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-824-825.

37 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-828.

38. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-828

39. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-830.

40 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-829.

41 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-829

42 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-830

43 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-831

44. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-861-862

45 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-862-863

46 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-866

47 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-866

48. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-866-867

49 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-868

50 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-868-869

51. Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-871.

52 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-871

53 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-883-864.

54 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-888.

55 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-904

56 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-897

57 Constituent Assembly Debates, vol-7, Draft Constitution, Page-897-898

58 Constituent Assembly Debates, vol-10, Draft Constitution, Page-447

59 Constituent Assembly Debates, vol-10, Draft Constitution, Page-448

60 Constituent Assembly Debates, vol-10, Draft Constitution, Page-453.

61 Constituent Assembly Debates, vol-3, Motion re Draft Constitution, Page-39.

62 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-654-65.

63 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-661-662.

64 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-674

65 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-730

66 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-862

67 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-835

68 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-944.

69 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-762

70 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-797

71 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-807.

72 Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-857.

73. Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-724.

74. Constituent Assembly Debates, vol-11, Draft Constitution, Page-752.

पञ्चम अध्याय

भारतीय संविधान में पन्थनिरपेक्षता के तत्त्व

अनेक मतो के मानने वाले भारत के लोगों की एकता स्थापित करने के लिए संविधान में पन्थनिरपेक्ष राज्य का आदर्श रखा गया है। इसका अर्थ है कि राज्य सभी मतो की समान रूप से रक्षा करेगा और स्वयं किसी भी मत को राज्य के धर्म के रूप में नहीं मानेगा। राज्य के इस पन्थनिरपेक्ष उद्देश्य को अब विनिर्दिष्ट रूप से उद्देशिका में संविधान (42वाँ संशोधन) अधिनियम द्वारा 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द अन्तःस्थापित करके सुनिश्चित किया गया है। पन्थनिरपेक्षता हमारे संविधान के मूल ढाँचे का एक भाग है।[1] हमारे संविधान में किसी भी मत को 'राजकीय चर्च' मानने की व्यवस्था नहीं है। ऐसा कुछ अन्य संविधानों में है। दूसरी ओर उद्देशिका मे जिस विशेष, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का वचन दिया गया है, उसे अनुच्छेद 25 से 28 में धार्मिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित सभी नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में समाविष्ट करके क्रियान्वित किया गया है। ये अधिकार, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार देते हैं तथा राज्य की ओर से और इसके साथ ही राज्य की विभिन्न संस्थाओं की ओर से सभी धर्मो के प्रति पूर्ण निष्पक्षता सुनिश्चित करते है। भारतीय लोकतन्त्र की सफलता का यह एक श्रेष्ट उदाहरण है जबकि उसके पडोसी जैसे पाकिस्तान बांग्लादेश, श्रीलंका और म्यांमार (वर्मा) ने धर्मविशेष को राज्य का धर्म घोषित किया है।

एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का ऐसा अपना कोई धर्म नहीं होता, जिसे "राज्य-धर्म" कहा जा सके। यह सभी धर्मो के प्रति समान व्यवहार करता है। संविधान की उद्देशिका भारत के सभी नागरिकों को विचार, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान करती है। संविधान के अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 30 में किए गए उपबन्ध पन्थनिरपेक्षता की इस अवधारणा को ठोस स्वरूप प्रदान करते हैं। यह अनुच्छेद सभी को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रत्याभूत करते हैं। सेंट जेवियर्स कॉलेज वनाम गुजरात राज्य[2] मामले में उच्चतम

न्यायालय ने कहा है – "यद्यपि 'पन्थनिरपेक्ष राज्य' शब्द संविधान में स्पष्ट रूप से व्याख्यायित नही है लेकिन इसमें कोई संदेह नही है कि संविधान-निर्माता एक ऐसे ही राज्य की स्थापना करना चाहते थे।"

'पन्थनिरपेक्ष' शब्द भारतीय संविधान की उद्देशिका में 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। संविधान की उद्देशिका में इस शब्द को अंतःस्थापित करने से कल्पनातीत उलझनें पैदा हो गई है। 42वें संशोधन के प्रणेताओं ने इस शब्द से जो भी अर्थ प्रकट करने का आशय रखा हो, यह तो स्पष्ट है कि ये शब्द अस्पष्ट है। संविधान में इस शब्द का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, इसलिए इस अस्पष्टता का हितबद्ध राजनीतिक गुटों द्वारा लाभ उठाया जाएगा और गणतन्त्र की जनता के मस्तिष्क में भ्रम पैदा किया जाएगा। जनता पार्टी ने संविधान (45वाँ संशोधन) विधेयक (1978) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 366 का संशोधन करके एक स्पष्टीकरण जोड़ते हुए इसकी व्याख्या करनी चाही थी, परन्तु राज्य सभा में काँग्रेसी विपक्ष ने यह नहीं होने दिया।

'पन्थनिरपेक्ष' शब्द रखने के विषय में यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 25-30 के बारे में अब तक यही समझा गया था कि उनका लक्ष्य 'पन्थनिरपेक्षता' है, किन्तु विधि की दृष्टि में 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द स्पष्ट अर्थ नही देता है। अनुच्छेद 25-30 के उपबन्ध धार्मिक स्वतन्त्रता और उदारता के विभिन्न पहलुओं पर बल देते हैं। 'पन्थनिरपेक्षता' सामान्य बोलचाल का शब्द है। किसी स्पष्ट परिभाषा के अभाव में 'पन्थनिरपेक्षता' का प्रयोग अनिर्बन्धित साम्प्रदायिकता के अस्त्र के रूप में किया जा सकता है या धर्मान्धता या धर्मविरोधी के रूप मे भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसका अर्थ 'सर्वधर्म समभाव' भी हो सकता है।

जनता पार्टी की सरकार ने 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए 45 वें संशोधन विधेयक 1978 के खण्ड 44 में यह उपबन्ध किया था –

"इस संविधान की उद्देशिका में –

(1) 'पंन्थनिरपेक्ष' विशेषण के साथ युक्त होने पर 'गणराज्य' से ऐसा गणराज्य अभिप्रेत है, जिसमें सभी धर्मो के प्रति समान आदर का भाव है, ."

इस खण्ड 44 को श्रीमती गाँधी के दल (कांग्रेस-आई) ने नामंजूर कर दिया। यह दल सत्ता में नही था किन्तु यह दल राज्य सभा में बहुमत में था।

डॉ० दुर्गादास बसु के शब्दों में "केवल राजनीतिज्ञ ही समझ सकते हैं कि प्रस्तावित स्पष्टीकरण का विरोध क्यों किया गया क्योंकि 'सब धर्मो के प्रति समान आदर' (या सर्वधर्म समभाव) संविधान के अनुच्छेद 25 से 30 तक के उपबन्धों का सही सार संक्षेप है।

यह आशा की जा सकती है कि उच्चतम न्यायालय अपना वह विनिश्चय याद रखेगा, जिसमें यह कहा गया है कि उद्देशिका का अवलम्ब किसी शक्ति या मर्यादा के अधिष्ठायी स्रोत के रूप मे नहीं किया जा सकता। उनका स्रोत तो कोई उपबन्ध ही हो सकता है। अतएव अनुच्छेद 25-30 के पाठ में कुछ जोड़कर 'पन्थनिरपेक्ष' शब्द का अर्थविस्तार नही किया जा सकता।"[3]

संविधान के अन्तर्गत भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है, जो सभी धर्मो के प्रति तटस्थ व निष्पक्ष है। पन्थनिरपेक्ष राज्य इस विचार पर आधारित होता है कि राज्य का विषय केवल व्यक्ति और व्यक्ति के बीच सम्बन्ध से है, व्यक्ति और ईश्वर के वीच सम्बन्ध मे नहीं। व्यक्ति और ईश्वर के बीच का सम्बन्ध व्यक्ति के अन्तःकरण का विषय है। संविधान के कई उपबन्धों (अनु०25-28) द्वारा सभी धर्मों के प्रति निष्पक्षता का दृष्टिकोण सुनिश्चित किया गया है।

अनुच्छेद(25-28), जिनके द्वारा धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है, के क्रमवार विस्तृत विश्लेषण द्वारा भारतीय संविधान के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को आसानी से समझा जा सकता है।

अनुच्छेद 25

(अन्तःकरण की और धर्म के अबाध रुप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतन्त्रता)

(1) लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।

(2) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो –

(क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रिया-कलाप का विनियमन या निर्बन्धन करती है,

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबन्ध करती है।

स्पष्टीकरण – 1 कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के मानने का अङ्ग समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण – 2 खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में हिन्दुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अन्तर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा।

इस अनुच्छेद में प्रयुक्त **अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रता** का तात्पर्य यह है कि अनुच्छेद में लगाए गए निर्बन्धनों या विनियमों के अधीन रहते हुए हमारे संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को यह मूल अधिकार प्राप्त है कि वह अपने अन्तःकरण के विचार के अनुसार धार्मिक विश्वास रखे और उन धार्मिक

आस्थाओं और विश्वासो को ऐसे आचारो के द्वारा प्रकट करे जिन्हें धर्म की स्वीकृति है तथा अन्य व्यक्तियो के ज्ञानवर्धन के लिए अपने धार्मिक विचारो का प्रचार करें।

विभिन्न न्यायिक निर्वचनो द्वारा अनुच्छेद 25-26 द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति का विस्तार कर दिया गया है। न्यायालय के अनुसार अनुच्छेद 25 और 26 मे केवल आस्था या विश्वास के विषयों पर ही आचरण करने या उनका प्रचार करने की स्वतन्त्रता नही है वल्कि वे सभी धार्मिक कर्मकाण्ड और संस्कार करने की स्वतन्त्रता है, जो उस सम्प्रदाय के अनुयायियो द्वारा धर्म का अङ्ग समझी जाती हैं।[1] धर्म आस्था विश्वास का विषय है। धर्म का ईश्वरवादी होना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ जैन तथा बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी है। प्रत्येक धर्म का आधार कुछ विश्वास, आस्थाएं और सिद्धान्त होते हैं, जिन्हें उस धर्म के अनुयायी आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए सहायक मानते हैं, किन्तु यह धारणा उचित नहीं है कि विश्वासमात्र ही धर्म हैं।[4] धार्मिक आचार या धार्मिक विश्वास के अनुगमन मे किए गए कृत्य धर्म के अङ्ग है। किसी सिद्धान्त विशेष पर आस्था या विश्वास रखना भी धर्म के भाग है।[4] प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या सगठन को यह निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार है कि कौन से कर्मकाण्ड और उत्सव, उनके धर्म के सिद्धान्तो के अनुसार आवश्यक हैं।[5] किसी धर्म का सारवान भाग क्या है, यह प्राथमिक रूप मे उस धर्म के सिद्धान्तों के द्वारा ही ज्ञात किया जाता है।[4] राज्य के विनियम उन विषयों में हस्तक्षेप नही कर सकते जो सारवान रूप मे धार्मिक है।[6] न्यायालय को यह निर्णय करने का अधिकार है कि कोई विशिष्ट कर्मकाण्ड या उपासना पद्धति उस धर्म की मान्यताओं के अनुसार आवश्यक है या नहीं।[7] कोई विशिष्ट कर्मकाण्ड या पूजापद्धति उस धर्म का सारवान अङ्ग है या नही यह ज्ञात करने के लिए न्यायालय उस धर्म के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकता है। अग्रलिखित उदाहरणों में न्यायालय द्वारा विभिन्न कर्मकाण्डो व पूजा पद्धति के विषय में दिए गए कुछ निर्देश उल्लिखित हैं –

(1) इस्लाम मे गाय की वलि देना अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में प्रतिपादित नहीं किया गया है।[9]

(2) गुरुद्वारे की सम्पत्ति के प्रशासन के लिए समिति के सदस्यों का निर्वाचन करना केवल सिक्खो का कार्य नही हो सकता।[10]

(3) किसी न्यास के रचयिता की इच्छाओं के अनुसार कार्य करने के लिए न्यासी को निर्देश देने के लिए या न्यास के वजट को उपान्तरित करने के लिए धार्मिक न्यास वोर्ड को शक्ति दी गई थी। यह शक्ति संयुक्त मठ या मन्दिर के धार्मिक आचारों के सम्यक् रूप से सम्पन्न करने की स्वतन्त्रता मे हस्तक्षेप नही है।[11]

ऐसे संगठन या सोसाइटी (यथा अरविन्द सोसाइटी), जिनका उद्देश्य किसी दर्शन का प्रचार करना है, अनुच्छेद 25-26 का संरक्षण नही ले सकते।[12]

धर्म को अबाध रूप से मानने या आचरण करने का अर्थ है – आस्था को निर्वाध रूप से शब्द या कार्य द्वारा अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता। यदि यह स्वतन्त्रता न हो तो अन्त:करण की स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। अन्त:करण के विषय राज्य के सम्पर्क मे तभी आते है, जव वह अभिव्यक्ति वन जाते है। मानने की स्वतन्त्रता का अर्थ है कि आस्थावान व्यक्ति अपनी निष्ठा सार्वजनिक रूप से प्रकट कर सकता है। आचरण की स्वतन्त्रता का अर्थ है उसे व्यक्तिगत और सार्वजनिक अर्चना के रूप मे प्रकट करना।[4]

अनुच्छेद 25 खण्ड (1) के अनुसार अन्तःकरण व धर्म की स्वतन्त्रता **सभी व्यक्तियों** के लिए है। इसका तात्पर्य यह है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार केवल भारतीय नागरिको तक ही सीमित नही है, अपितु इसका विस्तार सभी व्यक्तियो पर है, जिसमें अन्यदेशीय भी[4] सम्मिलित है तथा व्यक्तिश या संस्थाओं के माध्यम से अपने अधिकारों का प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी।[4] अत: किसी धार्मिक संस्था प्रमुख इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त अधिकार के उल्लघन का परिवाद कर सकता है।[4] यदि मठाधिपति के विरुद्ध दुर्विनियोजन आदि के आरोपों के विरुद्ध जाँच के लम्बित रहने

के दौरान मठ के दैनन्दिन कार्य के लिए कोई प्रशासक नियुक्त किया जाता है, तो इससे मठाधिपति के अधिकार का उल्लघन नही होता।[4]

अपने **धर्म का प्रचार करने की स्वतन्त्रता** का आशय है अपने धार्मिक विचारों को दूसरों तक सम्प्रेषित करने तथा अपने धार्मिक सिद्धान्तो का प्रकाशन करने की स्वतन्त्रता। परन्तु किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त नही है कि वह दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार का दवाव डालकर धर्मान्तरण करने के लिए प्रेरित करे। इस अनुच्छेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का समान अधिकार है। अतः यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को धर्म-परिवर्तन के लिए विवश करता है, तो यह दूसरे की अन्तःकरण की स्वतन्त्रता में सीधा हस्तक्षेप होगा तथा इस अनुच्छेद का उल्लंघन होगा। कोई भी व्यक्ति अपने अन्तःकरण के अनुसार स्वेच्छापूर्वक दूसरे धर्म को अङ्गीकार कर सकता है, परन्तु किसी को धर्मान्तरण के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता। विधानमण्डल ऐसे किसी भी प्रयास को कानून वनाकर प्रतिषिद्ध कर सकता है। इस सम्वन्ध में रवि स्टेनिस्लास वनाम मध्य प्रदेश राज्य[13] मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय (जनवरी 1977) उल्लेखनीय है। इस मामले में मध्य प्रदेश राज्य द्वारा निर्मित एक अधिनियम, जो **किसी भी व्यक्ति को वल, कपट या लोभ द्वारा धर्मान्तरित करने या ऐसा करने के प्रयास को दण्डनीय अपराध वनाता था,** की वैधानिकता को एक ईसाई पादरी ने इस आधार पर चुनौती दी थी कि यह अधिनियम उनके धर्म के प्रचार की स्वतन्त्रता के मूल अधिकार का हनन करता है। उडीसा राज्य ने भी मध्यप्रदेश के ही समान इसी प्रकार का एक अधिनियम, पहले ही पारित कर रखा था। इसे भी ईसाई मतावलम्वियों द्वारा चुनौती दी गई थी, उच्चतम न्यायालय ने दोनो अधिनियमों पर एक साथ विचार करते हुए, ईसाई मतावलम्वियों के तर्कों को पूर्णतया निरस्त कर दिया तथा इस सम्वन्ध में कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए, जो भारत के सभी न्यायालयों के लिए वाध्यकारी है।

(1) अनुच्छेद 25 (1) में 'प्रचार' का अधिकार सभी धर्मो के प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के सिद्धान्तो का प्रसार (पक्षपोषण या उपदेश द्वारा) करने का अधिकार देता है। किन्तु इसमें दूसरे को

धर्मान्तरित करने का अधिकार नही है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को उसी उपबन्ध 25 (1) के द्वारा प्रत्याभूत अन्तःकरण की स्वतन्त्रता प्राप्त है, जिसका अवलम्ब ईसाइयों ने लिया है।

(2) अनुच्छेद 25 (1) के अधीन प्रत्येक मनुष्य की अन्तःकरण की समान स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म चुन सकता है और उसमें आस्था रख सकता है और उसे बल, कपट, लोभ से या फुसलाकर किसी अन्य धर्म मे धर्मान्तरित नही किया जा सकता। वह स्वेच्छा से कोई अन्य धर्म स्वीकार कर सकता है, परन्तु बल, कपट, लोभ या फुसलाने से स्वेच्छा समाप्त हो जाती है।

(3) यह उपधारणा कर भी लें कि किसी विशिष्ट धर्म को प्रत्येक साधन द्वारा जिसमें धर्मान्तरण भी सम्मिलित है, अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने का अधिकार है, तो भी राज्य का यह अधिकार और कर्त्तव्य है कि यदि धर्मान्तरण का क्रियाकलाप लोकव्यवस्था सदाचार या स्वास्थ्य के विरूद्ध है तो वह हस्तक्षेप करे, क्योकि अनुच्छेद 25 (1) मे धर्म की स्वतन्त्रता लोक व्यवस्था, सदाचार व स्वास्थ्य के अधीन है।

(4) यदि यह धर्मान्तरण करने का अधिकार मान भी लिया जाए तो यह अधिकार प्रत्येक धर्म को प्राप्त होगा। यदि प्रत्येक धार्मिक समुदाय अन्य धर्मावलम्बियों को धर्मान्तरित करने का अभियान बल, कपट लोभ या फुसलाने का प्रयोग करके चलाए, तो लोक-शान्ति भङ्ग होना अवश्यभावी है। अतएव राज्य को संविधान मे यह अधिकार प्रदत्त है या यह कहना उचित होगा कि यह कर्त्तव्य सौंपा गया है कि यदि कोई व्यक्ति बल, कपट, लोभ या फुसलाने के द्वारा धर्मपरिवर्तन करता है तो धर्मान्तरण का (जिसमें धर्मान्तरण का प्रयत्न भी सम्मिलित है) प्रतिषेध करके या उसे दण्डित करके लोक-व्यवस्था बनाए रखे। मध्य प्रदेश और उड़ीसा के अधिनियमो मे यही किया गया है।

इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने ईसाई पक्षकारों द्वारा रखे गए सभी तर्कों को अस्वीकार करते हुए मध्य प्रदेश और उड़ीसा के अधिनियमों की संवैधानिक वैधता को पुष्टि की है।

अनुच्छेद 25 (1) के द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता पर इसी खण्ड द्वारा दो निर्बन्धन

लगाए गए है–

प्रथम. यह स्वतन्त्रता **लोक-व्यवस्था, सदाचार व स्वास्थ्य** के अधीन है। इसका आशय यह है कि धर्म के नाम पर कोई भी ऐसा कार्य करने की अनुमति नही दी जा सकती जो लोक-व्यवस्था, नैतिकता या सार्वजनिक स्वास्थ्य के विरुद्ध हो। धार्मिक स्वतन्त्रता लोकहित के अधीन है। अन्य किसी वर्ग की भावनाओं का जानवूझ कर अनादर करने की अनुमति नही दी गई है।[6] यह निर्वन्धन लगाने का उद्देश्य यह है कि धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग, अपराध या असामाजिक कार्यो यथा मानव-वलि, वालवध, मनुष्य क्रय-विक्रय आदि के लिए न किया जा सके। इस प्रकार हानिकारक सामाजिक कुप्रथाओं का प्रतिषेध करने की राज्य की शक्ति धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार से प्रभावित नही होती।

पूर्वोक्त रवि स्टेनिस्लास वनाम मध्यप्रदेश राज्य[13] के मामले में हमने देखा कि उच्चतम न्यायालय ने मध्यप्रदेश व उड़ीसा राज्य द्वारा वलपूर्वक धर्मान्तरण कराने को रोकने के लिए पारित अधिनियमों को इस आधार पर भी संवैधानिक घोषित किया कि उनका उद्देश्य लोक-व्यवस्था को भङ्ग होने से वचाना है। वलात् धर्मान्तरण से लोक-व्यवस्था भङ्ग होने की आशङ्का रहती है, जिसे रोकने के लिए कानून वनाने का अधिकार राज्य को है।

गुलाम अव्वास वनाम उत्तर प्रदेश राज्य[14] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय द्वारा दो धार्मिक समुदायों के वीच विवाद को निपटाने के उद्देश्य से कव्रगाह को एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाने के लिए दिया गया निर्देश लोकव्यवस्था के हित में किया गया है तथा धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नही है। इस मामले में शिया और सुन्नियों के वीच वाराणसी के दोसीपुर मुहल्ले में एक पूजास्थल को लेकर लम्वे समय से विवाद चल रहा था। सुन्नियों की दो कव्रें शियाओं की भूमि पर स्थित थीं। इसको लेकर दोनों समुदायों के वीच वहुत तनाव था। इस समस्या का स्थायी हल निकालने के लिए न्यायालय ने दोनों समुदायो के सदस्यों की एक समिति का गठन किया। समिति ने सिफारिश की

कि सुन्नियो की दो कब्रगाहों को शिया के पूजाम्थल मे हटाकग ही इम ममम्या को हल किया जा मकता है। सुन्नी मम्प्रदाय के लोगो ने इम सिफारिश को इम आधाग पग चुनौती दी कि इममे उनकी अनुच्छेद 25 औग 26 के अधीन प्राप्त धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लघन होता है। किन्तु न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि ममिति की सिफारिशो को लागू कग्ने मे अभ्यर्थियो की धार्मिक म्वतन्त्रता का उल्लंघन नही होता है। अनुच्छेद 25 औग 26 द्वाग प्रदत्त म्वतन्त्रता आत्यन्तिक (Absolute) नहीं वल्कि सापेक्ष है औग सार्वजनिक व्यवस्था वनाए ग्खने के लिए उस पग निर्बन्धन लगाए जा मकते हैं। कब्रगाह को एक म्थान से दूसरे स्थान पग हटाने का आदेश लोक-व्यवम्था के हित में है औग दोनो सम्प्रदायो के वीच शान्ति एवं सौहार्द वनाए ग्खने में महायक है। दण्ड-प्रक्रिया संहिता की धाग 176 (3) के अधीन भी शव के दफनाने के स्थान में हस्तक्षेप न कग्ने का अधिकाग भी पूर्ण (Absolute) नही है औग उसके अधीन भी अपगध का पता लगाने के लिए शव को निकाला जा मकना है। यह धाग मभी मम्प्रदायो के लोगो पग ममान रूप मे लागू होती है। इममे सुन्नी ममुदाय के धर्म-स्वातन्त्र्य पग कोई आघात नही पहुँचता है। कुगन मे कब्र को हटाने को कही मना नही किया गया है।

आचार्य जगदीश्वगनन्द अवधूत वनाम पुलिम कमिश्नग कलकना[15] के मामले मे उच्चतम न्यायालय द्वाग यह अभिनिर्धाग्नि किया गया कि आनन्दमार्गियो द्वाग मार्वजनिक म्थानो मे भयानक शस्त्रो औग कपालो के माथ ताण्डव नृत्य कग्ना उनके मम्प्रदाय के अनुयायिओं के धर्म का अनिवार्य कर्मकाण्ड नही है। अतः दण्ड-प्रक्रिया संहिता की धाग 144 के अधीन 'लोक-व्यवम्था' व 'मदाचाग' के हिन मे उमे प्रनिपिद्ध किया जा मकता है। आनन्दमार्ग कोई पृथक् धर्म नही है। वह हिन्दू धर्म के मूल दर्शन का अनुमग्ण कग्ता है किन्तु वह एक धार्मिक मम्प्रदाय है। ताण्डव नृत्य का प्राग्म्भ हाल ही में किया गया है। यदि यह मान भी लिया जाए कि ताण्डव नृत्य आनन्दमर्गियों का एक धार्मिक कर्मकाण्ड है तो भी उन्हें मार्वजनिक म्थलों पग उसे उक्त रूप में मनाने का कोई अधिकाग नहीं है। धाग 144 के अधीन पाग्ति आदेश आनन्दमार्गियों के जुलूम निकालने या मभा कग्ने के अधिकार पग गेक नहीं लगाता

है। यह केवल तलवार, भाला, बरछी और मानव-कपालों को लेकर जुलूस निकालने पर, जिससे 'लोक-व्यवस्था' व 'सदाचार' को खतरा उत्पन्न हो जाए, रोक लगाता है, जो कि विधिमान्य है।

अनुच्छेद 25 (1) द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता पर दूसरा निर्बन्धन यह है कि यह स्वतन्त्रता **इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए** प्राप्त होगी। **'इस भाग'** का अर्थ है संविधान का भाग-3, जिसमें मूल अधिकार है। इसका तात्पर्य यह है कि धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का उपभोग अन्य मूल अधिकारों के अधीन रहते हुए ही किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में कुछ न्यायिक निर्णय दिए गए हैं – खण्ड (1) द्वारा प्रत्याभूत स्वतन्त्रता इस अनुच्छेद के खण्ड (2) द्वारा राज्य को प्रदत्त शक्ति के अधीन है।[16] इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता भाग-3 के अन्य उपबन्धों के अधीन है, इसलिए अनुच्छेद 31(2) के अधीन राज्य के सर्वोपरि अधिकार से इस अनुच्छेद ने धार्मिक सम्पत्ति को कोई छूट नहीं दी है।[17] धार्मिक सम्पत्ति अनुच्छेद 19(2)-(6) के अधीन सामूहिक हित के लिए लगाए गए निर्बन्धनों के और अनुच्छेद 19(1) के विभिन्न उपखण्डों द्वारा अन्य नागरिकों को प्रत्याभूत अधिकारों के अधीन रहेगी।[18]

अनुच्छेद 25(2) के दो उपखण्डों के द्वारा भी 25(1) के द्वारा प्रत्याभूत धार्मिक स्वतन्त्रता पर कुछ निर्बन्धन लगाए गए हैं। अनुच्छेद 25(2) के उपखण्ड (क) के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता राज्य द्वारा बनाए गए ऐसे विनियमों के अधीन है, जो किसी आर्थिक, वित्तीय या अन्य लौकिक क्रिया-कलाप से सम्बद्ध है। जो धार्मिक प्रथाओं के अधीन तो है किन्तु अन्तःकरण की स्वतन्त्रता में नहीं आते हैं। खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में धार्मिक आचरणों का विनियमन करने का प्रयास नहीं किया गया है। इन आचरणों को हस्तक्षेप से तब तक संरक्षित किया जाता है, जब तक कि वे सार्वजनिक स्वास्थ्य या सदाचार के विरुद्ध न हों। जो क्रियाकलाप धार्मिक आचरणों से सम्बन्धित तो हैं, किन्तु वास्तव में आर्थिक सामाजिक या राजनैतिक हैं, उन्हें विनियमित किया जा सकता है।[6]

इस उपखण्ड को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि धार्मिक आचरणों का वर्गीकरण किया जाए – वे जो धर्म का अभिन्न अङ्ग है तथा वे जो इस प्रकार के नहीं हैं।[19] कोई धार्मिक आचरण धर्म का अभिन्न अङ्ग है या नही, इसका निर्धारण न्यायालय द्वारा किया जाएगा। इस विषय में उस धार्मिक सम्प्रदाय का मत अन्तिम नहीं होगा।[20]

न्यायालय के अन्तिम निर्णय के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को यह तय करने की पूरी छूट है कि कौन से संस्कार और उत्सव उस धर्म की मान्यताओं के अनुसार आवश्यक हैं। विधायिका और कार्यपालिका इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती।[8]

पश्चिम वङ्गाल राज्य वनाम आशुतोष लाहिड़ी[21] के मामले में एक हिन्दू संगठन ने पश्चिम वङ्गाल सरकार के उस आदेश की वैधानिकता को चुनौती दी थी, जिसके अन्तर्गत मुसलमानों को पश्चिम वङ्गाल पशु-हत्या नियन्त्रण आदेश 1950 लागू होने से छूट दी गई थी कि वे वकरीद के अवसर पर गाय काट सकते है। उनका अभिकथन था कि ऐसी छूट मुसलमानों को केवल धार्मिक प्रयोजनों के लिए ही प्रदान की जा सकती है। उच्चतम न्यायालय ने हनीफ कुरैशी[9] के मामले में दिए अपने निर्णय का अनुसरण करते हुए यह निर्णय दिया कि बकरीद के अवसर पर गाय काटना मुस्लिम समुदाय के धर्म का आवश्यक तत्त्व नहीं है अत उन्हे ऐसी छूट देना अवैधानिक है।

अनुच्छेद 25(2) के उपखण्ड (ख) के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता सामाजिक सुधार के या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों के लिए खोलने के लिए राज्य द्वारा किए गए उपायों के अधीन है।

सामाजिक सुधार का अभिप्राय है ऐसे व्यवहार या मान्यताओं को मिटाना जो देश की प्रगति मे वाधा पहुँचाते है और धर्म के अभिन्न अङ्ग नहीं हैं। राज्य हिन्दुओं मे द्विविवाह या वहुविवाह का प्रतिषेध कर सकता है क्योंकि यदि पहली पत्नी से पुत्र प्राप्त न हो तो पुत्र पाने के लिए दूसरा विवाह करना

हिन्दू धर्म की अनिवार्य मान्यता नही है। दत्तक पुत्र लेकर भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। **सती** या **देवदासी** जैसी कुप्रथाओं को रोकने का औचित्य भी इसी खण्ड मे है।[19] उच्चतम न्यायालय ने बहुमत में यह अभिनिर्धारित किया कि केवल धार्मिक आधार पर जाति से जो निष्कासन किया जाता है, उस पर प्रतिबन्ध लगाने से सामाजिक सुधार या कल्याण नहीं होता। निष्कासन का अधिकार अनुच्छेद 26(ख) के अधीन धार्मिक सम्प्रदाय का अधिकार है। यदि कही पर धार्मिकेतर आधार पर, जैसे किसी अभद्र सामाजिक नियम या रीति के भङ्ग के आधार पर[19] या देशीय विधि के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के लिए, निष्कासन का विधि द्वारा प्रतिषेध किया जाता है तो ऐसी विधि संवैधानिक है।[19]

सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गो के लिए खोलने से आशय यह है कि इसमें जाति, अस्पृश्यता, सामाजिक असमानता आदि आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा और हिन्दू-मन्दिर , सिक्ख, गुरुद्वारा, जैन-मन्दिर या बौद्ध-विहार को हिन्दुओं के सभी वर्गो के लिए खोल दिया जाएगा। परन्तु यह अधिकार आत्यन्तिक नही है। हिन्दू समाज के प्रत्येक सदस्य को सार्वजनिक मन्दिर में पूजा करने के लिए प्रवेश करने का अधिकार है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मन्दिर दिन-रात खुला रहे या प्रत्येक हिन्दू को वह सब सेवाएं करने दी जाए तो मन्दिर की अर्चना विधि के अनुसार केवल विशेष दीक्षा प्राप्त लोग ही कर सकते है।[22] अनुच्छेद 25(2)(ख) को अनुच्छेद 26(ख) (अपने धर्म-विषयक कार्यो का प्रबन्ध करने का अधिकार) के साथ पढ़ा जाना चाहिए और इस प्रकार निर्वचन होना चाहिए जिससे अनुच्छेद 26(ख) निरर्थक न हो जाए।[16]

अनुच्छेद – 26

(धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता)

लोकव्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी अनुभाग को –

(क) धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

(ख) अपने धर्मविषयक कार्यो का प्रबन्ध करने का,

(ग) जङ्गम और स्थावर सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और

(घ) ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का, अधिकार होगा।

अनुच्छेद 25 का विस्तार सभी व्यक्तियो पर है। किन्तु अनुच्छेद 26 केवल धार्मिक सम्प्रदायों को ही अपनी परिधि में लेता है। यही कारण है कि अनुच्छेद 25-26 दोनों के अधिकार लोक-व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है, किन्तु अनुच्छेद 25 संविधान के भाग-3 के अन्य उपबन्धों के भी अधीन है। अनुच्छेद 26 भाग-3 के अधीन नहीं है।[18]

सम्प्रदाय का साधारण अर्थ है – व्यक्तियों का एक समूह जिसे एक नाम से वर्गीकृत किया जाता है। कोई धार्मिक पन्थ या निकाय जिसकी समान आस्था और संगठन हो और जिसे एक अलग नाम से जाना जाता हो, वह धार्मिक सम्प्रदाय कहलाएगा।[23]

इस अनुच्छेद में न केवल धार्मिक सम्प्रदाय का ध्यान रखा गया है। बल्कि उसके अनुभाग का भी। अतएव अनुच्छेद 26 के अर्थ में मठ भी धार्मिक सम्प्रदाय होगा।[23] इसी प्रकार आनन्दमार्ग भी सम्प्रदाय है।[15] किन्तु अरविन्द सोसायटी नहीं है।[24] इस अनुच्छेद से धार्मिक सम्प्रदाय की सम्पत्ति का अर्जन करने के राज्य के अधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ता।[25] अर्थात् राज्य सरकार उनकी सम्पत्ति का अर्जन कर सकती है।

जब किसी धार्मिक पन्थ को धार्मिक सम्प्रदाय मान लिया जाता है (जैसे शैव) तो वह पृथक् धर्म होने का दावा नहीं कर सकता।[15]

अनुच्छेद-26(क) के अन्तर्गत **धार्मिक संस्थाओं की स्थापना व पोषण का अधिकार** है। यहाँ 'स्थापना,' व 'पोषण' शब्दों को मिलाकर पढ़ा जाना चाहिए। पोषण के अधिकार में उस संस्था का

प्रशासन चलाने का अधिकार भी सम्मिलित है। किन्तु यह पोषण का अधिकार तभी उत्पन्न होगा जब किसी धार्मिक सम्प्रदाय ने किसी संस्था की स्थापना की हो या उसे जन्म दिया हो।[26]

अनुच्छेद-26(ख) के अन्तर्गत **अपने धर्मविषयक कार्यो का प्रबन्ध करने का अधिकार** है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को धर्म से सम्बद्ध विषयों का प्रबन्ध करने के अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है। इन मामलों में राज्य तभी हस्तक्षेप कर सकेगा जब सम्प्रदाय अपने अधिकार का इस प्रकार उपयोग करता है कि लोक व्यवस्था, सदाचार या स्वास्थ्य में हस्तक्षेप होता है। अनुच्छेद-26(ख) के अधीन अधिकार पर दूसरी परिसीमा यह है कि वह अनुच्छेद-17 (अस्पृश्यता का अन्त)[19] तथा अनुच्छेद 25(2)(ख) के अधीन है, अर्थात् सभी हिन्दुओ के सार्वजनिक मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार।[22] इनके अतिरिक्त संविधान ने अन्य कोई मर्यादाएं नहीं लगाई। अतः अनुच्छेद 26(ख) के अधीन किसी धार्मिक सम्प्रदाय का धार्मिक आधार पर किसी सदस्य को बहिष्कृत करने के अधिकार को इस आधार पर नही छीना जा सकता या निर्बन्धित नही किया जा सकता कि उससे ऐसे सदस्य के सिविल अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा।[27]

खण्ड (घ) के अधीन सम्पत्ति के प्रशासन के अधिकार को विधि द्वारा विनियमित किया जा सकता है। किन्तु खण्ड (ख) के अधीन धर्मविषयक कार्य के प्रबन्ध के अधिकार को विधान-मण्डल द्वारा लोकव्यवस्था, नैतिकता या स्वास्थ्य के आधार पर न्यास के प्रयोजनों को प्रवृत्त करने के लिए ही विनियमित किया जा सकता है, अन्य किसी कारण से नहीं।[28]

प्रबन्ध के अधिकार में न्यास सम्पत्ति या उसकी आय का धर्म के लिए, और धार्मिक प्रयोजनों के लिए, संस्थापक द्वारा बताए गए उद्देश्यों के लिए खर्च करने का अधिकार है। न्यास सम्पत्ति या निधि को किसी अन्य प्रयोजन के लिए व्यय करना इस खण्ड द्वारा धार्मिक संस्था को प्रत्याभूत अधिकार का अवांछनीय उल्लंघन होगा, चाहे संस्थापक के मूल उद्देश्य ऐसा करके भी पूरे किए जा सकते हैं।[6]

जहाँ कोई विधि न्यास के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए और न्यासी द्वारा कुप्रबन्ध तथा अपव्यय रोकने के लिए है, वहाँ उस विधि से खण्ड (ख) का उल्लंघन नहीं होता।[28]

इस अनुच्छेद 26(ख) मे धर्म का अर्थ केवल धार्मिक विश्वास नही है। उसमें वे आचार भी सम्मिलित है जो उस सम्प्रदाय द्वारा अपने धर्म के भाग माने जाते है।[10,28,29] प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या संगठन को इस बात की पूरी छूट है कि वह यह निश्चित करे कि कौन से संस्कार और समारोह उसके धर्म के तत्त्वों के अनुसार आवश्यक है।[10] किन्तु न्यायालय को यह अवधारित करने का अधिकार है कि कोई विशेष संस्कार या आचार किसी विशिष्ट धर्म के तत्त्वों के आधार पर आवश्यक समझा जाता है या नही।[15,20,28,29]

निम्नलिखित के बारे मे यह अभिनिर्धारित हुआ है कि ये धर्म के विषय है –

(1) धर्म से सम्बन्धित समारोह विधि के अनुसार वे व्यक्ति जो मन्दिर में पूजा के लिए प्रवेश कर सकते हैं,[5] वे किस स्थान पर खड़े होने के हकदार हैं,[5] किस समय पर जनता को प्रवेश दिया जाएगा और किस प्रकार पूजा की जाएगी,[30] ये सब धर्म के विषय हैं।

(2) अनुच्छेद 26(ख) से प्राप्त अधिकार के अधीन धार्मिकेतर आधार पर जाति से निष्कासित करने के अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता। किन्तु धार्मिक आधार पर जाति से निष्कासन करना संवैधानिक होगा यदि वह किसी सम्प्रदाय के तत्त्वों का सर्वसाधारण अङ्ग है जैसे दाऊदी बोहरा सम्प्रदाय के दाई की शक्ति।[19]

परन्तु मन्दिर के लौकिक कार्यो को धर्म का अङ्ग नहीं माना गया है। वीर किशोर देव बनाम उड़ीसा राज्य[31] के मामले में न्यायालय ने उस अधिनियम को वैध घोषित किया जिसके अनुसार पुरी के राजा के मन्दिर से लौकिक कार्यो का प्रबन्ध लेकर एक समिति को सौंप दिया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इससे धार्मिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं हुआ।

अनुच्छेद 26(ग) के अनुसार प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को **सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार** है। इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी धार्मिक निकाय की सम्पत्ति को विधि के प्राधिकार से अर्जित नही किया सकता।[30] किन्तु यह अवश्य ध्यान रखा जाएगा कि ऐसे अर्जन से धार्मिक संस्था का अस्तित्व ही न समाप्त हो जाए।

इस खण्ड द्वारा प्रत्याभूत अधिकार आत्यन्तिक नही है। उसे राज्य युक्तियुक्त रूप से विनियमित कर सकता है। परन्तु इससे अधिकार का सार प्रभावित नही होना चाहिए।[18] समाज कल्याण के हित मे विनियमित करने की राज्य की शक्ति भाग 4 के नीति निर्देशक तत्त्वो (अनुच्छेद-37)से प्राप्त होती है। न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह परस्पर प्रतियोगी विभिन्न हितो मे सन्तुलन बनाए रखे।[18] उदाहरण के लिए, जहॉ सुसङ्गत विधि द्वारा विहित धार्मिक सीमा मे अधिक भूमि कब्जे में है या भाग 4 के निर्देशों के क्रियान्वयन के लिए। किन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि धर्म के आवश्यक अङ्ग में हस्तक्षेप न हो।[18]

अनुच्छेद 26(घ) **सम्पत्ति के प्रशासन का अधिकार** प्रत्याभूत करता है। इस खण्ड के अधीन धार्मिक सम्प्रदाय को यह अधिकार है कि वह अपने समर्पण के प्रयोजनो के लिए सम्पत्ति को स्वामित्व मे रखे अर्जन करे और उस पर प्रशासन करे।[31] यह सब विधि के अनुसार होना चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ कि राज्य न्यास सम्पत्ति का प्रशासन वैध रूप मे बनाई गई विधि के अनुसार ही विनियमित कर सकता है। किन्तु राज्य द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार सम्पत्ति पर प्रशासन करने का अधिकार धार्मिक सम्प्रदाय को रहेगा। यदि किसी विधि द्वारा धार्मिक सम्प्रदाय की सम्पत्ति के प्रशासन के अधिकार को छीन लिया जाता है तो यह अनुच्छेद 26(घ) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार का उल्लंघन होगा।[32]

यदि मठाधिपति के विरुद्ध दुर्विनियोग और इस प्रकार के अन्य आरोपों की जॉच के लम्बित रहने के दौरान मठ के दिन-प्रतिदिन प्रशासन के लिए कोई नियुक्ति की जाती है तो इसमे अधिकार का

उल्लंघन नहीं होगा।[33]

राज्य द्वारा जो विनियमन किया जाता है, उसमें धर्म के आवश्यक अङ्ग में हस्तक्षेप नहीं हो सकता।[6]

धर्म कोई राय या विश्वास मात्र नहीं है। इसकी वाह्य अभिव्यक्ति भी होती है। धार्मिक विश्वास के अनुसरण में धार्मिक कृत्य या व्यवहार, धार्मिक विश्वास या आस्था के अनिवार्य अङ्ग हैं। किसी बाहरी प्राधिकारी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि विशेष समय पर या विशेष रीति से किए जाने वाले धार्मिक संस्कार और समारोह धर्म के आवश्यक अङ्ग नहीं हैं। राज्य न्यास सम्पदा के प्रशासन की आड में उन्हें निर्बन्धित या प्रतिषिद्ध नहीं कर सकता। इन धार्मिक कृत्यों के सम्बन्ध में कितना व्यय किया जाए यह धार्मिक संस्था की सम्पत्ति के प्रशासन का विषय है। यदि इन पर होने वाले व्यय से विन्यास सम्पत्तियों का क्षय हो जाएगा या संस्था का अस्तित्व सङ्कट में पड़ जाएगा तो राज्य के अभिकरण विधि के अनुसार उचित नियन्त्रण कर सकते है। संविधान के अनुच्छेद 26(घ) में इस विस्तार तक संरक्षण दिया गया है।[6]

राज्य अनुच्छेद 26 का प्रयोग करते हुए ऐसी विधि नहीं बना सकता जिसमें सम्प्रदाय की सम्पत्ति का ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयोग करने का उपबन्ध किया जाए जिन्हें धर्म के आधार पर सम्प्रदाय से निकाल दिया गया हो।[19]

अनुच्छेद – 27

(किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतन्त्रता)

किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनके आगम किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विनियोजित किए जाते हैं।

इस अनुच्छेद द्वारा किसी विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के उत्थान या पोषण के लिए व्यय के संदाय

के लिए कर के विनियोजन को प्रतिपिद्ध किया गया है। इसका कारण सुस्पष्ट है। हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष है। संविधान मे धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति दी गई है जो व्यक्तियों के लिए भी है और समूहो के लिए भी। हमारे संविधान की नीति के यह विरुद्ध है कि लोकनिधि मे किसी विशिष्ट धर्म या विशिष्ट धर्म के सम्प्रदाय की अभिवृद्धि या पोपण के लिए धन खर्च किया जाए।[4]

परन्तु राज्य धार्मिक संस्थाओं के लौकिक प्रशासन को विनियमित करने के लिए खर्च के लिए फीस लगा सकता है। ऐसे मामलो में अनुच्छेद 27 नही लागू होता क्योकि ऐसे फीस लगाने मे किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय का कोई पक्षपात नहीं होता।[34]

अनुच्छेद - 28

(कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतन्त्रता)

(1) राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

(2) खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

(3) राज्य से मान्यताप्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।

अनुच्छेद 28 चार प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का उल्लेख करता है –

(1) राज्य द्वारा पूर्णतया पोषित संस्थाएँ – इनमें किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है।

(2) राज्य द्वारा मान्यताप्राप्त संस्थाएँ – इनमे धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है यदि व्यक्ति ने या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने इसके लिए अपनी सहमति दे दी हो।

(3) राज्यनिधि से सहायता पाने वाली संस्थाएँ – इनमें भी व्यक्ति या अवयस्क के मामले में उसके संरक्षक द्वारा सहमति दे देने पर धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।

(4) राज्य द्वारा प्रशासित किन्तु किसी धार्मिक न्यास के अधीन स्थापित संस्थाएँ – इनमें धार्मिक शिक्षा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रता की पूर्वोक्त प्रत्याभूति के अतिरिक्त कुछ अन्य उपबन्ध भी संविधान में विद्यमान हैं, जो राज्य के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को पुष्ट करते है, यथा अनुच्छेद 29 तथा 30, जिनमें संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार दिए गए है।

अनुच्छेद – 29

(अल्पसंख्यक वर्गो के हितों का संरक्षण)

(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वञ्चित नहीं किया जाएगा।

खण्ड (1) नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को, जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने की प्रत्याभूति प्रदान करता है। यदि ये अल्पसंख्यक अपनी भाषा व संस्कृति को सुरक्षित

रखना चाहते है तो राज्य उनके मार्ग में बाधक नही बनेगा। इस खण्ड का यह अभिप्राय है कि यदि कोई सांस्कृतिक अल्पसंख्यक है जो अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखना चाहते है, तो राज्य उन पर कोई दूसरी संस्कृति अधिरोपित नही करेगा, चाहे वह स्थानीय हो या अन्यथा। जहॉ किसी राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित विधि का विस्तार समस्त राज्य पर है वहॉ उस पूरे राज्य की जनसख्या के प्रति निर्देश से यह अवधारित किया जाएगा कि अल्पसंख्यक कौन है।[35] अल्पसंख्यक समुदाय अपनी भाषा आदि को शिक्षण संस्था के माध्यम मे ही बनाए रख सकता है। खण्ड (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार का आवश्यक अङ्ग यह है कि उस सम्प्रदाय को अपनी रुचि की शिक्षण संस्था स्थापित करने और चलाने का अधिकार हो। यदि ऐसी संस्था को राज्य से सहायता प्राप्त होती है तो वह खण्ड (2) द्वारा लगाई गयी परिसीमा के अधीन होगा।[35] भाषा को बनाए रखने के अधिकार मे उस भाषा के संरक्षण के लिए आन्दोलन चलाने का अधिकार भी है। यह आन्दोलन राजनैतिक भी हो सकता है।[36] इस खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार आत्यन्तिक है। अनुच्छेद 19(1) में उल्लिखित अधिकारों के समान इस पर युक्तियुक्त निर्बन्धन नहीं लगा सकते। इसलिए नागरिकों के किसी वर्ग द्वारा अपनी भाषा को बनाए रखने के लिए चलाए गए राजनैतिक आन्दोलन को लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 123(3) के अन्तर्गत 'भ्रष्ट आचरण' नही बनाया जा सकता।[36]

खण्ड (2) – खण्ड (1) नागरिकों के एक अनुभाग को संरक्षण प्रदान करता है, किन्तु खण्ड (2) नागरिकों को दिया गया व्यक्तिगत अधिकार है। यह किसी समुदाय के सदस्य के रूप में नही दिया गया। यह खण्ड ऐसे व्यथित व्यक्ति को उपचार प्रदान करता है जिसे प्रवेश देने मे इनकार उसके धर्म के आधार पर किया गया है। यदि प्रवेश पाने के इच्छुक नागरिक को इस आधार पर प्रवेश नही दिया गया है कि उसके पास आवश्यक शैक्षिक अर्हताएं नही हैं तो वह यह नही कह सकता है कि अनुच्छेद 29(2) के अधीन उसके अधिकार का अतिलंघन हुआ है। किन्तु यदि उसके पास शैक्षिक अर्हताएं हैं फिर भी उसे केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें मे किसी के आधार पर प्रवेश देने मे इंकार किया

जाता है तो इस खण्ड के अधीन उसके अधिकारों का स्पष्ट रूप से हनन हो जाता है।[37] दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि वह धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान से भिन्न किसी आधार पर आरक्षण को वारित नहीं करता। उदाहरणार्थ, विदेश स्थित भारतीय दूतावासों के सरकारी कर्मचारियों के बच्चों के लिए।[38]

यह खण्ड सभी नागरिकों को संरक्षण प्रदान करता है चाहे वे बहुसंख्यक वर्ग के हों या अल्पसंख्यक वर्ग के।[39]

इस खण्ड मे प्रयुक्त केवल **धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा** का आशय है –

(1) शैक्षिक संस्थाएं ऐसी शर्तें लगा सकती हैं जो इस खण्ड में विनिर्दिष्ट नहीं हैं। जैसे-पूर्व प्रशिक्षण, शारीरिक क्षमता, टीका लगा होना, क्षतिकारक संसर्गों के प्रभाव में न होना आदि।[38]

(2) यह अनुच्छेद किसी संस्था का अनुशासन आदि के आधार पर प्रवेश देने में इनकार करने या छात्र को निष्कासित करने का अधिकार नहीं छीनता।[40] वरन विवेकशक्ति का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।

(3) यह अनुच्छेद ऐसा कोई मूल अधिकार नहीं प्रदान करता कि उच्च शिक्षा संस्थाओं में जैसे आयुर्विज्ञान में प्रवेश की परीक्षा हिन्दी में होनी चाहिए।[41]

अनुच्छेद - 30

(शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गो का अधिकार)

(1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गो को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(1क) खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबन्ध करने वाली विधि बनाते समय, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी सम्पत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम इतनी हो

कि उस खण्ड के अधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बन्धित या निराकृत न हो जाए। (खण्ड 1(क) 44वें संविधान संशोधन अधिनियम. 1978 द्वारा संविधान में अन्तःस्थापित किया गया।)

(2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि यह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबन्ध में है।

इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अन्तर्गत प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय को यह अधिकार प्रत्याभूत किया गया है कि वह अपने समुदाय के बच्चों को अपने द्वारा चलाई जाने वाली शिक्षा संस्थाओं में. अपनी भाषा में शिक्षा प्रदान करे। यदि इस अधिकार का उल्लंघन होता है. तो पीड़ित संस्था इस उल्लंघन के विरुद्ध उपचार की माँग कर सकती है।[42]

इस खण्ड द्वारा दो अधिकार प्रदान किए गए है – (1) संस्था स्थापित करने का अधिकार तथा (2) संस्था का प्रशासन करने का अधिकार। स्थापना के अधिकार का अर्थ है – संस्था की रचना का अधिकार और प्रशासन के अधिकार का अर्थ है – संस्था के क्रियाकलाप में बाहरी हस्तक्षेप का अभाव जिससे कि संस्था के संस्थापक या उनके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति संस्था को वैसा बना सकें. जैसा वह ठीक समझे और जो उनके विचार में समुदाय और संस्था के हित में सर्वोत्तम हो।

सर्वोच्च न्यायालय के एक महत्त्वपूर्ण निर्णय[42] के अनुसार अल्पसंख्यक समुदाय का अपनी भाषा में शिक्षा देने का अधिकार राज्य के शिक्षा का माध्यम तय करने के अधिकार के ऊपर है। अनुच्छेद-351 में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रोन्नयन के लिए राज्य को विशेष निर्देश दिया गया है। किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनुच्छेद 29 या 30 द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

न्यायालय को यह अधिकार है कि वह इस बात का निर्धारण कर सकता है कि कोई संस्था अल्पसख्यको द्वारा स्थापित की गई है या नहीं और उसका वास्तविक उद्देश्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना है या अल्पसंख्यकों के नाम पर धनोपार्जन करना है।[43]

अनुच्छेद-30(1) के लागू होने की कुछ शर्तें हैं। जो समुदाय इस अनुच्छेद का लाभ उठाना चाहता है, उसे यह प्रदर्शित करना होगा कि (1) वह धार्मिक या भाषिक अल्पसंख्यक है, और (2) उसने इस संस्था की स्थापना की थी। इन दो शर्तों को पूरा करने पर ही वह उसका प्रशासन चलाने के अधिकार का दावा कर सकता है।[26] यदि ये दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं तो इस अधिकार का विस्तार उन संस्थाओं पर भी होता है जिनकी स्थापना संविधान के पूर्व हुई थी और उन पर भी जो संविधान के पश्चात् की हैं।[44] ऐसी संस्था की स्थापना करने के अधिकार का प्रयोग संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् ही किया जा सकता है।[26]

यदि शिक्षा संस्था की स्थापना धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग ने नही की है तो वह उसके प्रशासन के अधिकार का दावा नही कर सकता चाहे वह संविधान के प्रारम्भ के पूर्व उस संस्था का प्रशासन चलाता रहा हो।[26] स्थापना और प्रशासन चलाना ये दोनो क्रियाएं एक साथ होगी। यदि दोनो शर्ते एक साथ पूरी नही होती है तो विधि पर यह आक्षेप नही हो सकता कि वह अनुच्छेद 30(1) का उल्लंघन करती है।[26]

इन दोनो अधिकारो की दशा मे यह आवश्यक नही है कि शिक्षा संस्था अनन्य रूप मे अल्पसंख्यको के लाभ के लिए हो और गैर अल्पसंख्यक वर्ग के एक भी सदस्य को उसमे प्रवेश नही दिया गया हो।[44]

इस खण्ड मे प्रयुक्त **अपनी रुचि की** वाक्याश का तात्पर्य है कि इस खण्ड की अन्तर्वस्तु उतनी ही व्यापक है, जितनी की उस समुदाय विशेष की रुचि।[44] इस खण्ड के द्वारा प्रदत्त अधिकार का दावा करने के लिए यह आवश्यक नही है कि उस संस्था का पाठ्यक्रम केवल धर्म की शिक्षा या अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा तक ही सीमित रहे। ऐसी संस्था में पढ़ाए जाने वाले विषयों पर कोई मर्यादा नहीं है। ऐसी संस्था में साधारण शिक्षा देने पर कोई प्रतिबन्ध नही है।[44,45]

अनुच्छेद-30(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार पर स्पष्ट रूप में कोई मर्यादा नहीं लगाई गई है परन्तु यह अधिकार आत्यन्तिक नहीं हो सकता। ऐसा नहीं हो सकता है कि राज्य को अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित संस्थाओं के प्रशासन को विनियमित करने का कोई भी अधिकार न हो। कुछ मर्यादाए तो अधिकार में ही निहित होती है। प्रशासन के अधिकार में कुप्रशासन का अधिकार नहीं है।[44] ऐसा होने पर अनुच्छेद का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा क्योंकि इस अनुच्छेद का उद्देश्य तो है शिक्षा के क्षेत्र में अल्पसंख्यक संस्थाओं की गुणवत्ता का विस्तार।

राज्य अनुच्छेद-30(1) के अधीन आने वाली संस्था को सहायता या मान्यता देने की शर्त के रूप में, स्वच्छता, शिक्षको की क्षमता, अनुशासन आदि सुनिश्चित करने के प्रयोजनो के लिए युक्तियुक्त विनिमय अधिरोपित कर सकता है।[44] इसी प्रकार शिक्षा का मानक[46] भी प्रवन्ध का भाग नहीं है। परन्तु यह विनियमन इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि व्यवहार में अनुच्छेद-30(1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार समाप्त ही हो जाए।[44,45] राज्य ऐसे निर्वन्धन लागू नहीं कर सकता जो शिक्षा संस्था के रूप में उस संस्था के हित में सम्बन्धित न हो चाहे वह साधारण लोकहित में क्यों न हो।[47]

अल्पसंख्यक समुदाय के अपनी रुचि की संस्थाओं की स्थापना करने और प्रशासन चलाने के अधिकार का राज्य के अनुच्छेद 41, 45 और 46 में दिए गए अनुदेशो के अधीन शिक्षा का प्रसार करने और नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के कार्य में तालमेल बैठाया जाना चाहिए।[48]

राज्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वह नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करे। राज्य के लिए यह सम्भव है कि वह यह कार्य राज्य के स्वामित्वाधीन या राज्य की सहायताप्राप्त पाठशालाओं द्वारा यह कार्य पूरा करे। अनुच्छेद-45 यह अपेक्षा नहीं करता कि यह कार्य अल्पसंख्यक समुदायों को हानि पहुँचाकर पूरा किया जाएगा और इसके लिए अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित पाठशालाओं का अर्जन किया जाएगा या उनका प्रवन्ध लिया जाएगा।[48]

पूर्वोक्त अनुच्छेदों के अतिरिक्त कुछ अन्य उपबन्ध भी हैं जो केवल धर्म के आधार पर राज्य द्वारा विभेद का प्रतिषेध करके राज्य के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को सबल बनाते हैं। यथा अनुच्छेद-15(1), 15 (2), 16 (2)।

अनुच्छेद-15(1) – राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

इसका लक्ष्य नागरिकों के अधिकारों के विरुद्ध राज्य की कार्यवाही को रोकना है, अधिकार चाहे राजनैतिक हों, सिविल हो या कोई अन्य। जाति के अनुसार पृथक् निर्वाचन मण्डलों के आधार पर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व इस खण्ड के विरुद्ध होगा और संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् ऐसी विधि के अनुसरण में किया गया निर्वाचन शून्य होगा।

पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा-15(5) के अधीन एक अधिसूचना के द्वारा एक क्षेत्र में अतिरिक्त पुलिस बल रखने का खर्चा उद्गृहीत किया गया क्योंकि उस स्थान के लोग डाकुओं को आश्रय देते थे और दंगे करते थे। इसमें उस क्षेत्र के हरिजनों और मुसलमानों को छूट दी गई। यह अभिनिर्धारित हुआ कि इस तथ्य के अभाव में हरिजन और मुसलमानों में सभी लोग विधि का पालन करने वाले थे तथा उस क्षेत्र के निवासी अन्य समुदायों में कोई व्यक्ति विधि का पालन करने वाला नहीं था, अधिसूचना स्पष्टतः धर्म या जाति के आधार पर अन्य सम्प्रदायों के व्यक्तियों के विरुद्ध विभेद करती थी और अनुच्छेद-15(1) के प्रतिकूल थी।[49]

अनुच्छेद-15(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर –

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या

(ख) पूर्णतः या भागतः राज्यनिधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित

कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

अनुच्छेद-16(2) – राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा।

पूर्ववर्णित सभी उपबन्ध भारत के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। प्रख्यात संविधानविद् दुर्गादास बसु के शब्दों में "इन उपबन्धों से तो हमारा राज्य संयुक्त राज्य अमेरिका से भी अधिक पन्थनिरपेक्ष है।" भारत एक धर्मप्रधान देश है और यहाँ एक सामान्य व्यक्ति के जीवन में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारत से विभाजित होकर बने पाकिस्तान व बांग्लादेश ने अपने यहाँ के बहुसंख्यकों के धर्म इस्लाम को राज्य-धर्म घोषित किया है। पाकिस्तान के 1972 के संविधान के अनुसार इस्लाम वहां का राज्यधर्म है। यह स्थिति 1981 के अस्थायी संवैधानिक आदेश में भी बनाए रखी गई, जो कि जनरल जिया-उल-हक द्वारा जारी किया गया था। बांगलादेश में 1982 में वहाँ के राष्ट्रपति ले० जनरल इरशाद ने यह घोषणा की कि इस्लाम वहाँ का राज्य-धर्म होगा। परन्तु भारत ने इन सब बातों से प्रभावित हुए बिना अपने पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को बनाए रखा है। संविधान ने सभी को धर्म तथा अन्तःकरण की स्वतन्त्रता प्रदान की है तथा अल्पसंख्यकों को अपने धर्म तथा संस्कृति को बनाए रखने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय प्रदान किए हैं। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि अन्तःकरण व धर्म की स्वतन्त्रता केवल अपने नागरिकों को ही प्रदान नहीं की गई है, वरन् यह अन्य देशीय व्यक्तियों को भी प्रदान की गई है।

यहाँ यह कहना भी सुसङ्गत होगा कि संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों के लिए जिन सुरक्षा-उपायों की व्यवस्था की गई है, वह पर्याप्त है। इससे अधिक कुछ भी सुविधाएं या विशेषाधिकार अब उन्हें प्रदान

करना उचित नही होगा। पन्थनिरपेक्षता के नाम पर अल्पसंख्यकों की किसी भी प्रकार की अनुचित माँगों यथा – ईसाइयो की धर्मान्तरण के सम्बन्ध मे अतार्किक हठधर्मिता, को मानना या बढावा देना, देश के साम्प्रदायिक सद्भाव को नष्ट करना होगा। दुःख का विषय है कि हमारे देश के राजनैतिक दल केवल चुनावी लाभ को दृष्टि में रखते हुए कई बार अल्पसंख्यकों की ऐसी माँगो व आचरणो का समर्थन करते है, जो न सिर्फ साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए घातक है, वरन् राष्ट्रविरोधी भी है। दुर्गादास वसु ने इस सम्वन्ध में चेतावनी देते हुए कहा है – "पन्थनिरपेक्षता या अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपाय का क्या अर्थ है, यह अनुच्छेद 25-30 और सम्वद्ध उपवन्धों मे पूरी तरह से वता दिया गया है। यदि कोई अल्पसंख्यक वर्ग पन्थनिरपेक्षता के नाम पर कोई और लाभ चाहते है जो इन उपवन्धो मे नहीं है या सत्तारूढ़ दल राजनैतिक कारणों से उनकी वात मान लेता है, तो यह साम्प्रदायिकता के कलुष को पुनः प्रवेश देना होगा, जिस कलुष के कारण ब्रिटिश राज्य में भारत को इतना कष्ट उठाना पडा और जिसे संविधान निर्माताओं ने स्वतन्त्र भारत के संविधान से मिटा दिया। जैसे- विधान-मण्डलों में साम्प्रदायिक आरक्षण। उदाहरण के लिए यदि सरकार किसी लोकपद की, चाहे उच्च पद हो या अन्यथा, नियुक्ति का औचित्य गुणागुण के आधार पर न देकर इस आधार पर वनाती है कि नियुक्त व्यक्ति धार्मिक अल्पसंख्यक है तो यह अनुच्छेद-16(2) के अधीन अन्य समुदायों के मूल अधिकारो का उल्लंघन होगा क्योंकि सभी समुदायों का यह अधिकार है कि 'धर्म' या इसी प्रकार के किसी अन्य आधार पर उनके साथ विभेद न किया जाए। ऐसा करने पर अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा नहीं होगी। इससे तो संविधान द्वारा प्रत्याभूत वहुसंख्यकों और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकार छिन जाएंगे। पन्थनिरपेक्षता या अल्पसंख्यकों के अधिकार के नाम पर अल्पसंख्यकों को अधिमान नहीं दिया जा सकता या राष्ट्र की एकता और वल को कम नही किया जा सकता। राष्ट्र के लिए वहुसंख्यकों का विश्वास भी उतना ही आवश्यक है। हमारे संविधान की उद्देशिका राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने का ध्येय सम्मुख रखती है। संविधान ने अल्पसंख्यकों को धार्मिक और सांस्कृतिक रक्षोपाय प्रदान किए हैं जिससे

उन्हे 'न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता' सुनिश्चित हो। यदि कोई अल्पसंख्यक वर्ग उससे भी अधिक माँग करता रहता है जो संविधान निर्माताओं ने दिया है तो इससे उनकी अलगाववादी प्रवृत्तियाँ बढती जाएंगी और भारत कभी भी एक ऐसा राष्ट्र नही बन पाएगा जिसका आदर्श 'राष्ट्र की एकता और अखण्डता' है। यदि हम स्वतन्त्रतापूर्व की साम्प्रदायिक और पृथकतावादी स्थिति मे लौट जाते हैं तो इससे हमारी स्वतन्त्रता का आधार ही सङ्कटापन्न हो जाएगा। यदि सरकार आक्रामक अल्पसंख्यकों की माँगो की तुष्टि करने के लिए बहुसंख्यकों के धार्मिक और अन्य विधिक अधिकारों को दबाती है तो पन्थनिरपेक्षता का, जिसका अर्थ है सभी धर्मो के प्रति राज्य की तटस्थता, उल्लंघन होगा।''[50]

सन्दर्भ-सङ्केत

1 एस० आर० बाम्मई बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1994 एस० सी० 1918।

2 ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1889।

3 भारत की सांविधानिक विधि – डॉ० दुर्गादास बसु।

4 कमिश्नर, हिन्दू रिलीजस एण्डाउमेण्ट्स बनाम लक्ष्मीचन्द्र (1954) एस० सी० आर० 1005।

5 हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य, ए० आई० आर० (1958) एस० सी० 731।

6 रतिलाल बनाम बम्बई (1954) एस० सी० आर० 1055।

7 सरूप बनाम पंजाब राज्य, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 860(866)।

8 रामानुज बनाम तमिलनाडु राज्य, ए० 1972 एस०सी० 1586।

9. हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य, (1959) एस०सी० आर० 629।

10 स्वरूप बनाम पंजाब राज्य, ए० 1959 एस० सी० 860-866।

11 मोतीदास वनाम साही, ए० 1959 एस० सी० 942(949)।

12 मित्तल वनाम भारत संघ, ए 1983 एस०सी० 1 (पैरा 119, 122, 123)।

13 रवि स्टेनिस्लास वनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 908।

14 गुलाम अब्बास वनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1983 एस०सी० 1268।

15 आचार्य जगदीश्वरानन्द अवधूत वनाम पुलिस कमिश्नर कलकत्ता ए० आई० आर०1983, एस० सी० 51।

16 वेंकटरमन वनाम मैसूर राज्य, ए० आई० आर० 1458 एस०सी० 255(263)।

17. सूर्यपाल सिंह वनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1952) एस०सी०आर० 1050(1090)।

18 नरेन्द्र वनाम गुजरात राज्य, ए० आई० आर० 1974 एस०सी० 2098 (पैरा 25)।

19. सैफुद्दीन बनाम मुम्बई राज्य, ए०आई० आर० 1962 एस०सी० 853(864)।

20. दरगाह समिति वनाम सुहैन, ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 1402(1415)।

21 पश्चिम बङ्गाल राज्य बनाम आशुतोष लाहिडी, ए० आई० आर० 1995 एस० सी० 64।

22 यज्ञपुरुषदासजी वनाम मूलदास ए० आई० आर० 1966 एस०सी० 1119(1127)।

23 कमिश्नर, हिन्दू रिलीजस एण्डउमेण्ट्स वनाम लक्ष्मीचन्द्र (1954) एस०सी० आर० 1005, मित्तल वनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1(20-21)।

24 मित्तल वनाम भारत संघ , ए० आई० आर० 1983 एस०सी० 1(पैरा 123-25)।

25 ख्वाजा मिया एस्टेट्स वनाम मद्रास राज्य ए० आई० आर० 1971 एस०सी० 161(165)।

26 अजीज वनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1968 एस०सी० 662(674)।

27 वेंकटरमन वनाम मैसूर राज्य (1958) एस०सी० आर० 895, ए० आई० आर० 1958 एस०सी० 255।

28 मोतीदास वनाम साही, ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 942(950)।

29 गोविन्दलाल जी वनाम राजस्थान राज्य ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1638।

30. सूर्यपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1(1052) एस०सी०आर 1056।

31 सैफुद्दीन बनाम मुम्बई राज्य, ए० आई० आर० 1962 एस०सी० 1853 (869-874)।

32 कमिश्नर, हिन्दू रिलीजस एण्डाउमेंण्ट्स बनाम लक्ष्मीचन्द्र, ए० आई० आर० 1954 एस०सी० 282।

33 दिग्यदर्शन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए०आई०आर० 1970 एस सी० 181 (188)।

34 मोतीदास बनाम साही, ए० आई० आर० 1959 एस सी० 942 (950)।

35 केरल शिक्षा विधेयक का मामला, ए० आई० आर० 1958 एस०सी० 956।

36 जगदेव सिंह बनाम प्रताप सिंह, ए० आई० आर० 1965 एस०सी० 183 (188)।

37. मद्रास राज्य बनाम चम्पकम (1951) एस० सी० आर० 525।

38 चित्रा घोष बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1970 एस०सी० 35।

39 मुम्बई राज्य बनाम बॉम्बे एजुकेशन सोसायटी (1955)। एस०सी० आर० 568।

40. देवासिंह बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, ए० आई० आर० 1971 पी० एण्ड एच० 340 (345)।

41 हिन्दी समिति बनाम भारत संघ, ए०आई०आर० 1990 एस०सी० 851 (पैरा 6)।

42 मुम्बई राज्य बनाम बॉम्बे एजुकेशन सोसायटी, ए० आई० आर० 1454 एस०सी० 561।

43 ए० पी० क्रिश्चियन सोसायटी बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार, (1986) 2 एस०सी० सी० 667 (पैरा 8-9)।

44 केरल शिक्षा विधेयक पर निर्देश, ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 956 ; रेवरेंड फादर बनाम बिहार राज्य, ए० आई०आर० 1959 एस०सी० 404।

45 सेण्ट जेवियर महाविद्यालय बनाम गुजरात राज्य, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1389 (पैरा 6) (नौ न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय)।

46 ऑल सेण्ट्स स्कूल बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार, ए०आई०आर० 1980 एस०सी० 1042 (पैरा 12, 65)।

47. सिद्धार्थराज बनाम गुजरात राज्य, ए० आई० आर० 1965 एस०सी० 540।

48 केरल शिक्षा विधेयक का मामला, (1959) एस०सी० आर० 995 (1062)।

49 राजस्थान राज्य बनाम प्रताप सिंह, ए० आई० आर० — 1960 एस०सी० 1208।

50 Introduction to the constitution of India — D D Basu

षष्ठ अध्याय

पन्थनिरपेक्षता का व्यावहारिक स्वरूप

भारतीय संविधान ने इस देश में सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता तथा समानता प्रदान की है तथा इसके साथ ही अल्पसंख्यकों को संस्कृति तथा शिक्षा-सम्बन्धी रक्षोपाय प्रदान कर एक पन्थनिरपेक्ष राज्य का निर्माण किया। संविधान की उद्देशिका में भी विश्वास, धर्म व उपासना की स्वतन्त्रता प्रदान करने की बात कही गयी तथा 42वें संशोधन द्वारा पन्थनिरपेक्ष शब्द को उद्देशिका में समाविष्ट किया गया। परन्तु क्या व्यावहारिक रूप से हम पन्थनिरपेक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहे हैं? क्या हमने पन्थनिरपेक्षता के उसी स्वरूप को अपनाया है जिसकी परिकल्पना हमारे संविधान निर्माताओं ने की थी?

आज भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अल्पसंख्यक संविधान द्वारा प्रदत्त अपनी स्थिति से सन्तुष्ट है। असन्तोष की भावना बहुसंख्यक वर्ग में भी दिखाई पड़ती है। आखिर क्या कारण है कि संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से पन्थनिरपेक्षता का प्रावधान किए जाने के बावजूद दोनों ही वर्गों में असन्तोष की भावना विद्यमान है। वस्तुत: हमारी पन्थनिरपेक्षता सम्बन्धी अवधारणा एकाङ्गी रही है तथा इसका मुख्य जोर अल्पसंख्यकों को अधिकाधिक सुरक्षा तथा अधिकार प्रदान करने पर रहा है। ऐसा करते हुए बहुसंख्यकों के अस्तित्व की अनदेखी की गई है। प्रत्येक वर्ग की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने लिए अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करे तथा यदि इसके लिए अनुकूल परिस्थिति के रूप में राजनैतिक दलों का अनपेक्षित समर्थन भी प्राप्त हो, तो कौन ऐसे सुअवसर को खोना चाहेगा। हमारे देश की राजनीति आज आदर्शों तथा देशहित के स्थान पर दलगत स्वार्थ तथा वोट बैंक के आधार पर संचालित होती है। आज के राजनीतिक दल अल्पसंख्यक-वर्ग को एक समुदाय न समझकर वोट बैंक समझते हैं। अल्पसंख्यक संगठन व उनके नेता इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अपने समुदाय को इन दलों के आगे वोट बैंक के रूप में परोसकर अपनी माँगों के लिए इनका समर्थन हासिल कर लेते हैं। अल्पसंख्यकों की यह माँगें संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल हैं तथा इन अल्पसंख्यक वर्गों की

पृथक्तावादी मनोवृत्ति को उजागर करती है। यदि बहुसंख्यक वर्ग ऐसी माँगों का विरोध करता है तो देश के समस्त तथाकथित पन्थनिरपेक्ष दल अल्पसंख्यकों के समर्थन में उठ खड़े होते हैं तथा विरोध करने वालों को साम्प्रदायिक ठहराते हैं। अल्पसंख्यकों की अलगाववादी माँगों पर यदि हम दृष्टि डालें तो पाएंगे कि यदि इन माँगों को स्वीकार कर लिया गया तो देश को अभी कई विभाजन और झेलने पड़ेंगे।

अल्पसंख्यक समुदायों की सर्वप्रमुख माँग यह है कि उन्हें उनकी संख्या के आधार पर विधानमण्डलों तथा सेवाओं में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए।[1] आरम्भ में यह माँग मुस्लिम समुदाय द्वारा रखी गई तथा उनकी देखा देखी अन्य अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा भी यह माँग उठाई जा रही है। हम स्वतन्त्रता के पूर्व देख चुके हैं कि भारत पर 'साम्प्रदायिक अधिनिर्णय' के रूप में यही व्यवस्था थोपी गई थी और यही व्यवस्था अन्ततः धार्मिक आधार पर भारत के विभाजन का कारण बनी। विभाजन के समय का वह रक्तरंजित इतिहास भुलाया नहीं जा सकता। आज पुनः उसी माँग को पुनर्जीवित करके देश को एक और विभाजन की ओर ले जाने का प्रयास हो रहा है। इस माँग को मान लेने से संविधान की उद्देशिका में घोषित राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के लक्ष्य का उल्लंघन होगा तथा साथ ही धर्म के आधार पर प्रदत्त आरक्षण अनुच्छेद 15(1) तथा 16(1)-(2) द्वारा प्रदत्त समानता की प्रतिभूति का भी उल्लंघन होगा। यह बात सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने निर्णयों में स्पष्ट कर दी है। हमारे संविधान में ऐसे समुदाय, जो सामाजिक या आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, संविधान के अधीन आरक्षण या अन्य विशेष उपबन्धों द्वारा विशेष स्थिति प्राप्त करने के हकदार हैं, चाहे वे किसी भी धर्म से सम्बन्धित क्यों न हों। मुसलमान व ईसाई समुदाय को इस व्यवस्था से सन्तोष नहीं है। वह तो व्यक्ति के मुस्लिम या ईसाई होने के आधार पर आरक्षण चाहते हैं, चाहे वह सामाजिक व आर्थिक रूप से कितने ही उन्नत क्यों न हो। परन्तु धार्मिक आधार पर इस प्रकार की कोई भी व्यवस्था करना न केवल बहुसंख्यकों के प्रति विभेदकारी होगा, बल्कि अनुच्छेद 15-16 द्वारा प्रत्याभूत समता के अधिकार का उल्लंघन होगा।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व हमारी राजनीतिक प्रणाली का कोई स्वाभाविक अङ्ग नहीं था, बल्कि

इसे भारतीयो मे फूट डालने तथा उन्हें दो परस्पर शत्रु खेमों में विभाजित करने के ब्रिटिश षड्यन्त्र के रूप मे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर थोपा गया था। इस पृथकतावादी मनोवृत्ति से जो लोग आकर्षित हो सके, उन्होने देश के विभाजन द्वारा अपने लिए एक अलग देश प्राप्त कर लिया। उसी समुदाय के जो लोग भारत मे ही बने रहे उनके बारे में यह न मानने का कोई कारण नहीं है कि वे इस देश के अन्य लोगों के साथ समानता के आधार पर रहना चाहते थे तथा किसी भी राजनीतिक विशेषाधिकार के दावे को छोड चुके थे। अतः अब इस प्रकार की किसी भी मॉग का कोई औचित्य नहीं है। यह मॉग न सिर्फ देश के संविधान के प्रतिकूल है बल्कि सर्वोच्च न्यायालय के समय-समय पर दिए गए निर्णयों द्वारा प्रतिपादित समता के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है। परन्तु हमारे कई राजनीतिक दल अल्पसख्यकों के एकमुश्त वोट प्राप्त करके अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से न सिर्फ ऐसी मॉगों का समर्थन करते है, बल्कि कई बार स्वयं अपनी ओर से ऐसे आश्वासन भी देते है। कॉग्रेस (आई) तथा जनता दल ने 1991 के अपने चुनाव घोषणापत्रो मे अल्पसंख्यकों के लिए सरकारी सेवाओं तथा सशस्त्र सेनाओं मे आरक्षण की व्यवस्था करने के वायदे किए। सशस्त्र सेनाओं में आरक्षण की मॉग किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा प्रभावशाली रूप से कभी भी नहीं की गई थी, परन्तु इन राजनीतिक दलों ने स्वार्थवश अल्पसख्यकों को इस मॉग के लिए उकसाया।

भारत के अल्पसंख्यक समुदायो में सर्वप्रमुख मुस्लिम समुदाय द्वारा एक अन्य मॉग यह की गइ है कि संविधान के अनुच्छेद 44 मे भारत के समस्त राज्यक्षेत्र के लिए एक समान नागरिक संहिता स्थापित करने का जो निर्देश है, वह मुसलमानो पर लागू नहीं होना चाहिए तथा मुसलमानों के लिए उनकी व्यक्तिगत विधि के रूप में शरीयत लागू होनी चाहिए। जमायत-उलेमाए-हिन्द तो यहाँ तक कहती है कि अनुच्छेद 44 को निकाल दिया जाना चाहिए[2] या मुसलमानों को उसके प्रवर्तन मे छूट दी जानी चाहिए।[3]

संविधान-निर्माण के दौरान इन सभी दावों पर विचार किया गया था तथा इसे इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया था कि विवाह, उत्तराधिकार तथा इसी तरह की अन्य बातें जो व्यक्तिगत विधि के दायरे में

आती है, ये सभी लौकिक विषय है, तथा इनका धर्म से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। साथ ही भारत में जहाँ इतने सारे मत-मतान्तर विद्यमान हैं, बिना एक समान नागरिक संहिता बनाए इसे एकता के सूत्र में बाँधे रहना कठिन है। अनुच्छेद 44 द्वारा किया गया समान नागरिक संहिता का प्रावधान देश में भाईचारा बढ़ाने तथा एकता और अखण्डता बनाए रखने के उद्देशिका के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए है।

सर्वोच्च-न्यायालय ने अपने एक ऐतिहासिक महत्त्व के निर्णय (सरला मुद्गल बनाम भारत संघ)[4] के मामले में सरकार से यह निवेदन किया कि वे अनुच्छेद 44 पर नया दृष्टिकोण अपनाएं, जिसमें सभी नागरिकों के लिए एक 'समान नागरिक संहिता' के बनाने का निदेश किया गया है और कहा कि ऐसा करना पीड़ित व्यक्ति की रक्षा तथा राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की अभिवृद्धि दोनों दृष्टि से आवश्यक है। न्यायालय ने भारत सरकार को विधि एवं न्याय मन्त्रालय के सचिव के माध्यम से अगस्त 1995 तक एक शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया जिसमें इस बात का उल्लेख किया जाए कि सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने के लिए क्या कदम उठाए गए हैं तथा क्या प्रयास किए गए हैं। न्यायालय का निर्णय 11 मई, 1995 को सुनाया गया था।

न्यायालय के इस निर्देश के महत्त्व को समझने के लिए सम्बद्ध वाद के अन्तर्गत उठाए गए मामलों पर एक दृष्टि डालना उपयुक्त होगा। इस वाद में अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत चार याचिकाएं दायर की गई थीं। पहली याचिका महिलाओं के कल्याण के लिए बनी रजिस्टर्ड सोसायटी द्वारा लोकहित वाद के रूप में प्रस्तुत की गई थी। एक अन्य याचिकाकर्त्री मीना माथुर का अभिकथन था कि उनका विवाह 1978 में जितेन्द्र माथुर से हुआ था और उनके तीन बच्चे थे। 1988 में उनके पति ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया तथा धर्म-परिवर्तन के बाद सुनीता उर्फ फ़ातिमा के साथ दूसरा विवाह कर लिया। उससे उसे एक सन्तान भी पैदा हुई। दूसरी याचिका फ़ातिमा द्वारा दायर की गई थी, जिसका यह अभिकथन था कि जितेन्द्र माथुर ने पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया तथा अपनी पूर्व पत्नी के साथ रहने लगे। उसकी शिकायत यह थी कि वह अभी भी एक मुस्लिम है और उसका भरण पोषण उसका पति नहीं कर रहा

है और किसी भी वैयक्तिक विधि के अधीन उसे कोई संरक्षण प्राप्त नही है। तीसरी याचिका में गीता रानी का अभिकथन था कि 1988 में उसका विवाह हिन्दू रीति से प्रदीप कुमार से हुआ था। वह 1991 में एक लडकी दीपा के साथ भाग गया और इस्लाम धर्म स्वीकार करके उसके साथ विवाह कर लिया। चौथी याचिका में सुस्मिता घोष ने यह शिकायत की कि उसका विवाह जी० सी० घोष से हिन्दू संस्कारों के अनुसार 1984 में हुआ था। किन्तु बाद में उसके पति ने कहा कि वह उसके साथ नही रहना चाहता अतः उसे आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद कर लेना चाहिए। सन् 1992 में उसके पति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया व विनीता गुप्ता नामक लडकी से विवाह कर लिया। उसने न्यायालय में प्रार्थना की कि उसके पति को विनीता गुप्ता से विवाह करने से रोक दे।

उपर्युक्त विवरण को पढ़कर कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति यह अवश्य मानेगा कि यदि व्यक्तिगत विधियों के स्थान पर समान नागरिक संहिता लागू होती तो इन स्त्रियों को यह कष्ट नही उठाने पड़ते।

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल देते हुए इस मामले में न्यायमूर्तियों ने कहा कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि संविधान को लागू हुए 45 वर्ष बीत चुके है और इस बीच अनेक सरकारें आई और गई किन्तु अनुच्छेद 44 में निहित संविधान के उक्त निर्देश को कार्यान्वित करने के कर्तव्य का पालन किसी के द्वारा नही किया गया। अनुच्छेद 44 इस धारणा पर आधारित है कि सभ्य समाज में 'धर्म और वैयक्तिक विधि' में कोई सम्बन्ध नही होता है। अतः समान नागरिक संहिता बनाने में किसी समुदाय के सदस्यों के अनुच्छेद 25, 26 तथा 27 के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। विवाह, उत्तराधिकार और इस प्रकार की सामाजिक प्रकृति की बातें धार्मिक स्वतन्त्रता से बाहर हैं तथा उन्हें विधि बनाकर विनियमित किया जा सकता है। विवाह तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू विधि भी इस्लाम और ईसाई धर्म की ही भाँति संस्कारजन्य है। हिन्दुओं ने देश की एकता व अखण्डता के लिए अपनी धार्मिक भावनाओं को त्याग दिया और उनकी विधि का संहिताकरण किया गया जबकि संविधान सभी समुदायों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने का निर्देश देता है। जैसे सती

प्रथा, मानव बलि आदि कुप्रथाओं को राज्य लोकहित में प्रतिषिद्ध कर सकता है, वैसे ही बहुविवाह को भी विधि द्वारा विनियमित किया जा सकता है। न्यायमूर्ति श्री सहाय ने यह कहा कि कोई भी धर्म जान-बूझकर विकृति की अनुमति नहीं देता है। इस्लाम धर्म में भी इसके प्रति कोई लगाव नहीं है और आज अनेक मुस्लिम देशों में इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए वैयक्तिक विधि का संहिताकरण किया जा चुका है। न्यायमूर्ति ने यह भी कहा कि समान नागरिक संहिता बनाने के लिए सबसे पहला कदम यह होना चाहिए कि अल्पसंख्यकों की वैयक्तिक विधियों को तर्कसङ्गत बनाया जाए।

न्यायालय के इस महत्त्वपूर्ण निर्णय का स्वागत होना चाहिए था। परन्तु हमारे राजनेता, जो राजनीति का अर्थ सिर्फ सत्ता की राजनीति समझते हैं, मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति में संलग्न होने के कारण इस दिशा में कोई कदम उठाने का साहस न कर सके तथा समान नागरिक संहिता का विरोध करने में एक दूसरे से होड लगाने लगे। अल्पसंख्यकों से जुड़े अन्य मसलों, यथा अयोध्या मुद्दे के सम्बन्ध में बात-बात पर संविधान तथा न्यायपालिका की दुहाई देने वाले नेतागण इस मसले पर संविधान तथा न्यायालय दोनों की ही स्पष्ट उपेक्षा व अवहेलना कर रहे हैं। कॉंग्रेसी प्रधानमन्त्री नरसिंहराव ने उत्तर प्रदेश के बरेली शहर में मुस्लिम समुदाय के उलेमाओं की सभा में यह घोषणा भी कर दी कि वे समान नागरिक संहिता नहीं बनाएंगे। यही नहीं 12-6-1996 को जब कॉंग्रेस विपक्ष में थी, तब नरसिंहराव ने संसद में समान नागरिक संहिता के विरोध में कॉंग्रेस के पक्ष को बलपूर्वक रखा। इसके पहले भी एक बार राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के विधि मन्त्री ने यह घोषणा की थी कि समान नागरिक संहिता तभी अङ्गीकार की जाएगी जब अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य इसकी मॉंग करेंगे।

यहॉं यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्वकाल में जब भारत के विधि आयोग ने विवाह और विवाह विच्छेद के लिए एक समान संहिता की रचना करने का कार्य आरम्भ किया था तब मुस्लिम तथा ईसाई समुदाय की ओर से इसका विरोध हुआ था तथा जिस सरकार ने इन विषयों में सम्बन्धित शास्त्रीय विधि

को छोड़ने के लिए हिन्दुओं को उत्प्रेरित किया था, उसी सरकार ने राजनीतिक कारणों से अल्पसंख्यकों के विरुद्ध हथियार डाल दिए।

आज अनेक इस्लामी देशों जैसे तुर्की और बांग्लादेश में बहु विवाह को या तो निषिद्ध कर दिया गया है या नियन्त्रित कर दिया गया है। पाकिस्तान मे भी इसे कम करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु भारत के मुसलमान 'शरीयत' पर आधारित इस व्यवस्था को बनाए रखना चाहते है, बल्कि यह भी चाहते है कि मूल अधिकार के रूप मे इसकी रक्षा की जाए। वास्तव मे इसके लिए मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति उत्तरदायी है जिसके तहत वोट-लोलुप नेतागण उन्हें ऐसी मॉगों के लिए उत्साहित करते रहते हैं।

शाहबानो मामले मे 1986 में भारत सरकार ने एक विधेयक लाकर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उलटकर मुस्लिम महिलाओं को उन अधिकारों से वञ्चित कर दिया, जिनका वह अन्य सभी महिलाओं के साथ समान रूप से उपभोग कर रही थी।

इस मामले मे एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत गुजारे-भत्ते के लिए एक अर्जी दी, जिसे डिक्री मिल गई। उसके पति ने इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की कि धारा 125 मुसलमानो पर लागू नही होती क्योंकि यह मुस्लिम वैयक्तिक विधि के प्रतिकूल है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को नामजूर कर दिया तथा कहा कि धारा 125 सभी व्यक्तियों पर लागू होती है और इसका उनके धर्म या वैयक्तिक विधि से कोई सम्बन्ध नही है।

इस मामले में निर्णय देते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि राज्य ने अभी तक समान नागरिक संहिता बनाने की दिशा मे कोई प्रयास नहीं किया है, जबकि अनुच्छेद 44 इस बारे मे राज्य को स्पष्ट निर्देश देता है चाहे इसकी पहल मुस्लिम समुदाय की ओर से हो या न हो।

ऐसा माना जाता है कि मुस्लिम समुदाय को अपनी वैयक्तिक विधि में सुधार के लिए पहल करनी चाहिए। एक समान नागरिक संहिता परस्पर विरोधी विचारधारा रखने वाले कानूनों के प्रति अलग-अलग

निष्ठाओं को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता मे योगदान करेगी। राज्य को यह जिम्मेदारी सौंपी गई है कि वह राज्य के नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाए।

मुम्बई विश्वविद्यालय के एक विद्वान् प्रोफेसर सिद्दीकी का मत है कि यदि राज्य इस विषय मे पहल करेगा तो अन्ततः मुस्लिम समुदाय इसे स्वीकार कर लेगा क्योंकि यह आधुनिक सभ्य समाज की संकल्पनाओं के अनुरूप है।

सर्वोच्च न्यायालय के स्पष्ट कथन की उपेक्षा करके तथा मुस्लिम समुदाय के भी एक बडे वर्ग, जिसमें विद्वान अध्येता भी थे, के विरोध को नजरन्दाज करते हुए, तत्कालीन कॉग्रेस (आई) सरकार मुस्लिम महिला अधिनियम 1986 लाई, जिसमें यह प्रावधान था कि तलाकशुदा पत्नी के गुजारे-भत्ते के अधिकार का निर्धारण इसी अधिनियम के तहत होगा, जब तक कि तलाकशुदा महिला तथा उसका पूर्व पति न्यायालय में यह अर्जी न दे कि वे इसका निर्धारण दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत चाहते है।

इस प्रकार कॉग्रेस (आई) सरकार ने मुस्लिम कट्टरपन्थियों को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों तथा संविधान के उल्लंघन का रास्ता दिखाया।

एक अन्य मुद्दा, जो कि प्रायः ईसाई समुदाय की ओर से उठाया जाता है, वह है – धर्मपरिवर्तन का मुद्दा। ईसाई नेता यह मानकर चलते है कि यदि धर्मपरिवर्तन को नियन्त्रित करने सम्बन्धी कोई भी विधि बनाई जाती है तो यह अनुच्छेद 25(1) द्वारा प्रदत्त धर्म के प्रचार के अधिकार का उल्लंघन होगा। स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे धर्मपरिवर्तन के विषय में जब भी कोई कानून बनाने का प्रयास किया गया है, तब ईसाई समुदाय द्वारा इसका जबर्दस्त विरोध किया गया है। आज धर्मान्तरण कानून पुनः विवाद का केन्द्र बन गया है क्योंकि तमिलनाडु सरकार ने अध्यादेश जारी करके जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन कराने को अपराध घोषित कर दिया है। इस अध्यादेश की धारा 3 में लालच या धोखा देकर कराए जाने वाले

धर्मपरिवर्तन तथा उसके प्रयास को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। वैसे तो आमतौर पर होने वाले गैर-कानूनी धर्मान्तरण के लिए तीन साल तक के कारावास तथा 50 हजार रुपए के अर्थदण्ड की व्यवस्था की गई है, लेकिन यदि किसी बच्चे, महिला या अनुसूचित जाति-जनजाति के व्यक्ति को जोर जबर्दस्ती, धोखा देकर या लालच दिखाकर धर्मान्तरित किया जाता है, तो चार साल तक की सजा और एक लाख तक के अर्थदण्ड की व्यवस्था है। इस कानून के दुरुपयोग को रोकने के लिए भी इसी कानून में पर्याप्त व्यवस्था करने की कोशिश की गई है। साथ ही, धर्म-परिवर्तन से पूर्व निकटतम मजिस्ट्रेट को सूचित करना भी जरूरी होगा। इस अध्यादेश के 'उद्देश्य' खण्ड में इसे जारी करने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि कुछ समय से धर्म-परिवर्तन में भय, लालच तथा धोखे के प्रभाव के बारे में लगातार सूचनाएं मिल रही थी। जिससे अक्सर सामाजिक तनाव तथा कानून-व्यवस्था की समस्या खडी हो जाती थी। ऐसे में, चूंकि सामाजिक शान्ति बनाए रखना राज्य की जिम्मेदारी है, अतः इस अध्यादेश को जारी किया जा रहा है।

इस विधेयक के जारी होते ही इसके विरोध तथा समर्थन में दो वर्ग आमने-सामने आ गए हैं। विरोध करने वाला वर्ग इसे संविधान तथा मानवाधिकारों का उल्लघन मान रहा है, जबकि समर्थन करने वाला वर्ग इसे संविधान की भावना के अनुरूप तथा समय की माँग बता रहा है। समर्थन करने वाला वर्ग अपने पक्ष में तर्क देते हुए 1954 में धर्मान्तरण मसले पर गठित नियोगी आयोग की रिपोर्ट जिसमें कहा गया था कि ईसाई मिशनरियों द्वारा आदिवासियों के धर्मान्तरण का अभियान भारत के लिए सङ्कट बन सकता है, का सहारा लेते हुए कहते है कि आज ईसाई बहुल पूर्वोत्तर राज्यों में पृथकतावादी आन्दोलन इसी धर्मान्तरण की देन है और आज आदिवासी इलाकों का नक्सली आन्दोलन भी इसी का प्रतिफल है। इस विधेयक का विरोध करने वालों का, जिनमें ईसाई समुदाय प्रमुख है, कहना है कि धर्मपरिवर्तन पर रोक लगाना संविधान के अनुच्छेद 25, जिसमें धर्म को मानने व प्रचार करने की स्वतन्त्रता दी गई है, का उल्लंघन है।

वास्तविकता तो यह है कि यह कानून धर्म-परिवर्तन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता है, यह केवल धोखे को प्रतिबन्धित करता है, जोर-जबर्दस्ती पर अङ्कुश लगाता है और लालच देकर धर्मान्तरण करने को रोकता है।

अपनी पसन्द की पूजा-पद्धति को अपनाना हर व्यक्ति का मूल अधिकार है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 25 में यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से मिला हुआ है, लेकिन यह अधिकार एकतरफा नहीं है। यह सभी लोगों को समान रूप से मिला हुआ है। यदि एक वर्ग यह दलील दे रहा है कि उसे अपने धर्म के प्रचार का अधिकार है, तो दूसरे लोगों को भी अपनी आस्था को बचाए रखने का अधिकार है। उन्हे अपनी पूजा पद्धति को धोखेबाजों और बाहुबलियो से बचाए रखने का अधिकार है।

इसे मानवाधिकारों का उल्लंघन कहना भी उचित नहीं है। 1966 के नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 18(2) मे कहा गया है कि –

"किसी व्यक्ति को इस प्रकार प्रपीडित नहीं किया जाएगा जिससे उसकी अपनी रुचि का धर्म या विश्वास मानने या अपनाने की स्वतन्त्रता कम होती हो।"

("No one shall be subject to coercion which would impair his freedom to have or to adopt a religion or belief of his choice ")

अनुच्छेद 18(1) मे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार धर्म अङ्गीकृत करने की स्वतन्त्रता है। दोनों खण्डों को एक साथ पढने से यह अर्थ निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म या उपासना में विश्वास चुनने का अधिकार है और किसी व्यक्ति द्वारा उसे प्रपीड़न द्वारा कोई अन्य धर्म अपनाने के लिए उत्प्रेरित करके उसकी स्वतन्त्रता कम नहीं की जाएगी। यह अध्यादेश धर्मपरिवर्तन के लिए जोर-जबर्दस्ती को वर्जित करता है, अतः अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर के भी अनुरूप है। यह अध्यादेश मानवाधिकारो

की भी रक्षा करता है क्योकि यह समाज के कमजोर वर्गो की ताकत, धन या धोखे द्वारा धर्मान्तरण से रक्षा करता है।

धर्मान्तरण से सम्बन्धित इसी प्रकार के कुछ कानूनो को सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति मिल चुकी है। 1960 के दशक मे जब मध्य प्रदेश और उड़ीसा में धर्म-परिवर्तन के मामलों मे धोखे, लोभ तथा जोर-जबर्दस्ती की शिकायते मिली तो इनसे निपटने के लिए कानून बनाए जाने की सामाजिक मॉग उठनी शुरू हुई। इसे देखते हुए उड़ीसा में 1967 में तथा मध्यप्रदेश में 1968 में कानून बनाए गए। दोनों कानूनों के उद्देश्य तथा उनकी भाषा एक जैसी थी। दोनों में छल-कपट, लोभ या बल-प्रयोग द्वारा किए जाने वाले धर्म-परिवर्तनो को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। इन दोनों कानूनों का ईसाई समुदाय द्वारा घोर विरोध किया गया तथा इनकी संवैधानिकता को चुनौती दी गई और उसमे वही तर्क दिए गए जो आज दिए जा रहे है। स्टेनिस्लास बनाम मध्यप्रदेश राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इन समस्त दलीलों को खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि हमारा संविधान किसी भी व्यक्ति को दूसरो के धर्म-परिवर्तन कराने का अधिकार नही देता है। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि संविधान में दी गई धार्मिक स्वतन्त्रता किसी एक धर्म के लिए नही, अपितु सभी धर्मो के लिए समान रूप से उपलब्ध है। अतः इस स्वतन्त्रता का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि दूसरो के अधिकार के प्रयोग मे विघ्न न पडे। धर्म-परिवर्तन मे लोभ, कपट या बल-प्रयोग के प्रभाव पर न्यायालय ने कहा कि इससे लोक-व्यवस्था भङ्ग होने का खतरा रहता है, इसलिए यह राज्य का उत्तरदायित्व है कि उसे रोकने का प्रयास करे। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय की कसौटी पर देखने मे भी तमिलनाडु सरकार का अध्यादेश संविधान की अपेक्षाओं के अनुरूप ठहरता है।

भारतीय दण्ड-संहिता के उपबन्ध ऐसे मामलों के लिए अपर्याप्त है। धारा 153 (क) केवल तब लागू होती है, जब किसी कार्य से कोई व्यक्ति साम्प्रदायिक तनाव पैदा कर रहा हो तथा धारा 350, 351 तथा

352 के उपबन्ध भी इतने अस्पष्ट है कि वे जबर्दस्ती या धोखे से किए जाने वाले धर्म-परिवर्तनों पर अङ्कुश लगाने के लिए पर्याप्त नही है। इसलिए इस बुराई को रोकने के लिए विशेष कानून जरूरी हो जाते है।

परन्तु हमारे देश के प्रमुख राजनीतिक दल कॉंग्रेस (आई) ने इस अध्यादेश का विरोध करने का निर्णय लिया है। वामपन्थी दल भी इस कानून के विरुद्ध है। इन विरोधों का आधार कोई सिद्धान्त न होकर सिर्फ राजनीतिक स्वार्थ है। इसे ईसाई धर्म के विरुद्ध अभियान की संज्ञा दी जा रही है, जबकि यह अध्यादेश हर उस समुदाय के विरुद्ध है जो कि बल-प्रयोग, कपट या लोभ जैसे अवैध साधनों का उपयोग करके धर्मान्तरण कराने का प्रयास करता है।

इस मामले में राजनीतिक स्वार्थो से ऊपर उठकर संविधान के हित तथा सामाजिक समरसता के लिए सोचना जरूरी है। इस अध्यादेश पर राजनीतिक रोटियॉ सेंकने के बजाय संविधान के मर्म को समझकर तार्किक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है ताकि सच्चे अर्थों में पन्थनिरपेक्षता का पालन हो सके।

अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा एक अन्य मॉग यह भी की जाती है कि मोरारजी देसाई सरकार द्वारा जिस अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की गई थी उसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया जाए तथा उसकी सिफारिशों को बाध्यकारी माना जाए।

यह मॉग व्यवहारिक नही है क्योंकि संविधान के अन्तर्गत तो देश मे अनेक आयोग बने हुए हैं। इन आयोगों के सदस्य जनता द्वारा नही चुने जाते है। एक लोकतान्त्रिक देश मे जनता द्वारा चुनी हुई सरकार के ऊपर ऐसे किसी भी आयोग की सिफारिशों को बाध्यकारी बनाने से सरकार के निर्णय लेने की शक्ति प्रभावित होगी तथा इस प्रकार लोकतन्त्र का हनन होगा। इसकी सफारिशो को बाध्यकारी मानने में एक अन्य समस्या यह भी है कि यदि अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य आपस मे सहमत न हों, तब क्या होगा? यदि आयोग इस प्रकार विभाजित होगा तब सरकार को यह विवेकाधिकार होगा कि

कौन सा दृष्टिकोण उचित तथा युक्तियुक्त है। जब आयोग के सदस्य एकमत हों तब भी उनके मत को बाध्यकारी इसलिए नही माना जा सका क्योकि वह जनता के प्रति उत्तरदायी नही हैं।

मुस्लिम तथा ईसाई अल्पसंख्यक वर्गो द्वारा उठाई जा रही माँगों तथा उसे मिले राजनीतिक समर्थन को देखते हुए कुछ अन्य अल्पसंख्यकों द्वारा भी ऐसी माँगें की जा रही है जो संविधान-सम्मत नही है। वे दलित, जिन्होंने धर्मान्तरण करके बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है, चाहते है कि धर्म-परिवर्तन के बावजूद उन्हें अनुसूचित जाति का माना जाए तथा इन जातियों को मिलने वाले आरक्षण का लाभ उन्हें मिलता रहे।

1950 के अनुसूचित जाति आदेश मे, जो संविधान के अधीन बनाया गया है, कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति हिन्दू या सिक्ख धर्म से भिन्न किसी धर्म का अनुयायी है तो वह अनुसूचित जाति का नही समझा जाएगा। डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में बौद्ध धर्म मे धर्मान्तरित व्यक्तियों ने इसकी विधिमान्यता को चुनौती दी थी किन्तु सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने एकमत से इसे नामंजूर कर दिया। संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति का पृथक् वर्ग इसलिए बनाए रखा था क्योंकि हिन्दुओ और सिक्खों के सामाजिक इतिहास के कारण उनमे जाति-प्रथा विद्यमान थी और इस जाति-प्रथा के कारण दुर्गुण उत्पन्न हुआ था। ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म तथा इस्लाम धर्म में कोई जाति-प्रथा नही है। इसी कारण इन्हें अनुसूचित जातियो के अन्तर्गत नही रखा गया है। हॉ, यदि धर्मान्तरित व्यक्तियों मे से कोई 'सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछडे वर्ग' में आता है, तो उसे इस वर्ग को मिलने वाले विशेषाधिकार प्राप्त होंगे।

यदि कोई सरकार धर्मान्तरित लोगों की इस मॉग को मान लेती है तो यह सरकार द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म मे परिवर्तित होने के लिए प्रेरित करना होगा। यह कार्य पन्थनिरपेक्षता की भावना के अनुकूल नही होगा। परन्तु इसके बावजूद भी पैंसठवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1990 द्वारा

अनुसूचित जाति के आरक्षण को वौद्ध धर्म मे परिवर्तित लोगो तक वढा दिया गया। हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में परिवर्तित व्यक्ति भी इसी प्रकार के आरक्षण के लिए मॉग कर रहे हैं। यदि इस मॉग का भी राजनैतिक स्वार्थवश समर्थन किया गया तो यह हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म मे परिवर्तित होने के लिए उत्साहवर्धन करना होगा, जिससे अनुच्छेद 25 द्वारा प्राप्त धर्म व अन्तःकरण की स्वतन्त्रता बाधित होगी तथा देश के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप को आघात पहुँचाएगी।

अल्पसंख्यक समुदायो की संविधान से असंगत इन मॉगो को मिलने वाला समर्थन न सिर्फ बहुसंख्यक वर्ग में क्षोभ उत्पन्न करता है बल्कि अल्पसंख्यक समुदायों को इस प्रकार की और अधिक मॉगे करने के लिए उकसाता है। हम देखते हैं कि पहले सरकारी सेवाओं मे साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण की माँग की गई थी परन्तु भारतीय मुस्लिम लीग ने 1979 में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में, तकनीकी स्थापनों में, सेना में तथा पुलिस में भी ऐसे आरक्षण की मॉग की है। इसी प्रकार उर्दू की उन्नति मे सहायता की मॉग अव उन राज्यों मे भी की जा रही है जहॉ उर्दूभाषी लोग जनसंख्या में पर्याप्त अनुपात में नही है। पश्चिम वङ्गाल में उर्दू को राजभाषा के रूप मे मान्यता देने की मॉग की जा रही है। इसके विपरीत वांग्लादेश मे मुसलमान स्वय वांग्ला भाषा के प्रचार के लिए संघर्ष कर रहे है। पश्चिम वङ्गाल के मुसलमान, जिनकी मातृभाषा वांग्ला है, जनगणना के समय उर्दू को अपनी मातृभाषा वताते हैं। उर्दू पृथकतावाद मे यह मॉग भी उत्पन्न हुई है कि पश्चिम वङ्गाल के गैर-वंगाली औद्योगिक क्षेत्र को, जिसमे कुछ उर्दूभाषी हैं, उर्दूस्तान घोषित किया जाए। इस प्रकार की पृथकतावादी माँगों को भी समर्थन मिल जाता है। केरल मे 1967-69 मे संयुक्त फ्रन्ट मन्त्रिमण्डल के दौरान मुस्लिम वहुमत का एक जिला माल्लापुरम् वनाया गया। 1983 मे संयुक्त लोकतान्त्रिक मोर्चे की सरकार ने कॉंग्रेस (आई) के नेतृत्व मे कासरगोड मे एक दूसरा मुस्लिम वहुमत जिला वनाने की मॉग स्वीकार कर ली। इसी प्रकार की मॉगे पश्चिम वङ्गाल तथा विहार के भी कुछ क्षेत्रों से उठती रही है तथा वोट-लोलुप राजनीतिक दलों द्वारा इन्हें पन्थनिरपेक्षता के नाम पर समर्थन दिया जाता रहा है। धार्मिक अल्पसंख्यकों की निरन्तर बढ़ती हुई मॉगों

को समर्थन देना व स्वीकार करना ही पन्थनिरपेक्षता की कसौटी माना जाने लगा है। किन्तु इस प्रकार एक धर्म के विरुद्ध दूसरे धर्म का समर्थन करना पन्थनिरपेक्षता नही वल्कि अति साम्प्रदायिकता है।

संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार राज्य को धर्म के मामले मे एक सकारात्मक भूमिका प्रदान करता है। यद्यपि राज्य धर्म के मामले मे हस्तक्षेप नहीं कर सकता तथापि धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किए जाने पर वह मूक दर्शक नही बना रह सकता। लोक-व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य धार्मिक स्वतन्त्रता को विनियमित कर सकता है। इस प्रकार धार्मिक स्थानो, मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद आदि का प्रयोग अपराधियों को आश्रय देने या राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को चलाने के लिए नही किया जा सकता है। धर्म के नाम पर पृथकतावादी और उग्रवादी गतिविधियो को बढावा नही दिया जा सकता है। संविधान इन राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को रोकने के लिए राज्य को पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि कई बार सत्तारूढ़ दल किसी समुदाय विशेष का समर्थन खो देने के भय से इन राष्ट्रविरोधी कार्यकलापों के विरूद्ध दृढतापूर्वक कार्यवाही करने का साहस नहीं दिखा पाते। अन्य दल भी अपने राजनैतिक हानि-लाभ का आकलन करके ही ऐसे मामलों में अपनी रणनीति तय करते है तथा राष्ट्रहित का विचार नही करते। पंजाव मे इसी कारण आतङ्कवाद अपने चरम पर पहुंच गया था तथा स्वर्ण मन्दिर का दुरुपयोग राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के सचालन के लिए हो रहा था, जिसे अन्तत सैनिक-कार्यवाही द्वारा मुक्त कराना पडा।

भारत के सबसे वडे अल्पसंख्यक समुदाय मुस्लिम समुदाय के विषय में एक वात प्राय: कही जाती है कि उनमे राष्ट्रीय भावना तथा मातृभूमि के प्रति सम्मान का अभाव है। समस्त मुस्लिम समुदाय पर इस प्रकार का दोषारोपण करना नितान्त अनुचित है। वास्तविकता तो यह है कि इस समुदाय के मुखर नेतागण व प्रभावशाली व्यक्तित्व कई वार इस तरह के वक्तव्य व मॉगे सामने रखते है, जिससे समस्त समुदाय के विषय में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है। मुसलमानो के लिए अलग गृहराज्य की माँग

करना तथा 'हम मुस्लिम पहले है, भारतीय बाद में' जैसी उक्तियॉ करना इस धारणा को बल प्रदान करते है। भारत को मातृभूमि मानने से इकार करना तथा 'वन्देमातरम्' गीत का विरोध करना तथा इसके पीछे यह तर्क देना कि यह इस्लाम विरोधी है क्योंकि इसमे मूर्तिपूजा की भावना विद्यमान है, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। 'वन्देमातरम्' गीत हमारी आजादी के आन्दोलन का प्रेरणास्रोत रहा है। 1992 मे जब संसद ने एक संकल्प पारित किया कि संसद के प्रत्येक सत्र का समापन 'वन्देमातरम्' की धुन के साथ होगा तो संसद में मुस्लिम सदस्यो की ओर से इसके विरोध मे लगभग वही सारी बातें कही गयी जो इस गीत के प्रति आपत्ति व्यक्त करते हुए 1938 में जिन्ना की 11 सूत्री मॉगों मे कही गई थी। यह अत्यन्त ही दुर्भाग्य का विषय है। पूर्व सोवियत संघ तथा चीन जहां कि पर्याप्त संख्या में मुसलमान है वहां के संविधानों में नागरिकों को 'मातृभूमि की रक्षा' की शपथ लेनी पडती है, परन्तु वहॉ कभी भी मुसलमानों ने इसका विरोध नहीं किया। तुर्की जैसे मुस्लिम देश के प्रमुख राजनैतिक दल का नाम 'मातृभूमि दल' है। यदि इन देशों में देश को मातृभूमि मानना इस्लाम-विरोधी नहीं है तो भारत मे इसे इस्लाम-विरोधी कैसे माना जा सकता है। किन्तु हमारे देश के राजनीतिक दल चन्द मुस्लिम नेताओं द्वारा उठाई जा रही ऐसी मॉगों को बिना सोचे समझे समर्थन देकर इन्हे समस्त मुस्लिम समुदाय की माँग बना देते हैं तथा इसे मुसलमानो की धार्मिक भावना के साथ जोड देते है। प्रख्यात संविधानविद् डॉ० दुर्गादास वसु का इस सम्बन्ध में कहना है कि "यदि कोई बात भारत के बाहर इस्लाम-विरोधी नही है, तो वह भारत मे केवल इसलिए इस्लाम-विरोधी नही हो सकती कि प्रत्येक दल जो सत्ता मे आना चाहता है, मुसलमानो के वोट की आकाक्षा रखता है।"[6]

ऐसा नही है कि ये राजनैतिक दल अल्पसंख्यकों के वास्तविक हितैषी या समर्थक हैं। यदि ये मुस्लिम समुदाय के सच्चे हितचिन्तक होते तो यह उनमें व्याप्त अशिक्षा, पिछडेपन तथा गरीबी को दूर करने के लिए कोई सार्थक प्रयास करते न कि उनके मुट्ठी भर नेताओं, जो कि अपने समुदाय की इन्हीं कमियो का लाभ उठाकर उनकी धार्मिक भावनाएं भड़काते हैं, की अतार्किक मॉग का अन्ध-समर्थन करते।

वस्तुतः उनका लक्ष्य सिर्फ सत्ता-प्राप्ति होता है। वे जानते है कि विशाल हिन्दू समुदाय, जो कि भिन्न-भिन्न जातियो तथा वर्गो मे विभक्त है, एकमुश्त एकपक्षीय मतदान नही कर सकते। अतः वे समस्त हिन्दू समाज को रिझाने के स्थान पर उनके भिन्न-भिन्न वर्गो को रिझाने का प्रयास करते हैं। अल्पसंख्यक समुदायों के वोट एक मुश्त हासिल किए जा सकते है, इसीलिए उनकी धार्मिक भावनाओं को तुष्ट करने वाले मुद्दों को उठाकर उनका समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। यहाँ तक कि टाडा तथा पोटा जैसे आतङ्कवाद विरोधी कानूनों का भी इस आधार पर विरोध किया गया कि ये मुसलमानो के विरुद्ध हैं। स्वतन्त्रता के बाद से ही अधिकाश राजनैतिक दलो ने इसी प्रकार की नीति का आश्रय लिया। बहुसंख्यक हिन्दू समाज में धीरे-धीरे इसके प्रति असन्तोष व्याप्त होने लगा। उन्हें लगने लगा कि संख्या-बहुलता के बावजूद उनकी उपेक्षा हो रही है तथा अल्पसंख्यकों की धार्मिक भावनाओं का अनुचित तुष्टीकरण हो रहा है। हिन्दुओं के इस असन्तोष को अभिव्यक्ति अयोध्या आन्दोलन के रूप में मिली, जिसे भारतीय जनता पार्टी का समर्थन प्राप्त था। इस सत्य से इन्कार नही किया जा सकता कि आज भारतीय जनता पार्टी की जो राजनैतिक हैसियत है, उसमें अयोध्या आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अयोध्या आन्दोलन को हिन्दुओं का जो व्यापक जनसमर्थन मिला वह दरअसल अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की नीति के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति थी। अयोध्या आन्दोलन का संचालन क्योकि भारतीय जनता पार्टी से जुडे सगठनो के हाथ में था, अतः इस पार्टी के प्रति जनसमर्थन में भी एकाएक वृद्धि हुई। भाजपा के पहले भी कई हिन्दूवादी दल थे पर उन्हें कभी व्यापक जनसमर्थन न मिल सका, क्योंकि पहले हिन्दुओं में इस प्रकार का आक्रोश कम मात्रा में था जो कि समय के साथ-साथ बढता गया। अयोध्या आन्दोलन के रूप में हिन्दुओं को संगठित होने का अवसर मिला। यह आवश्यक नही है कि इस आन्दोलन से जुड़ा आम हिन्दू इसके ऐतिहासिक व कानूनी पहलुओं से परिचित हो, परन्तु फिर भी उसने अपनी धार्मिक भावना को इसके साथ एकीकृत कर लिया। इण्डिया टुडे-ओ आर जी-मार्ग द्वारा जनवरी, 2002 मे कराए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 48 प्रतिशत हिन्दू अयोध्या में तुरन्त राममन्दिर

वनाए जाने के पक्ष मे है।[7]

तुष्टीकरण के प्रति हिन्दुओं का यह आक्रोश अल्पसंख्यक वर्गो के प्रति आक्रोश मे भी परिवर्तित हो सकता है। अभी तक अल्पसंख्यकों के प्रति आक्रामक तेवर कुछ उग्र हिन्दूवादी संगठनो द्वारा ही दिखाए गए हैं। आम हिन्दू ने स्वयं को इस प्रकार की गतिविधियो मे अलग रखा है। साम्प्रदायिक भावनाएं उन लोगो मे अपने आप उत्पन्न नही होती जो पीढ़ियों से एक-दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक रहते आए है। सत्ता की राजनीति का खेल खेलने वालों द्वारा उनके मध्य विद्वेप की चिगारियाँ भड़काई जाती है। यदि पन्थनिरपेक्षता के नाम पर अल्पसंख्यकों का अनुचित तुष्टीकरण होगा तो 'अल्पसंख्यको की भावनाओ' की तर्ज पर ही 'वहुसख्यको की भावनाओं' का सवाल अवश्य ही उठेगा। इससे न तो अल्पसंख्यक वर्ग का कोई लाभ होगा न ही बहुसंख्यकों का, वल्कि दोनो ही वर्गो की धार्मिक भावनाओं का दोहन राजनैतिक दलों द्वारा अपने-अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए किया जाएगा। पन्थनिरपेक्षता के लक्ष्य को सही अर्थो में तभी प्राप्त किया जा सकता है जव सभी राजनीतिक दल व्यक्तिगत तथा दलीय हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रहित के विपय मे चिन्तन करेंगे।

सन्दर्भ-सङ्केत

1 अखिल भारतीय मुस्लिम सम्मेलन, लखनऊ (स्टेट्समैन, 29-12-1978, 11-12-1979)।

2 स्टेट्समैन, 2-10-1979।

3 स्टेट्समैन, 8-4-1985।

4. (1995) 3 एस०सी० सी० 635।

5 अहमद वनाम शाहवानो, ए० आई० आर० 1985, एस०सी० 945 (पैरा2) ।

6 डॉ० दुर्गादास वसु--- भारत का संविधान --- एक परिचय (1989) पृष्ठ - 383 ।

7 India today, February 4,2002, Page - 30

सप्तम अध्याय

उपसंहार

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक पन्थनिरपेक्ष राज्य है किन्तु भारत की पन्थनिरपेक्षता की नीति आज कसौटी पर है। व्यावहारिक रूप मे आज भी धर्म और सम्प्रदाय भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक है। राजनीतिज्ञ और राजनैतिक दल धर्म एवं सम्प्रदाय को राजनैतिक सफलता प्राप्त करने के एक साधन के रूप मे अपनाते रहे है। पन्थनिरपेक्षता की नीति को व्यवहार मे अल्पसंख्यको के प्रति तुष्टीकरण की नीति बना दिया गया है तथा देश को बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक वर्गो में बॉट दिया गया है। इससे अल्पसंख्यक वर्गो में पृथकता की भावना पैदा हुई है। स्वयं को पन्थनिरपेक्ष कहने वाले राजनैतिक दल भी चुनावों के समय अल्पसंख्यकों के वोट हासिल करने के लिए दिल्ली के शाही इमाम की खुशामद करते देखे जाते है। पूर्वोत्तर के कुछ ईसाई बहुल राज्यों में चर्च के नाम पर वोट मॉगे जाते है। हाल ही में सम्पन्न गुजरात विधानसभा चुनावो मे मतदान के पॉच दिन पहले मुसलमानों के कछोछवी फिरके के प्रमुख मौलाना कसम अशरफ ने गुजरात के मुसलमानो को कॉग्रेस के पक्ष मे एकमुश्त मतदान करने का निर्देश जारी किया था। यह निर्देश मुसलमानों के एक गुजराती अखबार में प्रकाशित हुआ था।[1] तथाकथित पन्थनिरपेक्ष दल अल्पसंख्यको की साम्प्रदायिकता की आलोचना करने का साहस नही जुटा पाते जबकि ये बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता की अत्यन्त कटु निन्दा करते हैं। फरवरी 2002 मे घटित गोधरा काण्ड, जिसमे निर्दोष हिन्दुओं को जीवित जला दिया गया था, की निन्दा करने के स्थान पर इन दलो ने इसके लिए भी हिन्दूवादी संगठनों को उत्तरदायी ठहराने का प्रयत्न किया तथा जब इस काण्ड के परिणामस्वरूप भडके दंगो मे मुसलमान मारे गए हिन्दू संगठनो की भर्त्सना करने मे कोई भी कसर न छोडी। तुष्टीकरण और अल्पसंख्यकवाद के पोषण का ही परिणाम है कि कश्मीर घाटी से लगभग ढाई लाख हिन्दू पलायन करके अपने ही देश में शरणार्थियों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस तुष्टीकरण की नीति के कारण ही अभी तक समान नागरिक संहिता के निर्माण

की दिशा में कोई प्रगति नही हो सकी है। अनुचित साधनों का प्रयोग करके कराए गए धर्मान्तरण को रोकने के लिए भी राष्ट्रीय स्तर पर कोई कानून न बन सकने का कारण भी यही है। अल्पसंख्यक समुदायो विशेषकर मुस्लिम वर्ग को पन्थनिरपेक्षता के नाम पर महज वोट प्राप्ति का साधन बना लिया गया है। सम्प्रदायवादी मुस्लिम नेताओं ने अपने समुदाय की वोट शक्ति को अपने सङ्कीर्ण स्वार्थों की पूर्ति का साधन बना लिया है।

अल्पसंख्यको के इस अनुचित तुष्टीकरण के परिणामस्वरूप बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय मे धीरे-धीरे असन्तोष उत्पन्न होता गया है। कट्टरपन्थी हिन्दू सङ्गठनो तथा हिन्दूवादी राजनैतिक दलों ने इस असन्तोष का उपयोग हिन्दू जनमानस को अपने पक्ष मे करने के लिए किया है। इस सबके फलस्वरूप हिन्दू मुस्लिम समुदायों के मध्य साम्प्रदायिक विद्वेष मे वृद्धि हुई है। आज साम्प्रदायिकता ही भारत के पन्थनिरपेक्ष स्वरूप के सम्मुख सबसे बडी चुनौती है।

अल्पसंख्यक तुष्टीकरण के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता में वृद्धि का एक प्रमुख कारण मुस्लिम समुदाय में अपने पृथक् अस्तित्व को बनाए रखने की तीव्र आकांक्षा है। इस कारण वे स्वयं को राष्ट्र की मुख्य धारा में समाविष्ट नही कर पाए हैं। छोटी-छोटी बातों मे उन्हें अपनी अलग पहचान नष्ट हो जाने का भय सताता रहता है। इसी कारण अपनी पृथक् वैयक्तिक विधि को बनाए रखने का उनका प्रबल आग्रह है तथा वे समान नागरिक संहिता का विरोध करते है, जिसे कि किसी भी पन्थनिरपेक्ष राज्य का मूल आधार होना चाहिए। मुस्लिम समुदाय की इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण उनमे व्याप्त अशिक्षा एवं रूढिवादिता है, जिसके कारण वे आधुनिक ढग से चिन्तन नही कर पाते तथा अपनी पुरातन परम्पराओ से चिपके रहना चाहते है। उनके समुदाय के नेतागण उनके अज्ञान का फायदा उठाते हुए अपने संकीर्ण हितों के लिए उनका शोषण करते हैं। मुस्लिम समुदाय में व्याप्त बेरोजगारी तथा गरीबी का मुख्य कारण भी उनकी अशिक्षा ही है। रूढ़िवादिता के कारण वे सीमित परिवार के महत्त्व को भी नहीं समझते तथा

उनके बडे परिवार बेरोजगारी और गरीबी में और वृद्धि करते है। उनके समुदाय के नेता तथा अन्य स्वार्थी राजनैतिक दल इस बेरोजगारी व गरीबी को बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यको के प्रति भेदभाव का रूप देकर उनके मन में बहुसंख्यको के प्रति विद्वेष की भावना भर देते है। 'बहुसख्यकों का भय' उनमे असुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है तथा उन्हे अपना मजहब खतरे मे दिखाई देने लगता है। फलतः वे बहुसंख्यकों के प्रति उग्र हो उठते है।

हिन्दू राष्ट्रवाद के नाम पर संकुचित राजनीति करने वाले हिन्दू संगठनों के क्रिया कलापों से भी साम्प्रदायिकता उत्पन्न होती हैं। 'भारत हिन्दुओं का है तथा यहाँ रहने का अधिकार सिर्फ हिन्दुओं को है' जैसी उक्तियाँ अल्पसंख्यकों में क्षोभ व असन्तोष पैदा करती हैं।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त आज भारतीय पन्थनिरपेक्षता के सम्मुख रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के रूप में एक बड़ा सङ्कट है। किसी एक मुद्दे ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के आपसी सद्भाव को इस सीमा तक नही बिगाडा जितना कि रामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद ने बिगाड़ दिया।इस मुद्दे पर दोनों ही समुदायो के आग्रह इतने दृढ़ हैं कि समस्या का कोई हल निकलता नहीं दिखाई देता। यद्यपि वर्तमान समय में यह मामला न्यायालय में विचाराधीन है तथापि इस बात की पूरी सम्भावना है कि न्यायालय का निर्णय जिस भी समुदाय के विरुद्ध होगा वह इस निर्णय को मानने से इकार कर देगा तथा समस्या ज्यो की त्यों बनी रहेगी। शाहबानो मामले मे उच्चतम न्यायालय के निर्णय को उलटकर स्वयं भारत सरकार ही एक ऐसी मिसाल कायम कर चुकी है कि इस मामले मे भी न्यायालय के निर्णय का विरोध करने मे किसी को कोई हिचकिचाहट नही होगी। इस मामले पर सभी राजनैतिक दलो ने ईमानदारीपूर्वक कोई हल खोजने के स्थान पर अपने राजनैतिक स्वार्थ साधने का ही प्रयत्न किया है। जहाँ एक ओर भारतीय जनता पार्टी ने इसे अपनी हिन्दू छवि पुनर्स्थापित करके अपने परम्परागत वोट बैंक पर अधिकार करने के अवसर के रूप मे देखा वहीं दूसरी ओर तथाकथित पन्थनिरपेक्ष दलों मे मुस्लिम

समुदाय की भावनाओं को भडकाकर उनके वोट हासिल करने की होड़ लगी रही है।

साम्प्रदायिक विद्वेष के परिणामस्वरूप होने वाले साम्प्रदायिक दंगों तथा शान्तिभंग की घटनाओं से देश को अतीत में गहरे आघात झेलने पडे हैं और यह सिलसिला अभी भी जारी है। साम्प्रदायिक विद्वेष को जड़ से मिटा देने के उद्देश्य से ही संविधान में पन्थनिरपेक्षता के सिद्धान्त को अङ्गीकार किया गया था तथा तदनुरूप संविधान में व्यवस्थाएं की गई थी, किन्तु वास्तविक व्यवहार में, भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में संविधान की भावना का पालन नहीं हो सका है। सैद्धान्तिक स्तर पर जो मूल्य तथा प्रावधान स्थापित किए गए थे, व्यावहारिक स्तर पर उसके विपरीत लोगों का सार्वजनिक जीवन पन्थनिरपेक्षता के आदर्श से दूर रहा है। भारत में पन्थनिरपेक्षता के जिस आदर्श को अपनाया गया, उसका लक्ष्य है- विभिन्न धर्मावलम्बियों में धार्मिक विभेद के बावजूद भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न करके देश का भावनात्मक एकीकरण प्राप्त करना। यह एक दुखद सत्य है कि न तो हम इस स्थिति को अब तक प्राप्त कर सके हैं और न ही इसे प्राप्त करने की दिशा मे आगे बढ सके है। संविधान द्वारा पन्थनिरपेक्ष राज्य की स्थापना तो कर दी गई परन्तु राजनैतिक दलों, धार्मिक समुदायो तथा आम जनता किसी में भी पन्थनिरपेक्षता की भावना का विकास नही हो सका है।

यदि हमें संविधान मे घोषित पन्थनिरपेक्ष राज्य के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो इस बात की महती आवश्यकता है कि लोगों के मन मे व्याप्त धार्मिक आधार पर पृथकता की भावना को समाप्त करने तथा सच्चे अर्थो मे पन्थनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करने की दिशा में सम्भार प्रयास किए जाएं। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव इस प्रकार है –

(1) धार्मिक आधार पर बनी हुई व्यक्तिगत विधियों को समाप्त करके समस्त देशवासियोके लिए एक समान नागरिक संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए। यह सत्य है कि इस कार्य का अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय द्वारा घोर विरोध किया जाएगा परन्तु यह सरकार का कर्त्तव्य है कि वह

अल्पसंख्यकों को आधुनिक सभ्य समाज की आवश्यकताओ के अनुरूप निर्मित समान नागरिक संहिता के परिपालन के लिए उसी प्रकार उत्प्रेरित करे जिस प्रकार पूर्व में हिन्दू समुदाय को उसकी शास्त्रोक्त विधि छोड़ने के लिए प्रेरित किया था। समान नागरिक संहिता नागरिकों के मध्य धार्मिक विभेद को कम करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। यदि राजनीति छोड़कर सच्चे दिल से सरकारे इस दिशा मे प्रयास करेगी तो अन्तत: मुस्लिम समुदाय भी इसे स्वीकार कर लेगा।

(2) देश में निवास करने वाले सभी समुदायों के धार्मिक सिद्धान्तों प्रथाओं को उचित संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। यदि अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें तो बहुसंख्यकों की संस्कृति को भी समुचित प्रतिरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ गोवध पर प्रतिबन्ध लगाना, क्योंकि नीति निर्देशक तत्त्वों (अनुच्छेद 48) में भी वह सम्मिलित है तथा न्यायपालिका ने भी यह स्वीकार किया है कि इससे मुसलमानों के धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगता क्योंकि यह उनके धर्म का अनिवार्य अङ्ग नही है।

(3) मुस्लिम समुदाय में व्याप्त सामाजिक पिछडेपन तथा अशिक्षा को दूर किया जाना चाहिए क्योंकि इसी कारण समुदाय के नेतागण और राजनैतिक दल उन्हें बरगलाने में सफल हो जाते है तथा अपने राजनैतिक स्वार्थो की पूर्ति के लिए उनका शोषण करते है तथा उनमें साम्प्रदायिकता की भावना पैदा करते है। उनके पिछडेपन व अशिक्षा को दूर करके उनमे शासन के प्रति विश्वास का संचार किया जाना चाहिए ताकि उनके मन से भय तथा असुरक्षा की भावना मिट सके तथा वे राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित हो सकें।

(4) राजनैतिक दलो के लिए एक आचार संहिता तैयार करके यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे विभिन्न धार्मिक समुदायो के मध्य मतभेद पैदा करने या पहले से विद्यमान मतभेदों को बढ़ाने तथा उनके बीच घृणा का संचार करने वाला कोई कार्य न करें। चुनावों में धर्म का प्रयोग रोकने के लिए भी

प्रभावकारी नियम भी इस आचार संहिता मे होने चाहिए तथा आचार संहिता का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

(5) किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा चुनावों के समय किसी धर्म विशेष के नाम पर उस धार्मिक समुदाय के सदस्यों से किसी दल के पक्ष में मतदान करने की अपील या फतवा जारी करने पर प्रतिबन्ध लगना चाहिए तथा ऐसा करने को चुनाव के निष्पक्ष सम्पादन में बाधा मानते हुए दण्डनीय अपराध घोषित करना चाहिए।

(6) राजनैतिक दलो द्वारा अपने क्षुद्र राजनैतिक स्वार्थो के लिए अल्पसंख्यको की चाटुकारिता करने की प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए। अल्पसंख्यकों की संविधान-विरोधी माँगों को समर्थन देने के स्थान पर उन्हे देश के संविधान के अनुरूप समानता के आधार पर मिल-जुल कर रहने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(7) राजनैतिक दलों द्वारा चुनाव के समय सम्प्रदाय के आधार पर टिकटों का बटवारा करने तथा मन्त्रिमण्डल-निर्माण के समय सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगना चाहिए।

(8) छल-कपट, लोभ या बल-प्रयोग द्वारा कराए जाने वाले धर्मान्तरण पर राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगना चाहिए ताकि सभी धर्मावलम्वी स्वयं को सुरक्षित महसूस कर सके।

(9) मीडिया को साम्प्रदायिक विषयों पर रिपोर्टिंग करते समय अधिक जिम्मेदारी का परिचय देना चाहिए। बहुधा पत्र-पत्रिकाए, टी०वी० चैनल तथा अन्य समाचार माध्यम अपनी राजनैतिक प्रतिबद्धताओं तथा रुचियों के अनुरूप रिपोर्टिंग करने के प्रयास में किसी धार्मिक समुदाय के साथ हुई घटनाओं की बढ़ा-चढ़ा कर या बिना प्रमाण के केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं, जिससे अफवाहें फैलती हैं तथा विभिन्न धार्मिक समुदायों के मध्य तनाव बढ़ता है।

(10) जहाँ तक रामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद का प्रश्न है, जो कि आज भारत की साम्प्रदायिक सद्भावना के मार्ग में सबसे बडी बाधा है, के विषय मे न्यायपालिका जो भी निर्णय दे उसे कठोरतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए। इसमे कोई सन्देह नही है कि निर्णय जिस भी पक्ष के विरुद्ध निर्णय होगा वह इसे मानने से इकार करेगा किन्तु इस मामले मे कोई ढुल-मुल नीति अपनाने के स्थान पर दृढ़ता का परिचय देते हुए न्यायालय के निर्णय को लागू करने से ही इस समस्या का समाधान होगा तथा इस मुद्दे पर राजनीति बन्द होगी।इससे न्यायालय की गरिमा भी बनी रहेगी तथा अन्ततः कोई अन्य विकल्प न होने के कारण दोनों ही पक्ष इसे स्वीकार कर लेंगे।

उपर्युक्त उपायो के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए किसी भी प्रकार के विशेषाधिकारों का प्रावधान करने का प्रयास न हो क्योकि यदि एक पन्थनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक राज्य की सरकार ईमानदारीपूर्वक सभी धर्मावलम्बियों के प्रति समान व्यवहार का संकल्प ले तो फिर किसी भी विशेष प्रावधान की आवश्यकता नहीं रहेगी। विशेष प्रावधान विशेष व्यव्हार को जन्म देते हैं और वंचित वर्ग में असन्तोष उत्पन्न होता है, भले ही यह वर्ग बहुसंख्यक क्यों न हो। असन्तोष की भावना विभिन्न वर्गो के मध्य सद्भावना, सहिष्णुता तथा सदाशयता की भावना को हानि पहुँचाएगी। यदि यह असन्तोष बहुसंख्यक वर्ग में होगा तो और भी भयावह होगा क्योंकि वह अपनी संख्या बहुलता के कारण स्वयं को शक्तिशाली महसूस करेगा तथा इस शक्ति के बल पर विशेषाधिकारो को प्राप्त करने की चेष्टा करेगा।यह प्रवृत्ति बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक वर्गो के मध्य संघर्ष को जन्म देगी तथा देश को पन्थनिरपेक्षता के लक्ष्य मे और दूर करेगी। इस सत्य से इंकार नही किया जा सकता कि यदि कसी देश का बहुसंख्यक वर्ग पन्थनिरपेक्ष हो तभी वह देश भी पन्थनिरपेक्ष रह सकता है तथा अल्पसंख्यको को समता तथा सुरक्षा प्राप्त हो सकती है।

आज देश में पन्थनिरपेक्षता के मार्ग में किसी भी अन्य समय की अपेक्षा अधिक गम्भीर चुनौतियाँ

हैं। केवल राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे कुछ नवीन कानूनो का निर्माण करने मात्र से ही इन चुनौतियों का उत्तर देना सम्भव नही है। इसके लिए हमें अपने मन-मस्तिष्क, चिन्तन तथा विचारधारा मे आमूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। पन्थनिरपेक्षता के लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब प्रत्येक देशवासी इस बात को अपने हृदय में सुस्थापित कर ले कि वह पहले भारतवासी है तथा किसी धर्म विशेष का अनुयायी बाद मे। यदि ऐसा हो तो धर्म के नाम पर होने वाले राजनैतिक प्रपंच के झाँसे मे जनता नही आएगी तथा ये कुत्सित दॉवपेंच अपने-आप बन्द हो जाएंगे।

सन्दर्भ-सङ्केत

1. इण्डिया टुडे, 25 दिसम्बर, 2003 पृष्ठ-32 ।

Bibliography

Books —

1 A History of India - Romila Thapar

2 A History of Political Theory - G H Sabine

3 A Treatise on Secular State - Venkatraman

4 Apte's English Sanskrit Dictionary

5 Aspects of Ancient Indian History and Culture - Upendra Shankar

6 Cambridge History of India - H H Dodwell

7 Cambridge History of India - Hedge

8 Church, State and Freedom - Lee Fefar

9 Commentary on the Constitution of India - D D Basu

10. Concept of the Secular State and India - V P Luthra

11 Constituent Assembly Debates

12 Constitutional Development in India - C H Alexandrowicz

13 Constitutional History of India - A B Keith

14 Constitutional Law of India - D D Basu

15 Democracy in India - K P Karunakaran

16 Divide and Rule - P Moon

17 Encyclopedia Britanica 2000, Deluxe Edition

18 Freedom Struggle - Bipin Chandra

19 Gandhi and Jinnah - A H Merriam

20. Hindu Rashtravad - Savarkar

21 Hindutva - Savarkar

22 History of Ancient India - R S Tripathi

23 History of Central Asia - Rahul Sankrityayan

24 History of the Freedom Movement in India - Tarachand

25 India as a Secular State - D E Smith

26 India's Constitution - M V Pylee

27 India's Political System - R L Park and B B de Mosaquita

28 Indian Constitutional Documents - A C Banerjee

29 Influence of Islam on Indian Culture - Tarachand

30 Introduction to the Constitution of India - D D Basu

31 Medieval Hindu India - Chintamani Vinayak Vaidya

32 Medieval India - Ishwari Prasad

33 Modern India - Sumit Sarkar

34 Muslim Politics in Secular India - Dalwai

35 Muslims in Free India - MoinShakir

36 Oxford Advanced Learner's Dictionary

37 Oxford History of India -- Wheeler and Basham

38 Political History of Ancient India - H C Raychaudhary

39 Proceedings of the seminar on " Constitution of India in Precept and Practice"

40 Religious Policies of The Mughals - Prof Sri Ram Sharma

41 Shorter Constitution of India - D D Basu

42 Some Aspects of Muslim Administration - Ram Prasad Tripathi

43 The Communal Triangle - Mehta and Patwardhan

44 The Constituent Assembly of India - A C Banerjee

45 The Constitution of India How it has been framed - P K Ghosh

46 The Constitution of India - S R Sharma

47 The Constitution of India - V N Shukla

48. The Constitutional Problem in India - R. Coupland

49 The Discovery of India - Jawaharlal Nehru

50. The Indian Constitution - Granville Austine

51 The Making of the Indian Constitution - A C Banerjee

52 The Muslim League - Bahadur Lal

53 The Partition of India - C H Philips

54 The Sikhs - Khushwant Singh

55 Uniform Civil Code for India - D D Basu

56 Webster's Seventh New Collegiate Dictionary

57 आधुनिक भारत का इतिहास – वी० एल० ग्रोवग

58 दर्शन-दिग्दर्शन – राहुल सांकृत्यायन

59 प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहाम – प्रो० राधाकृष्ण चौधगी

60 पूर्व मध्यकालीन भारत – अवध विहारी पाण्डेय

61 भारत का संविधान – विधि मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित

62 भारत का संविधान – जय नारायण पाण्डेय

63 भारत का संविधान - एक पग्चिय – डा० दुर्गादाम वसु

64 भारत में गजनीति – ग्जनी कोठागी

65 भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक विकास – वी० एन० पाण्डेय

66 भारतीय राजनीति – जे० मी० जौहगी

67 भारतीय गजनैतिक व्यवस्था – प्रो० एम० एम० मईद

68. भाग्तीय शासन एवं गजनीति – इकवाल नागयण

69 भारतीय सग्कार एवं गजनीति – डा० पुखराज जैन, डा० वी० एल० फड़िया

70. लोकायत – डी० पी० चट्टोपाध्याय

71 संवैधानिक विकास एवं म्वाधीनता संघर्प – डा० मुभाष कश्यप

Magazines, Newspapers and Journals —

1. Anand Bazar Patrika

2 India Today

3. Journal of Greater India Society

4 Outlook

5 Political Science Review

6 The Hindu

7 The Hindustan Times

8 The Indian Journal of Political Science

9 The Statesman

10 The Times of India

Web-sites —

1 www bjp org

2 www hindustantimes.com

3 www indiatimes com

4 www indiatoday com